
आकाशचारिणी
अरुण कुमार शर्मा

ॐ

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥

सत्य घटनाक्रमेण आधारितः पारलौकिक कथा श्रृंखला

आकाशचारिणी

सत्य घटनाओं पर आधारित योग-तान्त्रिक कथा प्रसंग

एक रहस्यवादी गृहस्थ का आत्मपुञ्ज

अरुण कुमार शर्मा

सङ्कलन

मनोज कुमार शर्मा

सम्पादन

नीरू सिंह

सीईओ (एनशिएंट साइन्स पब्लिशर्स)

संशोधन एवं परिवर्द्धन

चन्द्रशेखर कुमार

भौतिकी शास्त्र (पञ्चवर्षीय परास्नातक)
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर

संस्थापक

प्राचीन क्रिया योग संस्थान

कूटस्थिते दिव्यचक्षुदर्शितेन् संचालितः दिव्यः उपक्रमः

सिद्धाश्रमे अवस्थितः मठः

किसी भी टिप्पणी, सुझाव एवं प्रतिक्रिया के लिए प्रकाशक के निम्न पते, दूरभाष या ई-मेल पर संपर्क करें

प्राचीन क्रिया योग संस्थान
चन्द्रशेखर कुमार
#४०४, हरी कुञ्ज
सरायढेला, धनबाद
झारखण्ड ८२८१२७, भारतवर्ष

ईमेल ancientkriyayoga@gmail.com

एनशिएंट क्रिया योग मिशन : अन्य महत्वपूर्ण कृतियाँ

- अनलॉकिंग हनुमान चालीसा : रेवेलेशन्स ऑफ ए हाउसहोल्डर मिस्टीक
  (हनुमान चालीसा कुंजिका : एक रहस्यवादी गृहस्थ का आत्मपुंज)
- खेचरी सिद्ध आकाशगामिनी विद्या रहस्य कुञ्जिका (व्योमगम्योपनिषद)
- ड्रिन्क एयर थेरेपी टू किल डायबिटीज (ए पाथ टू सेल्फ-क्योर एण्ड इम्मोर्टलिटी)
- मृतात्माओं से सम्पर्क (सत्य घटनाओं पर आधारित भूत प्रेत कथा प्रसंग)

अध्याय अनुक्रमणिका

प्राक्कथन

उन दिनों मेरा अधिकांश समय प्रारब्धानुसार गुप्त प्राणायाम साधना में व्यतीत होता था, लेखनी रुक-सी गयी थी । काल की स्थिरगम्यता मानों अनुभवजन्य किसी योगलब्ध भाव की प्रतीक्षा मात्र थी । दैव भाव से मेरे हाँथों में एक साथ कई कृतियाँ आ गई जिनमें ‘आकाशचारिणी’ भी था । कौतूहलवश कतिपय पृष्ठों के अवलोकन मात्र ने योगानन्द कृत एक विशिष्ट पुस्तक की याद दिला दी - ऑटोबायोग्राफी ऑफ ए योगी। लेकिन लेखक “अरुण कुमार शर्मा” एक गृहस्थ अध्यात्म अन्वेषी लगे जिनका योगाभ्यास से दूर-दूर तक कोई सरोकार नहीं था, परन्तु इनकी कृतियाँ प्राणायामजन्य सत्य घटनाओं की अद्वितीय साक्ष्य थी ।

स्वयं लेखक के शब्दों में -

प्रस्तुत कथा संग्रह में आप जो कुछ भी पढ़ेंगे, निश्चय ही कुछ प्रसंगों और कुछ घटनाओं पर आपको सहसा विश्वास नहीं होगा । यह स्वाभाविक भी है । मनुष्य उसी विषय वस्तु पर विश्वास करता है जो उसे स्वाभाविक प्रतीत होता है । अस्वाभाविकता उसे स्वीकार नहीं । लेकिन संसार में कुछ ऐसे भी लोग हुए है जिनके जीवन में अस्वाभाविक जिसे आप दूसरे शब्दों में ‘अलौकिक’ कह सकते है - घटनाएँ घटी हैं और बराबर घटती भी रहती है । यदि इसे आप अतिशयोक्ति न समझे और कल्पना अथवा विचारों की उड़ान न समझें तो ऐसे ही लोगों में एक मैं भी हूँ । मेरे जीवन में बराबर ऐसी तमाम लौकिक, पारलौकिक घटनाएँ घटी है, जिन पर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता । कभी-कभी स्वयं सोचता हूँ कि क्या मैं ही उनका प्रत्यक्षदर्शी रहा हूँ, मैंने ही अनुभव किया है उनका, यदि मैं उन अविश्वसनीय लौकिक पारलौकिक घटनाओं को सम्पूर्ण रूप से लिपिबद्ध करूँ तो एक बृहद ग्रन्थ तैयार हो जाय, लेकिन ऐसा सम्भव नहीं है मेरे लिए । मैंने उन्हीं को लिपिबद्ध करने का प्रयास किया है जिन्हें आध्यात्मिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक दृष्टि से प्रमाणित सिद्ध करने में समर्थ रहा हूँ —

पारलौकिक जगत का अस्तित्व है इसमें सन्देह नहीं । भूत-प्रेत जैसी अशरीरी आत्माओं का अस्तित्व हैं, इसमें भी सन्देह नहीं। भूत-प्रेत, तंत्र-मंत्र और लोक-परलोक आदि परामनोवैज्ञानिक विषयों पर शोध एवं अन्वेषण काल में मेरे जीवन में जो अलौकिक, पारलौकिक घटनाएँ घटी और विश्वास से परे जो अनुभव हुए और जो विलक्षण अनुभूतियाँ हुईं उन सब को सहज भाव से स्वीकार किया मैंने। इन सबके संबंध में जो कुछ देखा है और जो कुछ अनुभव किया है उन्हीं को अपनी भाषा शैली में लिपिबद्ध कर ‘आकाशचारिणी’ में प्रस्तुत कर रहा हूँ । आशा है, पूर्ण विश्वास के साथ मेरे इस संग्रह को स्वीकार करेंगे आप ।

कालचक्रानुसार इन कृतियों का वैदिक ज्ञान-सागर-प्रचार-प्रसार-कृत्य के अन्तर्गत विश्व के प्रत्येक कण में प्रवाह स्वतः निसृत हो रहा है । इस आध्यात्मिक ज्ञान की किरणें प्राचीन क्रिया योग संस्थान द्वारा परिष्कृत रूप में प्राचीन सनातन वैदिक मठ की अंतरात्मा में स्थापित हो चुकी हैं ।

ऐसी ही एक कृति पी० डी० ऑसपेंसकी की टर्शियम ऑरगॅनॉन थी । प्रकृति की अबूझ पहेलियों का ये भी एक पहलू था ।

प्रस्तुत कथा संग्रह आकाशचारिणी के अन्तर्गत सत्रह कथाओं का संग्रह है। ये अपने आप में विशिष्ट तो हैं ही, रहस्य रोमांच से भरपूर और सनसनी खेज भी हैं। यद्यपि ये अविश्वसनीय लगे किन्तु इनमें अतिशयोक्ति नहीं है। लेखक की भाषा में प्राञ्जलता और भाषा पर अधिकार भी है।

इसी पुस्तक से

…सावन-भादों का महीना था। बादलों से अटकर काला पड़ गया था आकाश। गहन निःश्वास सी पुरुवा हवा हा-हाकार करती हुई किले में दानव की तरह खड़े पेड़ों और फैली हुई झाड़ियों को कँपा दे रही थी। घोर निस्तब्ध रात्रि। निबिड़ रात्रि का गहन अन्धकार। यदा-कदा अभिशप्त किले में निवास करने वाली प्रेतात्माओं की एक साथ हँसने और रोने की भयानक तीखी आवाजों से किले का निस्तब्ध वातावरण बार-बार काँप उठता था और उसी के साथ मेरा मन भी दहशत से भर जाता था। सहसा मेरी दृष्टि स्याह आकाश की ओर उठ गयी। क्यों उठ गयी थी? नहीं जानता। मगर दृष्टि उठते ही आकाश के श्याम पटल पर बादलों के बीच मैंने जो कुछ देखा उसने मुझे एकबारगी रोमान्चित कर दिया।

गहरे अन्धकार में डूबे हुए मेघाच्छन्न आकाश में मैंने देखा एक सुन्दर स्त्री तीव्र गति से उड़ती हुई पूरब से उत्तर दिशा की ओर चली जा रही थी। उसके काले बाल बिखर कर हवा में लहरा रहे थे। उस स्त्री की गति कभी तीव्र हो जाती तो कभी मन्द। सबसे आश्चर्य की बात थी कि मैं उस घोर अन्धकार में भी स्पष्ट देख रहा था उस आकाशचारिणी योगिनी को। निश्चय ही वह कोई उच्चकोटि की योगसाधिका थी। देखते ही देखते वह निविड़ अन्धकार के आगोश में समा गयी। …

आशा है प्रस्तुत कथा-संग्रह भी अन्य कथा-संग्रहों की भांति पाठकों को प्रीतिकर होगी।

प्रस्तुत संस्करण का निर्माण प्राचीन क्रिया योग संस्थान (कूटस्थिते दिव्यचक्षुदर्शितेन् संचालितः दिव्यः उपक्रमः) (सिद्धाश्रमे अवस्थितः मठः) द्वारा किया गया है। इस प्रक्रिया में कंप्यूटर प्रणाली की अत्याधुनिक विधियों (LATEX, XƎLATEX, Ti*k*Z, gimp, C++ इत्यादि) का पूर्ण प्रयोग किया गया है।

प्राचीन क्रिया योग संस्थान के एक मूर्धन्य मनीषि एवं रहस्यवादी गृहस्थ योगी ने अपनी अनन्य योग भक्ति तथा प्राणायाम के सघन अभ्यास से खेचरी सिद्ध आकाशगामिनी विद्या को पुनः प्राप्त किया — खेचरी विद्या अनन्त सिद्धिदात्री है जिसमें आकाशगामिनी विद्या सिद्धि भी एक है — साधकों के लिए यह ज्ञातव्य है कि आकाशगामिनी विद्या प्राप्ति के अनेक पथ हैं यथास्वरूप गुरुकृपाजन्य शक्तिपात, लम्बनिरोधनी योग, वायुपान पद्धति, कालिकागुह्य साधना इत्यादि — इसी भाँति खेचरी विद्या से अन्य सिद्धियाँ हस्तगत योग्य हैं यथास्वरूप मृत्युञ्जयी, अनिमेषि, गुडाकेशि इत्यादि —

प्राचीन क्रिया योग संस्थान प्राचीन जीवन विज्ञान शैली को सरलता एवं सुगमता से प्रदर्शित एवं पारदर्शित करने हेतु कटिबद्ध है।

इस स्थूल काया का अस्तित्व एकमात्र ध्यान प्रक्रिया के सम्पादन हेतु है। इसके अतिरिक्त जीव नगण्य एवं रिक्त है।

'आकाशगमिता' सिद्धों की अति विशिष्ट अवस्था है, जिसका बहुआयामी विस्तृत विवरण **'खेचरी सिद्ध आकाशगामिनी विद्या रहस्य कुञ्जिका (व्योमगम्योपनिषद)'** ग्रन्थ में उल्लिखित है।

ये रचना समस्त साधकों को समर्पित है।

सुझाव, प्रतिक्रिया एवं समीक्षा हेतु निर्दिष्ट : *ancientkriyayoga@gmail.com.*

चन्द्रशेखर कुमार
प्राचीन क्रिया योग संस्थान
मई २०१७

अन्तर्दृष्टि

वर्ष २०१०-२०१३ में मातृश्री के साथ प्राणायाम के नित्य ५-६ घण्टे भक्ति भाव से योगाभ्यास करते हुए दिव्य ऊर्जाओं एवं महात्माओं का अलौकिक साक्षात्कार प्राप्त हुआ । इस संसर्ग व सत्संग से अभिभूत होकर प्राचीन क्रिया योग संस्थान का बीजारोपण हुआ। सिद्धाश्रमे अवस्थितः मठः। कूटस्थिते दिव्यचक्षुदर्शितेन् संचालितः दिव्यः उपक्रमः।

प्राचीन क्रिया योग संस्थान प्राचीन जीवन विज्ञान शैली को सरलता एवं सुगमता से प्रदर्शित एवं पारदर्शित करने हेतु कटिबद्ध है।

अन्तःपुर में अद्भुत प्रकृति के गूढ़ अर्थों एवं अलौकिक अनुभूतियों का रहस्योद्घाटन प्रारम्भ हुआ जिनको अर्द्धांगिनी के अदम्य लगन एवं सहयोग से शनैः शनैः लिपिबद्ध करना आरम्भ किया। काल की स्थिरगम्यता मानों अनुभवजन्य किसी योगलब्ध भाव की प्रतीक्षा मात्र थी

इस पारलौकिक स्पंदन को लेखनी में समाहित करना अति दुष्कर होता अगर ये कार्य सिद्ध साधन निर्देशित न होता।

इस स्थूल काया का अस्तित्व एकमात्र ध्यान प्रक्रिया के सम्पादन हेतु है। इसके अतिरिक्त जीव नगण्य एवं रिक्त है।

साधनाकाल में साधक अपरिमित चरणों से गुजरता है। किसी भी चरणविशेष के पड़ाव का निर्धारण उसकी विशिष्टता एवं साधक की अंतर्दशा से होता है। इस साधनाक्रम में साधक की बाह्य दशावलोकन से उसकी अन्तर्दशा का स्पष्ट बोध नहीं हो पाता है। बाह्य लक्षण यथा शरीर का भयानक कम्पन एवं उत्तोलन (वायु में तैरना) इत्यादि से दर्शक हत्प्रभ एवं विस्मित हो उठता है। जबकि साधक स्वयं साक्ष्य भाव से इन बाह्य लक्षणों को सरलता एवं सुगमता से स्वीकार करते हुए साधनारत रहता है।

कालांतर में साधक को ये सत्य विदित होता है कि इसका प्रत्येक 'शब्द' अक्षुण्ण, पारलौकिक एवं अक्षय है जिसका प्रादुर्भाव सामान्यतः अगोचर है।

प्राचीन क्रिया योग संस्थान के एक मूर्धन्य मनीषि एवं रहस्यवादी गृहस्थ योगी ने अपनी अनन्य योग भक्ति तथा प्राणायाम के सघन अभ्यास से गुप्त-लुप्त दिव्य विद्याओं की सहज वैदिक विधि को प्राप्त किया, जिसका विस्तृत विवरण भविष्य में ग्रन्थों के रूप में साधकों के लिए उपलब्ध है ।

कालचक्रानुसार इन कृतियों का वैदिक ज्ञान-सागर-प्रचार-प्रसार-कृत्य के अन्तर्गत विश्व के प्रत्येक कण में प्रवाह स्वतः निसृत हो रहा है । इस आध्यात्मिक ज्ञान की किरणें प्राचीन क्रिया योग संस्थान द्वारा परिष्कृत रूप में प्राचीन सनातन वैदिक मठ की अंतरात्मा में स्थापित हो चुकी हैं

ये कृतियाँ प्राणायामजन्य सत्य घटनाओं एवं अनुभवों की अद्वितीय साक्ष्य हैं ।

ये रचनाएँ समस्त साधकों को समर्पित है।

प्रस्तुत ग्रन्थों का निर्माण प्राचीन क्रिया योग संस्थान (कूटस्थिते दिव्यचक्षुदर्शितेन् संचालितः दिव्यः उपक्रमः) (सिद्धाश्रमे अवस्थितः मठः) द्वारा किया गया है। इस प्रक्रिया में कंप्यूटर प्रणाली की अत्याधुनिक विधियों (LATEX, XƎLATEX, Ti*k*Z, gimp, C++ इत्यादि) का पूर्ण प्रयोग किया गया है।

सुझाव, प्रतिक्रिया एवं समीक्षा हेतु निर्दिष्ट : *ancientkriyayoga@gmail.com*.

चन्द्रशेखर कुमार

भौतिकी शास्त्र (पञ्चवर्षीय परास्नातक)
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर

व्यस्थापक (सीईओ) व संस्थापक (फाउण्डर)
प्राचीन क्रिया योग संस्थान

कूटस्थिते दिव्यचक्षुदर्शितेन् संचालितः दिव्यः उपक्रमः
सिद्धाश्रमे अवस्थितः मठः
#४०४, हरी कुञ्ज, सरायढेला, धनबाद, झारखण्ड ८२८१२७, भारतवर्ष
मुख्य तकनीकी अधिकारी (सीटीओ) व सह-संस्थापक (को-फाउण्डर)
एनशिएंट साइन्स पब्लिशर्स

नीरू सिंह

मुख्य कार्यपालक अधिकारी (सीओओ) व सह-संस्थापक (को-फाउण्डर)
प्राचीन क्रिया योग संस्थान

व्यस्थापक (सीईओ) व संस्थापक (फाउण्डर)
एनशिएंट साइन्स पब्लिशर्स
#४, नॉर्थ एस के पुरी, कृष्णा अपार्टमेण्ट के पीछे, पटना, बिहार ८०००१३, भारतवर्ष

दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक आकाशचारिणी जो मेरे जीवन का अनुभवपूर्ण व सत्य घटनाओं पर आधारित कथा संग्रह है। प्रस्तुत कथा संग्रह में आप जो कुछ भी पढ़ेंगे, निश्चय ही कुछ प्रसंगों और घटनाओं पर आपको सहसा विश्वास नहीं होगा, यह स्वाभाविक भी है। मनुष्य उन्हीं वस्तुओं पर विश्वास करता है जिस पर यह विश्वास करना चाहता है। इसमें अस्वाभाविकता नहीं है। उसे आप अलौकिक कह सकते हैं। इस संसार में घटनाएँ घटती हैं और निरन्तर घटती रहेंगी।

मेरे जीवन में बराबर लौकिक-पारलौकिक घटनाएँ घटी, वैसे पारलौकिक जगत का अस्तित्व है इसमें सन्देह नहीं।

हमारे भीतर असीम नैसर्गिक और परानैसर्गिक शक्तियों का विपुल भण्डार है। सबसे पहले हमें उन शक्तियों को पहचानना चाहिए।

जब तक हम उन्हें नहीं पहचानते, नहीं समझते तब तक हमारी इन्द्रियाँ उन सीमाओं में बंधी रहेगी और हमें आश्चर्यजनक पारलौकिक शक्तियों को समझने व प्रयोग में रोकती रहेंगी। हमारे धर्म ग्रन्थों में विस्तार से बहुत कुछ लिखा हुआ है, कभी-कभी विभिन्न रूपों में विभिन्न प्रकार के दृष्टान्त सामने आते भी हैं। लेकिन वैज्ञानिक रूप से उसकी पुष्टि पूर्णतया नहीं हो पाती है। जिसका एकमात्र कारण यह है कि विज्ञान की अपनी एक सीमा है लेकिन यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि पश्चिम देशों में परामनोविज्ञान का आश्रय लेकर उपर्युक्त रहस्यमय गूढ़ विषयों पर शोध और अन्वेषण कार्य व्यापक रूप से किया जा रहा है। जिसका परिणाम भी देखने को मिल रहा है।

परामनोविज्ञान तथ्यों के गूढ़ और गोपनीय रहस्य अपने आप में अत्यन्त जटिल है। अनुमानों और अन्धविश्वासों के अन्धकार की परतें चढ़ी हुई है जिन्हें हटाकर पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर उस पर शोध आदि किया जा सकता है।

इन्हीं सब को देखते हुए मैंने १९४८ में स्वतंत्र रूप से तंत्र-मंत्र तथा परामानसिक जगत से सम्बन्धित विषयों पर शोध और अन्वेषण कार्य शुरू किया। जहाँ तक भारी सफलता मिली वहीं कष्टकारक यात्रा व भारी विपत्तियों का सामना भी करना पड़ा। आकाशचारिणी और उसके परिधि में आने वाली अन्य कथाएँ मेरे शोध और अन्वेषण का परिणाम हैं। आशा है पाठकों को आनन्ददायक व रोमांच के साथ-साथ ज्ञानवर्धक सिद्ध होगा इसमें सन्देह नहीं।

अरुण कुमार शर्मा
काशी

अपनी बात

मनुष्य स्वयं अपने आप में प्रकृति की एक अभूतपूर्व विलक्षण घटना है और जीवन है उस घटना का विस्तार। कहने की आवश्यकता नहीं उस विस्तार में भी कुछ ऐसी विचित्र घटनाएँ कभी कदा घटती हैं जो स्वयं में अविश्वसनीय और चमत्कारपूर्ण होती हैं। जिन पर सहज रूप से विश्वास नहीं होता सामान्य लोगों को। परन्तु उन लोगों को यह ज्ञात नहीं है कि प्रकृति के नियम के विरूद्ध संसार में कुछ भी असामान्य नहीं होता जिसे लौकिक, पारलौकिक और चमत्कार कहा जाता है। वह सब प्रकृति के नियम के अन्तर्गत ही होता है, प्रकृति के विरूद्ध कुछ भी नहीं। हमारे ज्ञानेन्द्रियों की सीमा है और उन सीमाओं के बाहर कोई कार्य होता है तो उस पर हम सहज रूप से विश्वास नहीं कर पाते। उसे दैवी चमत्कार कहकर नमस्कार कर लेते हैं हम।

लगभग पचास वर्ष के अपने भूत-प्रेत तंत्र-मंत्र और लोक-परलोक आदि परामनोवैज्ञानिक विषयों पर शोध एवं अन्वेषण काल में मेरे जीवन में जो अलौकिक, पारलौकिक घटनाएँ घटी और विश्वास से परे जो अनुभव हुए और जो विलक्षण अनुभूतियाँ हुई उन सब को सहज भाव से स्वीकार किया मैंने। उनसे कभी भी प्रभावित नहीं हुआ मैं। जिसके फलस्वरूप उन तमाम घटनाओं, अनुभवों और अनुभूतियों को अपनी प्राञ्जल भाषा में कथा का रूप दे सका मैं।

अब तक मैंने कितनी कथा-कहानियाँ लिखीं और वे सब किन-किन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। अवस्था के अनुसार उसकी स्मृति मस्तिष्क में धुंधली पड़ती जा रही है । इस दिशा में मनोज कुमार शर्मा का प्रयास श्लाघनीय है। यत्र-तत्र बिखरी हुई हस्तलिखित अधूरी पुस्तकों और पाण्डुलिपियों को एकत्र कर उन्हें पुस्तक और संग्रह के रूप में प्रकाशित करने का प्रयत्न कर रहे हैं वे। कहने की आवश्यकता नहीं उनके इसी प्रयत्न का परिणाम है ’आकाशचारिणी’।

आशा है पाठकों को ’आकाशचारिणी’ और उसके अन्तर्भूत अन्य कथाएँ रूचिकर और उपादेय सिद्ध होंगी।

अरुण शुमार शर्मा
वाराणसी

अध्याय १
आकाशचारिणी

भारत की योगतंत्र परक जितनी भी प्राचीन विद्याएं हैं, उन्हें में एक विद्या है 'आकाशगामिनी' विद्या। यह विद्या अत्यन्त रहस्यमयी और महत्वपूर्ण है। दीर्घकाल तक मैंने इस विद्या पर स्वतंत्र रूप से जितना शोध और अन्वेषण किया और उसके आधार पर जितना जो कुछ लिखा, वह अपने आप में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। खैर, आकाशगामिनी विद्या से योगियों को ऐसी रहस्यमयी शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं, जिनसे वे अपने शरीर को हल्का बनाकर हवा में उठ जाते हैं और इच्छानुसार आकाश में संचरण-विचरण करते हैं। वास्तव में इस विद्या के अन्तर्गत जो ध्यानयोग की विशेष क्रिया है-उसके बल पर पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से शरीर का संबंध टूट जाता है जिसके फलस्वरूप शरीर भारहीन होकर शून्य में तैरने लगता है।

संसार में जितने भी प्राणी है। उनमें मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जिसके शरीर की रचना सबसे भिन्न और विलक्षण है। मनुष्य के शरीर में कुल ७२ हजार नस-नाड़ियाँ हैं जिनमें एक नाड़ी है सुषुम्मा नाड़ी। इस नाड़ी में कुछ भी नहीं है इसलिए इसे शून्य नाड़ी भी कहते हैं। सच पूछा जाए तो 'आकाशगामिनी विद्या' का सम्बन्ध इसी रहस्यमयी शून्य नाड़ी से है। इस नाड़ी के दोनों सिरे बन्द रहते हैं। यदि संयोगवश अथवा किसी कारणवश दोनों में से कोई एक बन्द सिरा खुल जाये तो मनुष्य बिना किसी साधना अथवा यौगिक क्रिया के हवा में उठने लग जायेगा।

एबिला की सन्त टेरेसा जब उपासना के समय ध्यानावस्था में होती थीं तो कभी-कभी धरती से ऊपर उठ जाती थीं। उनके कहने पर उनकी शिष्याएं उन्हें नीचे खींचने का प्रयत्न करतीं, फिर भी वे उन्हें नीचे नहीं ला पाती थीं।

ऐसी ही एक घटना सन् १८५२ में 'मैसाच्युसेट्स' के बाई नामक स्थान पर बड़े ही रहस्यमय ढंग से घटी थी। श्रीमती चैनसी का दायाँ हाथ अचानक ही ऊपर उठने लगा और धीरे-धीरे इतना ऊँचा उठ गया कि उसने श्रीमती चैनसी के शरीर को ऊपर खींचकर छत और फर्श के बीच में लटका दिया। इसी प्रकार की हवा में उड़ने की शक्ति अनायास ही डी. डी. होम नामक व्यक्ति को प्राप्त हो गयी थी। सन् १८६८ में लन्दन के एक विशेष समारोह के अवसर पर वह अचानक ही कमरे की फर्श से उठकर छत पर जा लगे थे। इनके बाद वे उड़ते हुए तीसरी मंजिल की खिड़की से बाहर निकल गये और बीच हवा में उड़ते हुए दूसरी खिड़की से अन्दर आ गये। उनके इस अनोखे कार्य को देखकर वहाँ उपस्थित अनेक विशिष्ट व्यक्ति आश्चर्यचकित रह गये थे।

प्राचीन ग्रन्धों में ऐसी कथाएं भी हैं, जब देवता या राक्षस दोनों या तो अपने यानों से या स्वयं आकाश मार्ग से तुरन्त किसी दूसरी जगह उपस्थित हो जाते थे।

भारत से बाहर भी रथों की परिकल्पना हुई है। ईसा से ३०० वर्ष पूर्व एक चीनी कवि चू-

यूआन ने दावा किया था कि वह बहुमूल्य पत्थरों से जड़े रथ पर उड़ा था। आकाश में उड़ने की गाथाएं ससार भर के सर्जनात्मक साहित्य में भरी पड़ी हैं। लेकिन उड़ने की अधिकतर कथाएं गिरजाघरों, मन्दिरों और मठों से सम्बन्धित क्षेत्रों से पनपी है। ईसाई पादरियों ने ऐसे बहुत से दावे किये हैं कि इन्द्रियेतर शक्ति के माध्यम से वे धरती से काफी ऊँचे उठ खड़े हुए हैं। सन् १८४२ में केंटरवरी के बिशप ने धरती से ऊपर उठने का प्रदर्शन किया था।

जमीन से ऊपर विचरण करने की सबसे अघिक घटनाएं तिब्बत में हुई है। इन घटनाओं के साक्षी इसी शताब्दी में निकोलाई रोरिक जैसे कलाकार भी रहे हैं। तिब्बत क्षेत्र से अनेक लामाओं को उड़ते हुए लोगों ने देखा है। अनुसन्धानकर्ताओं का कहना है कि यह उन लोगों की आध्यात्मिक शक्ति के कारण ही सम्भव हो सकता है।

बीसवीं शताब्दी की बहुत सी आकाश में उड़ने की घटनाओं का रिकार्ड वैज्ञानिकों ने जांच के लिए अपने पास रखा है। किन्तु पिछली शताब्दी के ऐसे अनेक दावे हैं जिन पर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता। जैसे १८८२ में कलकत्ता में प्रिन्स ऑफ वेल्स के सामने एक फकीर धरती से बहुत ऊपर आकाश में उठ खड़ा हुआ था। प्रिन्स ऑफ वेल्स ने ही नहीं, बल्कि उस समय उपस्थित अनेक लोगों ने अपने संस्मरणों में इस घटना का समर्थन किया है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि पिछली शताब्दी में भारत में बहुत से ऐसे लोग उपस्थित होंगे, जो धरती से ऊपर उठ खड़े होते होंगे। विश्वविख्यात विलियम इंग्लिन्टन भी उसी वर्ष कलकत्ता में ही धरती से ऊपर उठने का अपना प्रदर्शन दिखाकर विख्यात हुए थे।

१९वीं शताब्दी का सबसे अधिक आश्चर्यचकित कर देने वाला चमत्कार था श्री डेनियल डगलस होम का प्रदर्शन। वह किसी अदृश्य शक्ति का माध्यम बनकर यह प्रदर्शन करता था। इसका विवरण उस समय के प्रख्यात नास्तिक और शक्की एफ. एल. बरतक ने दिया था जो हार्टफोर्ड टाइम्स के सम्पादक थे। उन्होंने लिखा कि 'सहसा बिना किसी' उम्मीद के होम हवा में उठने लगे। वह उस वक्त उसके हाथ थामे हुए थे। वह सहसा अपने पांवों के नीचे एक फुट खाली जगह पर खड़ा हो गया। धीरे-धीरे वह उठकर सीधे छत से जा लगा। होम ने यह प्रक्रिया धीरे-धीरे सीखी थी और वह अपनी अदृश्य शक्ति के सहारे इतना दीक्षित हो गया था कि उसका प्रदर्शन देखने हजारों लोग इकट्ठा हो जाते थे। उसके प्रदर्शन को देखने और पृथ्वी की गुरूत्वाकर्षण की शक्ति से इस तरह स्वतन्त्र हवा में खड़े होने की उसको कला को देखने विश्वविख्यात लोगों में थैकरे, मार्क हन्वेन, सम्राट नेपोलियन तृतीय, रस्किन रोजेटी जैसे लोग भी रहे हैं। हजारों लोगों ने उसकी परीक्षा की थी कि कोई धोखाधड़ी तो नहीं है, पर विज्ञान पत्रिकाओं को भी मानना पड़ा कि वह विलक्षण था। उसके प्रदर्शनों से जुड़ा विश्वास था कि ईसा भी ऐसी शक्तियों से सम्पन्न थे।

१९३६ में दक्षिण भारत के एक सब्बायार पुल्लावार का भी उल्लेख किया जाता है जो धरती से ऊपर उठ गया था। उसका यह विवरण फिल्म में भी कहीं सुरक्षित है। १९७५ में अमेरिका में टोगो के नाना ओकुल ने भी ऐसा ही प्रदर्शन किया, जिसे फिल्म में रिकॉर्ड किया गया था।

आकाशगामिनी विद्या से सम्बन्धित शोध एवं अन्वेषण के सिलसिले में एक बार जब मैं

अरुणाचल के इलाके में भटक रहा था उस समय मुझे एक लामा योगी मिला था। वह बर्मा से तिब्बत जा रहा था। उसने मुझे पारद की एक गुटिका दी थी। उसने बतलाया कि वह गुटिका मुख में रख लेने से आदमी हवा में तैर तो नहीं सकता लेकिन आकाश में संचरण, विचरण और गमन करते हुए-अशरीरी, सिद्ध योगियों और दिव्यात्माओं को चर्मचक्षु से अवश्य देख सकता है। यह गुटिका मेरे लिए अति महत्वपूर्ण और मूल्यवान थी। उसे प्राप्त कर प्रसन्न हो उठा मैं।

काशी में शिवाला घाट के बगल में महाराज चेतसिंह का किला है। किला काफी पुराना और ऐतिहासिक है। लेकिन अघोर सम्प्रदाय के प्रसिद्ध संत बाबा कीनाराम द्वारा शापित होने के कारण वहाँ मरघट सी उदासी हमेशा छायी रहती है। प्रेतात्माओं की आखेटस्थली तो है ही वह शुरू से। रात्रि के समय प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है उनके अस्तित्व का। साधना की दृष्टि से मैं प्राय: नित्य रात्रि के समय किले की टूटी-फूटी बुर्जी पर घण्टों बैठा करता था। न जाने क्यों मुझे उस प्रेतपुरी में अजीब सी शान्ति मिलती थी। जब से वह गुटिका मुँह में रखकर बैठने लगा था तबसे एक विशेष प्रकार की अनुभूति होने लगी थी मुझे।

सावन-भादों का महीना था। बादलों से अटकर काला पड़ गया था आकाश। गहन निःश्वास-सी पुरुवा हवा हाहाकर करती हुई किले में दानव की तरह खड़े पेड़ों और फैली हुई झाड़ियों को कंपा दे रही थी। घोर निस्तब्ध रात्रि। निविड़ रात्रि का गहन अंधकार। यदा-कदा अभिशप्त किले में निवास करने वाली प्रेतात्माओं की एक साथ हंसने और रोने की भयानक तीखी आवाजों से किले का निस्तब्ध वातावरण बार-बार कांप उठता था और उसी के साथ मेरा मन भी दहशत से भर जाता था। सहसा मेरी दृष्टि स्याह आकाश की ओर उठ गयी। क्यों उठ गयी थी? इसका कारण तो मैं नहीं बतला सकता मगर दृष्टि उठते ही आकाश के श्याम पटल पर बादलों के बीच मैंने जो कुछ देखा उसने मुझे एकबारगी रोमांचित कर दिया।

गहरे अंधकार में डूबे हुए मेघाच्छन्न आकाश में मैंने देखा एक सुन्दर स्त्री तीव्र गति से उड़ती हुई पूरब से उत्तर दिशा की ओर चली जा रही थी। उसके काले बाल बिखर कर हवा में लहरा रहे थे। उस स्त्री की गति कभी तीव्र हो जाती थी तो कभी मन्द। कभी वह बायें घूम जाती थी तो कभी द्रुत गति से दाहिने। सबसे आश्चर्य की बात तो यह थी कि मैं उस घोर अन्धकार में भी स्पष्ट देख रहा था उस आकाशचारिणी योगिनी को। निश्चय ही वह कोई उच्चकोटि की योगसाधिका थी। देखते ही देखते वह निविड़ अन्धकार के आगोश में समा गयी।

मेरे एक परिचित तंत्रसाधक थे। नाम था भवतोष गांगुली। रात्रि के समय नित्य गंगा के किनारे बैठकर वे कोई साधना किया करते थे। कौन सी साधना करते थे वे? इसे कभी न उनसे मैंने पूछा और न तो कभी उन्होंने बताया ही मुझे। एक दिन प्रसंगवश मैंने भवतोष बाबू से जब उस आकाशचारिणी की चर्चा की तो उन्होंने बताया कि वह वक्रेश्वर श्मशान की सिद्धयोगिनी है। उसने वक्रेश्वर श्मशान के सहस्त्र मुण्डी आसन पर बैठकर पूरे साठ वर्ष कठोर साधना की है तंत्र की। और आज भी वह उसी महाश्मशान में निवास करती है। उस

सिद्ध योगिनी की आयु कितनी है यह कोई नहीं बतला सकता।

कई प्रकार की दुर्लभ सिद्धियों प्राप्त हैं उस महासाधिका को। देखते-देखते हवा में गायब हो जाती है। प्राय: नित्य आकाश मार्ग गमन करना उसके लिए सहज है। रूप, रंग और आयु बदलने में तो सिद्धहस्त है ही वह। सचमुच बड़ी ही रहस्यमयी है वह योगिनी। आपको यह सब कैसे मालूम हुआ? जब मैंने यह प्रश्न भवतोष बाबू से किया तो वे बोले-मैं नहीं जानूंगा तो भला और कौन जानेगा? उसके साथ मैं पूरे चार साल रह चुका हूँ वक्रेश्वर के श्मशान में। ऐं! आप, उसके साथ रह चुके हैं। आश्चर्यचकित होकर बोला मैं। हाँ! भाई! मैं उस मायाविनी योगिनी के साथ रहा ही नहीं हूँ बल्कि साधना भी की है उसके सम्पर्क में रहकर वहीं वक्रेश्वर के महाश्मशान में मैंने।

बतलाने की आवश्यकता नहीं। भवतोष बाबू से ये सारी बाते सुनकर मैं उस आकाशचारिणी योगिनी से मिलने के लिए आकुल हो उठा। आकाशगामिनी विद्या पर निश्चय ही उस महामाया द्वारा प्रकाश पड़ेगा। अवश्य ही उससे उस रहस्यमयी विद्या के विषय में अधिक से अघिक जानकारी मिलेगी। इन सबके अलावा उसका स्वयं का अनुभव भी सुनने को मिलेगा मुझे। संभाल न सका मैं अपने आपको। चौथे दिन ही चल पड़ा मैं उस योगिनी से मिलने के लिए। वक्रेश्वर का ऐतिहासिक महाश्मशान। तांत्रिक साधना और सिद्धि का अमोघ स्थल, जिसके एक ओर कल-कल करती हुई प्रवाहित वक्रेश्वर नदी के तट पर स्थित वक्रेश्वर महादेव का भग्न मंदिर था और उससे थोड़ी ही दूर पर था भवतारिणी महामाया तारा का विशाल मन्दिर। मन्दिर तक पहुँचने की आड़ी-तिरछी और टूटी-फूटी सीढ़ियाँ थीं जिन पर संभल-संभलकर पैर रखते हुए मैं पहुँचा मन्दिर में। सामने विशाल चबूतरा था, जिससे सटा हुआ नाट मन्दिर था और उसके बाद था माँ तारा का मन्दिर।

जनवरी का महीना था। दिन ढलने लगा था। कुहरे की हलकी परतें धरती पर फैलने लगी थीं। नाट मंदिर के चबूतरे पर थोड़ी देर बैठने के बाद मैं माँ तारा के मन्दिर की ओर बढ़ा। वातावरण बड़ा ही शान्त था। मन को बड़ी तृप्ति मिली। उस शान्त वातावरण में फिर तारा की मूर्ति के सामने जा खड़ा हुआ मैं।

माँ भगवती का मुख बड़ा ही अद्‌भुत लगा मुझे। मानो माँ मेरी ओर देखकर हँस रही है और उसी हँसी में एक अद्‌भुत स्नेह गल-गल कर झर रहा है। फर्श पर बैठ गया और दोनो हाथ जोड़कर अपलक माँ के मुख की ओर निहारने लगा मैं। उसी स्थिति में अपने भीतर एक नीरव आलोड़न का अनुभव किया मैंने। कुछ बोला नहीं जा रहा था मुझसे। मगर मन में एक आकुल प्रार्थना उठ रही थी... मैं पूजा नहीं जानता। स्तुति नहीं जानता। तुम्हारी महिमा भी नहीं जानता माँ। क्यों आया हूँ और किसकी खोज में आया हूँ, यह तुम अच्छी तरह जानती हो। मेरी क्या इच्छा है? इससे भी तुम परिचित हो।

कब तक मैं बैठा रहा, नहीं जानता। फिर उठा और धीरे-धीरे चलकर मन्दिर के बाहर निकल आया। सांझ की स्याह कालिमा शनैः शनैः फैलने लगी थी। जब मैं नाट मन्दिर के करीब पहुँचा तो अचानक मेरी नजर बायीं ओर घूम गयी। देखा, नाट मंदिर के मोटे खम्मे से टेक लगाये व्याघ्र आसन पर एक भैरवी ध्यानस्थ बैठी हुई थी। शरीर पर कसकर पहनी

लाल रंग की रेशमी साड़ी थी। चौड़े माथे पर श्मशान भस्म की त्रिपुण्डी रेखा थी और उस रेखा के बीच में लाल सिन्दूर का बड़ा सा गोल टीका था। दोनों भुजाओं, गर्दन, छाती और पेट पर लाल चंदन का प्रलेप था। सिर के बाल बिखरकर जमीन का स्पर्श कर रहे थे। बड़ी-बड़ी फांक जैसी आँखे कुछ-कुछ रक्ताभ। गले में रुद्राक्ष की मोटी-सी माला। दोनों कलाइयों में शङ्ख और लोहे की चूड़ियाँ। शरीर का रंग काला। नाक-नक्श आकर्षक। मगर व्यक्तित्व खूब स्थिर और कठोर। पीठ सीधी किये बैठी थी वह। पास ही लोहे का चमचमाता हुआ लम्बा सा एक त्रिशूल रखा था। सुडौल और तगड़ा शरीर था उसका। बैठने पर भी लम्बी लग रही थी वह। वय पैंतीस-चालीस से ज्यादा न थी। मगर मुंह की ओर देखकर वय की बात याद नहीं आती थी।

भैरवी की बड़ी-बड़ी रक्ताभ आँखों की अपलक दृष्टि के एक अव्यर्थ आघात से ठिठककर खड़ा हो गया मैं। उस दृष्टि को देखते ही मुझे लगा कि वह काफी देरी से मेरी ओर ही स्थिर होकर लगी हुई है। अब आँखों से आँखें मिलते ही मानों हठात् मेरा सारा शरीर बेबस और पंगु हो गया। ऐसी वेधने वाली तीक्ष्ण और स्थिर दृष्टि मैंने पहले कभी नहीं देखी थी। मुझे लगा कि इन आँखों के द्वारा यह नारी किसी भी आदमी को अपने पास खींच सकती है और उसके बाद इत्मीनान से पास रख त्रिशूल को उसके कलेजे में उतार दे सकती है। विमूढ़ होकर ताकता रहा मैं। दूसरी ओर मुंह नहीं घुमा सका। हिल-डुल भी न सका। खूब धीरे-धीरे भैरवी के पलक गिरे। पुकारकर या इशारे से नहीं, बल्कि पलकें गिरा करके ही उसने मुझे मानों अपने पास बुलाया। एक बार पलकों को गिरते देखकर मेरा भी होश लौट आया। तुरन्त संभल गया मैं। जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाकर कुछ सीढ़ियाँ उतरकर चबूतरे पर से सिंह द्वार की ओर बढ़ चला। नीचे उतरने कं लिए वह टूटी-फूटी और बेढंगी सीढ़ियाँ थीं।

सिंह द्वार के बाहर आकर मैंने लम्बी सांस ली। मेरा कलेजा अब भी धड़क रहा था। वहाँ खड़े-खड़े मैंने एक बार घूमकर नाट मन्दिर की ओर देखा और देखते ही मुझे एक बार फिर वही झटका लगा। भैरवी रिथर दृष्टि से मेरी ओर देख रही थी। उस दृष्टि में क्रोध का आभास था। जहाँ भी जाऊँ। जितनी भी दूर जाऊँ। मानो वह मेरा सर्वस्व नाश कर दे सकती है। अब बिना एक पल रुके मैं सीढ़ियाँ उतरकर नीचे आ गया। शान्ति की एक लम्बी सांस ली मैंने। ऐसा अनुभव कभी नहीं हुआ था मुझे जीवन में। तांत्रिक साधना के रहस्यों को जानने के लिए न जाने जितने स्थानों की यात्रा करनी पड़ी है मुझे, मगर यह मामला बहा ही विचित्र लगा था।

हठात् न जाने क्या याद आते ही कांप उठा मैं। कहीं यह भैरवी ही तो आकाशचारिणी योगिनी नहीं है? भवतोष बाबू मुझे आकाशचारिणी योगिनी का स्वरूप बतलाते-बतलाते रुक गये थे। बाद में मुझे भी पूछना याद नहीं रहा था।

रात में ठहरने के लिए धर्मशाला में एक छोटा सा कमरा मिल गया था मुझे। उसी कमरे में जमीन पर कम्बल बिछाकर अगरबत्ती जलायी और कम्बल पर बैठकर काफी देर तक माँ तारा का स्मरण करता रहा मैं। न जाने कब किस क्षण नींद आ गयी मुझे ओंर उस अवस्था में कई बार वही भैरवी दिखलाई पड़ी, निर्मम और भयंकर रूप में। एक बार तो डर के मारे

उठकर बैठ ही गया मैं। दूसरे दिन सबेरे मेरा मन काफी शांत था। तारा मंदिर में भैरवी को देखकर भी मैंने परवाह नहीं की। एक बार घूमकर भी उसकी ओर देखा नहीं मैंने। माँ का दर्शन कर वापस चला जाया। फिर सांझ हुई। आकाशचारिणी योगिनी की खोज में फिर मैं चल पड़ा महाश्मशान की ओर।

काफी लम्बा-चौड़ा था वक्रेश्वर का वह महाश्मशान। श्मशान भूमि में ही कई पेड़ थे-सभी पेड़ों पर यमघण्ट बंधे हुए थे ओर हर पेड़ के नीचे नरकंकाल के हाथ-पैर की हड्डियाँ ओंर खोपड़ियाँ बिखरी हुई थीं। महाश्मशान के बगल में सहस्रमुण्डी आसन की वेदी थी। शायद भवतोष बाबू ने बतलाया था कि सहस्रमुण्डी आसन सिद्ध है। न जाने कितने योगी और तांत्रिक उस महा आसन पर बैठकर सिद्धिलाभ कर चुके हैं अब तक। सभी लोग उस आसन पर नहीं बैठ सकते। संयम और मन की स्थिरता न होने पर यह महा आसन सहा नहीं जा सकता।

पूरे महाश्मशान में गहरी नीरवता छायी हुई थी। एक अबूझ-सी खिन्नता भरी थी, वातावरण में। चारों ओर सांय-सांय हो रहा था। श्मशान का चवकर लगाते समय एक महाशय से परिचय हो गया। नाम था भोलाराम। भोलाराम दिन-रात श्मशान में ही निवास करते हैं। बीच-बीच में माँ-माँ कहकर हुंकार कर उठते हैं। भोलाराम शाक्त मार्ग के साधक हैं। गहरे लाल रंग का कपड़ा बराबर पहने रहते हैं। सारे मुंह पर काली दाढ़ी और मूंछ भरी हुई है। वैसे मिलनसार व्यक्ति हैं। नया आदमी देखते ही हर प्रकार की खोज-खबर लेते हैं। मेरे साथ भी बातचीत जमाने की चेष्ठा उन्होंने की थी।

भोलाराम के साथ थोड़ी बातचीत करने के बाद सहस्रमुण्डी आसन की ओर बढ़ गया मैं। मगर दस-पंद्रह कदम आगे बढ़ने पर ठिठककर खड़ा हो गया। सहस्रमुण्डी आसन के पास ही हाथ में त्रिशूल लिये भैरवी के एकदम सामने पड़ गया मैं। लम्बा और शक्तिशाली डील-डौल था भैरवी के शरीर का। गंभीरता के बावजूद काला चेहरा सुन्दर ही लग रहा था। पहले दिन की तरह दृष्टि उतनी अंतर्भेदी नहीं थी। फिर भी अपलक और कठोर अवश्य थी।

मैं एक तरफ हटकर निकलने को उद्यत हुआ था कि कण्ठ स्वर सुनकर खड़ा हो गया। उस कण्ठ स्वर में न जाने कैसी एक मोहिनी शक्ति थी-’पुण्य करने आये हो?’

अनजाने ही मैंने सिर हिलाकर बताया कि नहीं, ऐसा नहीं है। ’तब? उससे अधिक साधना या मोक्ष प्राप्ति ?’

मैंने फिर नकारात्मक सिर हिलाया। वह मेरी ओर अपलक देख रही थी। उसकी दृष्टि पैनी होती जा रही थी। अब तक महाश्मशान में तीन-चार शव आ गये थे दाह कर्म के लिए। थोड़ी भीड़ हो गयी थी। लोग कभी मुझे तो कभी भैरवी को देख रहे थे। एकाएक स्वाभाविक होकर आगे बढ़ गया मैं। कलेजे में कंपकपी थी। समझ न सका। लौटते समय देखा, भैरवी नहीं थी वहाँ ।

रात्रि में कमरे का ताला बन्द कर मैं फिर बाहर निकला। मेरे कदम अपने आप सहस्रमुण्डी आसन की ओर बढ़ गये। सांझ के समय आने वाले शवों की चिताएं अब तक काफी जल

चुकी थी। श्मशान में कुत्तों और सियारों की भीड़ इकट्ठी हो गयी थी। सहस्रमुण्डी आसन पर बैठने की इच्छा थी मेरी उस समय। सोचा, महा आसन पर बैठकर आकाशचारिणी उस योगिनी का चिन्तन करूंगा और माँ को पुकारूँगा। चारो ओर गहन अन्धकार छाया हुआ था। वातावरण स्तब्ध था। हवा की सरसराहट भी चौका देती थी कभी-कभी। सहस्रमुण्डी वेदी पर आसन लगाकर बैठ गया मैं, भय नहीं लगा। और भी दो-चार साधक बैठे थे वहाँ। भोलाराम भी थे। मगर अन्धेरे में किसी का चेहरा स्पष्ट नहीं दिखलायी पड़ रहा था। स्थिर होकर कुछ देर बैठने के बाद ही मेरा मन शान्त होकर गहराई में डूब गया। वह एक विचित्र अनुभूति थी। एक अद्भुत प्रशस्ति की गहन अनुभूति। चुपचाप कोई आकर बैठ गया था और कोई उठकर चला भी गया था। मगर मेरा ध्यान उधर नहीं था। वास्तव में समर्पण के एक नये प्रवाह में विभोर भी मैं। पता नहीं कितना समय बीत गया। अचानक बिल्कुल पास ही किसी के जोर से सांस लेने की आवाज सुनकर मैंने धीरे से आँखें खोलकर देखा। देखते साथ ही रोम-रोम सिहर उठा मेरा। सिर्फ गज भर की दूरी पर दो जलती हुई आँखें मेरे चेहरे की ओर स्थिर होकर देख रही थीं।

ये क्या किसी बाघिन की आँखें हैं? कब वह आयी और बैठ गयी थी-मुझे पता तक नही चला था। उसका सारा शरीर पत्थर की तरह निश्चल था। केवल मशाल की तरह आँखें जल रही थीं। सहस्रमुण्डी आसन पर उस समय कोई भी आदमी नही था। मेरा सारा शरीर अवश और निस्पन्द हो गया। ’माँ’ !

आसन के नीचे पास ही किसी पेड़ के नीचे से भोलाराम का गम्भीर स्वर तैरता हुआ आया और उसी क्षण मानो मुझे होश आया। सारे शरीर में बिजली-सी दौड़ गयी। उठकर सीधा खड़ा हो गया मैं और उसके बाद अंधेरे में ही आसन से उठकर तेजी से पैर उठाते रास्ते की ओर चल पड़ा। उस समय मानो मैं रास्ता भूल गया था और माँ नाम के विद्युत प्रकाश में वह दिख गया मुझे। मानो यह अवसर खो देने से मैं अपने आपको हमेशा के लिए खो बैठता।

सारी चिताएं जलकर राख में बदल गयी थीं। श्मशान में पहले जैसी शान्ति फिर छा गयी थी। मैं उस भैरवी के बारे में ही सोचता हुआ जल्दी-जल्दी आगे बढ़ रहा था।... कौन है यह रहस्यमयी भैरवी? इस प्रकार मेरे पीछे क्यों पड़ी है? मिलने आया था यहाँ आकाशचारिणी योगिनी से और मिल गयी यह त्रिशूलधारिणी भैरवी। कहाँ आकर किसके चंगुल में फंस गया मैं ?

दूसरे दिन भोलाराम मिल गये अचानक। बोले-कल रात्रि में महाआसन पर आपके करीब भैरवी को बैठी हुई देखकर मन में एक बात आयी। बुरा न मानियेगा। जरा आप उस त्रिशूलधारिणी से बचकर रहियेगा। अत्यधिक भयंकर है वह। न जाने कितने लोगों का रक्तपान कर चुकी है वह इस श्मशान में रहकर। हे ! माँ ! यह कहकर भोलाराम चुप हो गये।

’कौन है यह भैरवी? कब से रह रही है वह श्मशान में’-प्रश्न किया मैंने।

मैं उसे पिछले चालीस साल से इसी रूप में और इसी तरह यहाँ इस श्मशान में देख रहा हूँ।

जरा-सा भी फर्क नहीं पड़ा है उसके रूप-रंग और स्वभाव में। थोड़ा रूककर भोलाराम आगे बोले-सुना है, पश्चिम बंगाल के किसी जमींदार परिवार से सम्बन्धित है वह। न जाने कैसे बचपन में ही सर्वेश्वरानन्द कापालिक नाम के एक अघोर तांत्रिक के चंगुल में फंस गयी। उस विकट तांत्रिक ने उसे मोहग्रस्त कर रखा था। बहुत दिनों तक उसकी भैरवी बनकर रही थी वह। उसे एक पुत्र भी हुआ था जिसकी बलि देकर उस कापालिक तंत्र साधक ने अपनी किसी दुर्लभ साधना को सिद्ध किया था। वह अपने पुत्र का वियोग शायद सहन न कर सकी और उस तांत्रिक का साथ हमेशा के लिए छोड़कर हिमालय की ओर चली गयी। जब वापस लौटी तो उसके पास अनेक प्रकार की दुर्लभ यौगिक और तांत्रिक सिद्धियाँ थीं। तबसे लेकर अब तक वक्रेश्वर के इसी श्मशान में रह रही है वह। थोड़ा रूककर भोलाराम आगे बोले-आश्चर्य की बात है कि अपनी भैरवी का पीछा कापालिक सर्वेश्वरानन्द ने अभी तक नहीं छोड़ा है। वह न जाने कहाँ से कैसे यहाँ आ जाता है हर अमावस्या की रात में और गोपनीय ढंग से भैरवी के साथ साधना कर न जाने कब वापस भी लौट जाता है। क्या आपने कापालिक सर्वेश्वरानन्द को देखा है-मैंने पूछा। हाँ, देखा है-भोलाराम ने कहा-कई बार देखा है। काफी लम्बी-चौड़ी काठी का है वह भयंकर कापालिक। आयु कितनी होगी यह तो मैं नहीं बतला सकता। मगर देखने में चालीस से ज्यादा नहीं लगता वह। घने बाल हैं-जो कंधो तक झूलते रहते हैं। दाढी मूंछे भी घनी है। मस्तक पर श्मशान का भस्म और काला टीका लगाता है। काला चोंगा भी पहनता है। शराब के नशे के कारण हमेशा उसकी आँखें गूलर की तरह लाल रहती हैं। चेहरे पर हमेशा क्रूरता का भाव भी रहता है। कापालिक का यह विवरण सुनकर न जाने क्यों उसे देखने ओर उससे मिलने की लालसा जाग्रत हो गयी मेरे मन में। दो दिन बाद ही अमावस्या थी।

दो दिन तक मैं श्मशान में नहीं गया। बस, माँ तारा का दर्शन कर वापस अपने कमरे में आ जाता था। सोचा अमावस्या की रात्रि में श्मशान की ओर जाऊँगा और महाआसन पर बैठकर प्रतीक्षा करुँगा उस कापालिक की। लेकिन अमावस्या के प्रात: काल मंदिर में एक सज्जन से मेरा परिचय हो गया। वे माँ का दर्शन करने बहुत दूर से आये थे। नाम था-चक्रपाणि। हाँ, यही नाम बतलाया था उन्होंने। लेकिन उनका व्यक्तित्व काफी रहस्यमय लगा मुझे। लम्बा कद, मजबूत काठी, काला रंग, शरीर पर लाल रंग की लुंगी और चादर, गले में मूंगे और रुद्राक्ष की मालाएँ, सिर मुड़ा हुआ, दाढ़ी-मूंछ भी सफाचट, गोल-गोल आँखें, तोते की तरह नाक, कद्दू की तरह बेडौल चेहरा, नीचे का जबड़ा मोटा और नीचे की ओर लटका हुआ। कुल मिलाकर एक बदसूरत व्यक्तित्व। फिर भी न जाने कैसा आकर्षण था उसमें।

मैं काशी से आया हूँ। आकाशगामिनी विद्या पर विस्तृत जानकारी चाहता हूँ और इसी के लिए वक्रेश्वर में एक आकाशचारिणी योगिनी से मिलने भी आया हूँ- आदि बातें न जाने कैसे जान गये थे वे महाशय। घोर आश्चर्य हुआ था मुझे। यहीं तक कि वे मेरा नाम भी जान गये थे। मैं उन्हें अपने कमरे में ले आया। अब तक काफी प्रभावित हो चुका था मैं उनसे। मेरे आसन पर ही पसर कर बैठ गये महाशय। निश्चय ही कोई सिद्ध साधक थे वे, इसमें सन्देह नहीं। यदि न होते तो मेरे विषय में सारी बातें कैसे जान-समझ पाते। कमरे में बैठने के बाद

एक बार उन्होंने चरों ओर सिर घुमाकर देखा और उसके बाद अपने छोटे से झोले से गांजा निकाल कर उसे सुलगाने लगे। गांजे का दो-चार दम लगाने के बाद कुछ देर तक मौन रहे वह, फिर भर्राये स्वर में बतलाने लगे-योग तंत्र की चौसठ विद्याओं में से एक है-आकाशगामिनी विद्या। यह प्राचीन विज्ञान है जिसे जानने वाला व्यक्ति आकाशमार्ग से सर्वत्र विचरण कर सकता है। नदी, पहाड़, जंगल, समुद्र-कोई भी उसकी यात्रा में बाधक नहीं बन सकते हैं। इस रहस्यमयी विद्या के अनेक उदाहरण हैं। प्राचीन साहित्य में इस विद्या के द्वारा सम्पूर्ण जम्बू द्वीप को यात्रा करते थे। नारद भी तीनों लोकों में स्वच्छन्द विचरण कर पाते थे। रावण को इस विद्या का आचार्य ही कहना उपयुक्त होगा। उसने आकाशगामिनी विद्या के विज्ञान की सहायता से पुष्पक विमान बनाया और हेमवती विद्या द्वारा-अथाह स्वर्ण बनाकर सम्पूर्ण लंका को ही स्वर्णमयी बना बना। यह सिद्धि प्राप्त करने के लिए रावण ने ऐसा पारद तैयार कर लिया था-जिसे नाभि में धारण कर लेने से वह जरा-मरण के भय से मुक्त हो सकता था। ऐसे सिद्ध पारद को 'अमृत' कहा गया है। रावण की मृत्यु तभी सम्भव हो सकी-जब राम ने अपने ३१वें बाण से उस पारद को नष्ट कर दिया था। दूसरी शताब्दी में भी इस विद्या के जीवित रहने का प्रमाण मिलता है। उत्तरी भारत के आर्यावर्त प्रान्त में नागवंश के अनेक प्रतापी राजा हुए इस अवधि ने जिन्होंने इस रहस्यमयी विद्या को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। इनमें अहिछत्र (वर्तमान रुहेलखण्ड) के राजा वासुकी के असाधारण प्रतिभाशाली पुत्र नागार्जुन का नाम प्रसिद्ध है। नागार्जुन के गुरु थे पदलिप्त। उन्होंने नागार्जुन को आकाशगामिनी विद्या बतलायी। गुरु पदलिप्त नित्य आकाशमार्ग से तीर्थ यात्रा करते थे जिन्होंने नागार्जुन की सेवा से प्रसन्न होकर उन्हें आकाशगमन के सभी रहस्यों से परिचित करा दिया था।

इसके बाद गुप्त काल में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के शासन काल में व्याडी नाम के एक रसायनशास्त्री ने काफी परिश्रम के बाद आकाशगामिनी विद्या प्राप्त की थी। उन्होंने इस विषय पर एक पुस्तक भी लिखी थी जो अब अप्राप्य है।

इसके बाद आकाशगामिनी विद्या के विषय में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। इसका कारण यह था कि इससे संबंधित साहित्य नष्ट हो गया। हिन्दूकुश पर्वत श्रेणी को पार कर बर्बर, असभ्य आक्रमणकारी यहाँ आये। उन्होंने मन्दिरों और विश्वविद्यालयों के अथाह धन और ज्ञान को लूटा और दुर्लभ पुस्तकों तथा प्राचीन ग्रन्धों को जलाकर नष्ट कर डाला। सबसे अधिक क्षति का सामना नालन्दा विश्वविद्यालय को करना पड़ा। पूर्व मध्यकाल में केवल यही एक विश्वविद्यालय बचा था जहाँ अनेक प्रकार की प्राचीन और रहस्यमयी विद्याएँ जीवित थीं। आचार्य गौणपाद, अनंग वज्र, गोरक्षनाथ, चर्पटीनाथ, नागसेन आदि सिद्ध उस युग के असाधारण प्रतिभाशाली विद्वान थे। बाणभट्ट के अनुसार सिद्ध तपस्वियों का साधना स्थल 'श्री पर्वत' था जो वर्तमान नागार्जुन क्रीड़ा स्थल (आन्ध्र प्रदेश) के निकट नरहल्ल पहाड़ है।

चक्रपाणि ने बताया कि आज भी हिमालय की सुरम्य घाटियों, गिरि गुफाओं और दुर्गम स्थानों में प्राचीन विद्याओं के गौरव से मण्डित अनेक सिद्ध पुरुष निवास कर रहे हैं। सिद्ध पारद द्वारा उन्होंने शरीर को काल के बन्धनों से मुक्त कर लिया है। आकाशगामिनी विद्या

द्वारा वे इच्छानुसार यत्र-तत्र विचरण करते रहते हैं। सामान्यत: उन्हें देख पाना सम्भव नही है। किन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि कुछ पुण्यात्मा लोगों को उनके दर्शन हुए हैं। उन्होंने उन्हें प्रत्यक्ष आकाश में गमन करते हुए देखा है।

यह सुनकर मैँने कहा- आठ-दस वर्ष पहले हालीवुड की अभिनेत्री शर्ल-मैक्मिलन भूटान आदि पर्वतीय प्रदेशों की यात्रा पर गयी थीं। उन्होंने अपने यात्रा संस्मरण में लिखा है कि उन्होंने आकाश में पीत वस्त्रधारी एक लामा को उड़ते हुए देखा था। उस आश्चर्यजनक दृश्य को देखकर उनके मुख से निकल पड़ा-'काश! आज न्यूटन और आइन्स्टीन यहाँ होते। शायद वे अपने गुरुत्वाकर्षण से सबंधित लम्बे-चौड़े शोध ग्रन्धों को फाड़कर फेंक देते। फिर मैंने कहा-यह एक सशक्त प्रमाण है कि आकाशगामिनी विद्या आज भी जीवित है।

चक्रपाणि महाशय निस्सन्देह विद्वान थे। आकाशगामिनी विद्या का ऐतिहासिक विवरण और सांस्कृतिक स्वरूप का जो वर्णन उनसे सुनने को मिला यह निश्चय ही मेरे लिए अति मूल्यवान था।

मेरे यह पूछने पर कि 'आकाशगमन गुटिका' क्या है, तो इस विषय में चक्रपाणि ने बतलाया कि बारहवीं और चौदहवीं शताब्दी के बीच चिकित्सा शास्त्र पर कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखी गयीं। इन रचनाओं में 'पारद' से ऐसी गुटिका के निर्माण की विधियाँ भी लिखी हैं, जिससे आकाशगमन अर्थात् आकाश विचरण की सिद्धि मिल जाती है। वास्तव में ये तमाम पुस्तकें प्राचीन विद्याओं की स्मृति मात्र हैं जिन्हें संकलित करना रचनाकारों ने अपना कर्तव्य समझा। कुछ प्राचीन विधियाँ अभी ज्ञात हैं। यदि उन्हें सही ढंग से सिद्ध कर लिया जाय तो आकाश में उड़ने की शक्ति प्राप्त हो सकती है। ऐसी ही एक विधि आठवीं शताब्दी में आदि शंकराचार्य के गुरु द्वारा 'रस हृदय तंत्र (अ. १९)' में लिखी गयी है जो इस प्रकार है-सर्वप्रथम पारद को घूमबंधी बनायें, हीरा, माणिक्य, नीलम, मोती और मरक्त इन पाँच महारत्नों का उसमें क्रमश: जारण और मारण करें। फिर सुवर्ण बीज युक्त पारद के साथ अभ्रक तत्व, स्वर्ण माक्षिक सत्व तथा कान्त पाषाण सत्व मिलाकर गुटिका बनायें। इसे खेचरी गुटिका कहते हैं। मुख में धारण करते ही वह अपना प्रभाव दिखलाती है। वह मनुष्य सुर,असुर, मनुष्य और सिद्धगण, आदि सभी का पूज्य हो जाता है। यह क्रिया कठिन अवश्य है क्योंकि खेचरी गुटिका बनाने की विधि ग्रन्थ में सूत्र रूप में है। गुरु के बिना इसे सफलतापूर्वक कर पाना शायद ही सम्भव हो सके। पारद को धूमबन्धी बना पाना भी साधारण बात नहीं है। फिर तत्वों के जारण-मारण की क्रियाएं भी कोई नही जानता। यदि पुस्तकों की सहायता से ये क्रियाएं की भी जाये तब भी मार्गदर्शक एवं अनुभवसिद्ध गुरु की आवश्यकता बनी रहेगी। यद्यपि विधान और विनम्र रसशास्त्री अपने विवेक की सहायता से तथा कठोर परिश्रम कर इस क्रिया को सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सकते हैं।

यह सुनकर मुझे ऐसा लगा कि चक्रपाणि महाशय ऐसी ही कोई न कोई गुटिका के निर्माण की विधि अवश्य जानते हैं। इस सबंध में पूछने पर उन्होंने बतलाया कि खेचरी गुटिका के निर्माण की एक और विधि है-काले धतूरे के बीजों के आठ तोले तेल में तीन टंक शुद्ध पारे को सात दिन तक लगातार घोटें। जब पारा जोंक के आकार का हो जाये तो उड़द के चूने को

गीला करक उसमें पारे को भलीभांति बन्द कर दें। ऊपर से धागे से बांधकर सूर्य के धूप में सूखायें। उसके बाद सरसों के दस सेर तेल में उसे पकायें। जब तेल जल जाये तो उसे शीतल छाया में रख दें। इसके बाद उसे लेकर जलांशहीन दूध से भरे घड़े में रखे दें। जब वह गुटिका घड़े से सम्पूर्ण दूध को सोख ले-तब घड़े से निकालकर उसे बकरे के मुख में रख दें। बकरे के हृदय में भयानक जलन शुरू हो जायेगी और अत्यन्त व्याकुल होकर वह कहीं भी शान्ति का अनुभव नही करेगा। जब गुटिका बकरे के पेट में चली जाती है तो बकरा मर जाता है। तब गुटिका निरापद जानकर उसे बकरे के पेट से बाहर निकाल लें और अपने मुख में धारण करें। यह गुटिका यौन-रोग, मुख रोग और कर्कट रोग (कैंसर) को भी तत्काल नष्ट कर देती है। गुटिका के प्रभाव से मनुष्य सौ योजन तक बिना किसी रूकावट के कहीं भी जा सकता है।

यदि बकरे के स्थान पर मुर्गे का प्रयोग किया जाय तो गुटिका के प्रभाव से मनुष्य अन्तर्ध्यान भी हो सकता है। अपने यौवन को अक्षुण्ण बनाये रख सकता है। यदि इसी प्रकार बकरे और मुर्गे के स्थान पर तीतर का प्रयोग किया जाय तो मनुष्य आकाशमार्ग से संचरण, विचरण तथा गमन करने वाले सिद्ध रोगियों, गन्धर्वों, किन्नरों तथा दिव्य शरीरधारी महापुरुषों को प्रत्यक्ष देख सकता है। लेकिन यह कार्य योग्य गुरु की देखरेख में ही करना चाहिये। यह विधि कम कठिन है।

जिस पुस्तक से यह चुना गया है-वह प्रामाणिक पुस्तक है इसलिए इस खेचरी गुटिका की सत्यता में सन्देह नहीं। योग में एक खेचरी मुद्रा भी है। जिन्हें खेचरी मुद्रा सिद्ध रहती है वे भी आकाशगमन कर सकते हैं। हिमालय में एक आश्रम है जिसे ज्ञानगंज आश्रम कहते हैं। उस योगाश्रम में निवास करनेवाले योगियों को खेचरी मुद्रा सिद्ध है। वे इच्छानुसार आकाशभ्रमण करते हैं। उनके लिए कोई सीमा नहीं है।

चक्रपाणि महाशय बोले-तुम तो जानते ही हो कि सम्पूर्ण जगत-पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश-इन पांच तत्वों के संयोग से बना है। समस्त वस्तुएं दो प्रकार की हैं-जड़ और चेतन। चेतन वस्तुओं में एक अनिवार्य बात यह है कि इनमें पाँचों मूल तत्व किसी न किसी अनुपात में मौजूद रहते हैं तथा इनका अनुपात बदलता रहता है। जड़ वस्तुओं में ये पाँचों मूल तत्व एक साथ प्राय: नही पाये जाते। यदि किसी वस्तु में मिलते भी हैं तो उनका अनुपात बदलता नहीं। यदि ऐसी विधि ज्ञात हो जाये कि पाँचों मूल तत्व रखने वाली जड़ वस्तु में तत्वों का अनुपात बदला जा सके तो जड़ वस्तु चेतन प्राणी की तरह व्यवहार कर सकती है। इस परिकल्पना को पारद पर साकार करने का प्रयास किया गया।

क्यों?-मैंने फिर प्रश्न किया।

इसलिए कि इस दुर्लभ पदार्थ पारद में पाँचों तत्व मौजूद हैं। अन्य पदार्थों का इस पर चमत्कारी प्रभाव भी पड़ता है। ऋषियों ने सोचा कि प्रकृति जब पाँच मूल तत्वों से मिलकर बनी है तो पृथ्वी पर भी ऐसे पांच पदार्थ अवश्य होंगे जिनमें अलग-अलग पाँचों तत्वों के गुण हों। कठोर परिश्रम के द्वारा ये पाँच पदार्थ भी खोज ही लिये गये। आकाशतत्व के सारे गुण 'अभ्रक' में पाये गये। पाँचों पदार्थों को पारद के साथ मिलाकर परीक्षा की गयी तो

पता चला कि वही पारद अब अत्यन्त विचित्र और चेतन जैसी रहस्यमयी शक्तियों से परिपूर्ण हो गया है।

थोड़ा रूककर चक्रपाणि महाशय आगे बोले-उदाहरणार्थ जब ऋषियों ने पारद से आकाश में उड़ने की शक्ति प्राप्त करनी चाही तो उन्हें ज्ञात हुआ कि पारद में आकाश तत्व यानी अभ्रक का योग विशेष रूप से करना पड़ता है। यानी जैसे गुण चाहिये, वैसे ही गुण वाले पदार्थ का एक विशेष योग यानी मेल, बस।

फिर क्या था, रहस्य का दरवाजा खुल गया। और पारद से वही- आठों सिद्धियों और नवों निधियाँ प्राप्त कर ली गयी जो किसी योगी को घोर परिश्रम करने पर भी नहीं मिल पातीं।

इस प्रसंग में तुमको यह भी मालूम होना चाहिए कि भेषजशास्त्र तथा रसायनशास्त्र के विषय अत्यन्त कठिन और रहस्यमय हैं। दैवी शक्ति के बिना प्रेरणा अथवा सहायता के उनमें गति अथवा सफलता पाना संदिग्ध है। जिस दैवी शक्ति के द्वारा इन विद्याओं में गति एवं सफलता प्राप्त होती है और प्राप्त होती है सिद्धि उसे तंत्र के प्राचीन ग्रन्थों में ’वट यक्षिणी’ की संज्ञा दी मयी है। भारतीय रसायनशास्त्र के इतिहास का अध्ययन करने पर पता चलता है कि नागार्जुन को भी ’वट यक्षिणी’ की सिद्धि प्राप्त थी। उनके समय में पारद अत्यन्त व्यापक और महत्वपूर्ण शब्द था। नागार्जुन की तरह हेमबीज भी एक सिद्ध रसायनशास्त्री थे। वे पारद की सहायता से सोना बनाने की कला में दक्ष थे। इसलिए उनके नाम पर ही इस विद्याको ’हेमवती विद्या’ कहा जाने लगा। लेकिन नागार्जुन की ख्याति ’रस विद्या’ के पण्डित के रूप में भारत के बाहर तिब्बत और चीन में भी फैली हुई थी। वैसे तो वह विदर्भ के ब्राह्मण थे लेकिन बाल्यावस्था में ही वे बौद्धधर्म को स्वीकार कर भिक्षु हो गये। वे बहुत दिनों तक नालन्दा विश्वविद्यालयमें मुख्य अधिष्ठाता भी रहे थे। खैर,

चक्रपाणि महाशय ने आगे बतलाया कि व्यापकता के कारण ’रस’का पर्याय ही समझा जाने लगा। लोग उसे रस’ शब्द से भी सम्बोधित करने लगे। काफी लम्बे अर्से तक रसायन पारद का शास्त्र रहा जिसके आधार पर ’रसेश्वर दर्शन’ का निर्माण हुआ। शैव दार्शनिकों का एक सम्प्रदाय रसेश्वर दर्शन का भी अनुयायी है जिसका सिद्धान्त यह है कि जीवनमुक्ति की प्राप्ति का उपाय दिव्य शरीर का पाना है। व्याधिग्रस्त शरीर से न साधना हो सकता है, न तो ब्रह्म का साक्षात्कार ही सम्भव है। इसलिए शरीर को रोगरहित, व्याधिरहित, दिव्य और दृढ़ होना आवश्यक है। इसी का नाम ’पिण्डत्यैर्थ’ है। एक मात्र यह कार्य सिद्ध पारद द्वारा ही संभव है। योगियों ने पारद को शकर का ’वीर्य’ और अभ्रक को पार्वती का ’रज’ के रूप में स्वीकार किया है। इन दोनों के संयोग से जो भस्म तैयार होता है, वह शरीर को दिव्य, रोगरहित बनाने में पूर्ण सक्षम है। शरीर के भीतर प्राण और बाहर पारद-इन दोनों के उचित प्रयोग से ही योगीगण अक्षय यौवनसम्पन्न, कालञ्जयी और दिव्य शरीर के होते हैं। पारद का पर्याय ’रस’ है और वह ’रस’ ईश्वर है। उस रस को अट्ठारह प्रकार के संस्कारों द्वारा सिद्ध करना पड़ता है। ’रस’ की इसी उपयोगिता के कारण ईश्वर कहा जाता है। रसेश्वर दर्शन का यही सिद्धान्त है। इस दर्शन से संबंधित कई ग्रन्थ हैं। तिब्बत में भी पारद अथवा रस से सबंधित अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। लेकिन सबसे अघिक महत्वपूर्ण बौद्ध तंत्र है

जिसके लेखक नागार्जुन हैं। महायान सम्प्रदाय के इस तंत्र का नाम ’रस रत्नाकर‘ है।

इतना सब कुछ सुन लेने के बाद अचानक मैं सोचने लगा कि उस रहस्यमय लामा ने मुझे ऐसी ही कोई गुटिका दी थी जिसकी सहायता से मैंने उस आकाशचारिणी योगिनी का आकाशगमन करते हुए देखा था? रहा नहीं गया मुझसे। चक्रपाणि महाशय को सारी कथा सुना दी मैंने और अन्त में यह भी बतला दिया कि किस उद्देश्य से वक्रेश्वर आया हूँ मैं। सब कुछ ध्यान से सुन लेने के बाद चक्रपाणि महाशय हंसे। फिर चिलम की राख झाड़ते हुए बोले-उसी गुटिका के कारण ही इतनी दूर से चलकर यहाँ आया हूँ और पारद के गूढ़ और रहस्यमय विषयों के सबंध में इतनी विस्तृत चर्चा भी की है मैंने। तुम नहीं जानते। जानोगे भी कैसे ?

उस गुटिका ने एक महागुण यह भी है कि यह जहाँ, जिसके पास, रहेगा-वहाँ उसके पास हम जैसे लोगों को आकर्षित करेगा। थोड़ा रूककर चक्रपाणि महोदय ने आगे कहा-तुम्हें यह जानकर भी शायद घोर आश्चर्य होगा कि जो लामा तुमको मिले थे और जिन्होंने तुमको वह गुटिका दी थी-वे महाशय तिब्बत के सिद्ध आश्रम सिकियांग मठ के एक परम सिद्ध योगी थे और जिस आकाशचारिणी की खोज में तुम इस श्मशान में भटक रहे हो, वह और कोई नहीं, उन्हीं लामा योगी की शिष्या है।

ऐं ! क्या कहा आपने-वह परम शिष्या है-उन लामा योगी की-सकपकाकर आश्चर्य भरे स्वर में बोला मैं ? मगर-मगर आप कौन हैं? आने अपना पूरा परिचय तो अभी तक नहीं दिया मुझे?

’मैं चक्रपाणि हूँ। इससे अधिक तुमको जानने की आवश्यकता नहीं। मेरे प्रश्न के उत्तर में केवल मुझे इतना ही सुनायी दिया। फिर सिर घुमाकर चारों तरफ देखा। कमरे में चक्रपाणि महाशय नहीं थे। एकाएक उनका अस्तित्व कहाँ लुप्त हो गया। समझ में नहीं आया। उस छोटे से कमरे के शान्त वातावरण में केवल चिलम के धुएं की गन्ध बिखरी हुई थी।

हे भगवान् ! कौन था वह रहस्यमय साधु वेषधारी व्यक्ति? कहाँ से आया था? और फिर पलक झपकते गायब हो गया वह? क्या सचमुच उस रहस्यमयी गुटिका में आकर्षण शक्ति है ? वया वास्तव में उसी गुटिका के आकर्षण के वशीभूत होकर वह यहाँ आया था? तभी कुछ कौंध-सा गया मेरे मस्तिष्क में। तुरन्त झोली में टटोलकर देखा। गुटिका गायब थी। वया वे ही महाशय तो नही ले गये उसे? लेकिन... झोली तो पेटी के अन्दर बन्द थी। तो फिर... इसके आगे मुझसे न कुछ सोचा गया और न विचारा गया। जड़वत् न जाने कब तक अन्धकार में डूबे हुए आकाश की ओर शून्य में निहारता रहा।

दूसरे दिन भी गुटिका के गायब हो जाने के कारण मन दुखी और विषण्ण था। माँ का दर्शन करने के बाद श्मशान की ओर नही गया। नदी की ओंर चल पड़ा मैं। वहाँ भी एक बड़ा दैवयोग मेरी प्रतीक्षा कर रहा था जिसकी कल्पना तक नहीं की थी मैंने। सामने ही एक विशाल पीपल के पेड़ की छाया में वह भैरवी बैठी हुई थी, कालरात्रि की तरह।

परसों रात, आसन छोड़कर इस तरह भाग क्यों गये? शान्त मन से मैंने उल्टा प्रश्न किया-

तुम मुझे इतना भयभीत क्यों कर रही हो, पिछले चार-पाँच दिनों से?

भैरवी के मुँह पर मुस्कराहट की सूक्ष्म रेखा दिखायी दी।

'मैं एक उद्देश्य लेकर आया था मगर वह पूरा नहीं हो रहा है' शान्त मन से बोला मैं।

'वया उद्देश्य है?'

मैं कुछ बोला नहीं।

मैंने इस बार भी जवाब नहीं दिया। भैरवी ने छोटा सा पात्र फिर उठाया। तरल पदार्थ गले के नीचे उतारा। फिर बोली-'तुम्हारी आयु कितनी है?'

इस बार मैंने उत्तर दिया-'तीस होगी!'

सच है या झूठ-यह जांच करने के लिए ही मानों भैरवी की गम्भीर आँखों ने मुझको एक बार नीचे से ऊपर तक देखा।

'मेरी सौ से भी ऊपर है। अब तुम्हारा भय कुछ कम हुआ?'-वह बोली।

भैरवी की आयु जो भी हो-मेरा भय कम न होकर बढ़ा ही।

'कहाँ रहते हो?' दूसरी तरह का प्रश्न था। स्वर भी और तरह का।

'बनारस। '

घर में कौन-कौन हैं?'

'सब कुछ है। भरा-पूरा है परिवार। मगर मेरा कुछ भी नहीं है। मैं अकेला हूँ। अपने आप में आकण्ठ डूबा हुआ एकाकी।' मेरे मुँह से अपने आप उत्तर निकल रहा था। एक झटके से बोल गया सब मैं।

'यहाँ किस लिये आये हो?'

चुप रह गया मैं।

'आकाशचारिणी योगिनी से मिलने आये हो न?'...

चौंक पड़ा मैं। डाकिनी, योगिनी, कापालिनी... या और कुछ।... मेरा उद्देश्य कैसे जान गयी वह?

सिर हिलाकर जताया...'हाँ।'

'क्या हुआ? आकाशचारिणी से भेंट हुई?'

'नहीं, अभी नहीं हुई। उसी के लिए यहाँ इस श्मशान में भटक रहा हूँ।' यह कहने के बाद न जाने कैसी अनुभूति हुई मुझे। उसके बाद निष्कपट भाव से शेष बातें भी बतला दी मैंने।

भैरवी ने स्थिर होकर सब सुना। उसके बाद भी वह नीरव और निश्चल रही। मगर दृष्टि मानों बहुत दूर कहीं चली गयी थी। कुछ देर बाद बोली-'आकाशचारिणी से मिलना चाहता है?'

'हाँ ! उसी के लिए तो इतनी दूर से आया हूँ मैं' मेरी ओर देखकर हँसने लगी भैरवी।

क्षण भर में दृष्टि बदल गयी थी। दोनों आँखों से जैसे आग निकल रही थी। फिर डूबे स्वर में वह गरज उठी। -'दूर हो जाओ। भाग जाओ यहाँ से? मेरा बाह्य ज्ञान जैसे लुप्त होता जा रहा था। मगर चेतना रहित नहीं हुआ था और उसी स्थिति में देखा भैरवी नहीं है। उसके स्थान पर एक तन्वंगी युवती बैठी मुस्करा रही थी मेरी ओर देखकर।

युवती बहुत ही सुन्दर थी। किसी दीपशिखा-सा जलता रूप और यौवन। बीस वर्ष से अधिक आयु नहीं थी युवती की। मांग में सिन्दूर और चौड़े ललाट पर लाल टीका लम्बा-सा। गले में स्फटिक की माला। गोरी-गोरी कलाइयों में शंख के वलय।

'कौन हो तुम?' हठात् बोल पड़ा मैं।

'वही जिसकी खोज में हो। जिससे मिलने के लिए आये हो। वक्रेश्वर के श्मशान में… वही हूँ मैं, यानी आकाशचारिणी योगिनी... ।'

'ऐं ! तुम्हीं हो वह?...'

'हाँ रे ! मैं हूँ वह, जिसका परिचय भवतोष ने तुझे दिया था। तेरा कलेजा काहे को फट रहा है अब और सुन पगले! मेरे हिमालय निवासी-सिकियांग मठ के सिद्ध योगी गुरु से ही तुमको गुटिका मिली थी जिसकी शक्ति से तुमने मुझे आकाशगमन करते हुए देखा था।'

'समझे।'

'यह सब सुनकर विश्यास नहीं हुआ मुझे।'

मेरे मन के भाव को समझ गयी भैरवी। उपेक्षित स्वर में बोली-'जब योगी और साधक को जानने-समझने और पहचानने की दृष्टि नहीं है तो क्यों नाहक इतना दौड़ धूप करता है? क्यों इतना परेशान होता है। जा, घर वापस जा। विवाह-शादी कर। बाल-बच्चा पैदा कर और आराम से गृहस्थ जीवन व्यतीत कर। इन सबके चक्कर में पड़ने की क्या आवश्यकता? जा, भाग जा, यहाँ से।'

ठीक ही कह रही थी भैरवी। पहले हमें वह दृष्टि प्राप्त करनी चाहिये जिससे हम वास्तविक योगी और सच्चे साधक को पहचान सकें वह दृष्टि बिना स्वयं योग-साधना के मार्ग पर चले प्राप्त नहीं होती। बाहर से योगी और भोगी में कोई भेद या अन्तर नहीं दिखलायी देता। एक पागल में और एक साधक में भी कोई भेद स्पष्ट नहीं होता। मगर भीतर भारी अन्तर होता है, जमीन और आसमान का अन्तर। विरक्ति, निर्लिप्तता, और अनासक्तता ही दोनों के मध्य अन्तर पैदा कर देती है। भैरवी का अन्तिम वाक्य सुनकर बड़ी ही ग्लानि हुई मन में। आँखों से आँसू ढुलक पड़े। गला भी भर आया। अवरुद्ध स्वर में बोला-'माँ! पहचानने में भूल हो

गयी मुझसे। क्षमा कर दो न माँ!' फिर थोड़ा आगे बढ़ कर झुक गया और दोनों हाथों से उस महान साधिका और आकाशगामिनी विद्या सिद्ध योगिनी के चरणों को पकड़ लिया। आंसुओं में डुबी हुई दृष्टि से देखा-'एलोकेशी माँ तारा जैसा लगा मुझे मुख माँ भैरवी का। वह मेरी ओर देखकर हंस रही थी और उस हँसी में एक अदभुत स्नेह गल-गलकर झर रहा था। नेत्र में करुणा का असीम सागर भी लहरा रहा था। मगर यह क्या? सहसा अपने स्थान से लुप्त हो गयी महामाया भैरवी। अभी तो थी। कहाँ गयी? किधर गयी। लगा जैसे हवा में विलीन हो गयी हो वह।

भवतोष बाबू का कथन अचानक स्मरण हो आया मुझे। वह आकाशचारिणी महायोगिनी है। वह रूप बदल सकती है, हवा में गायब हो सकती है। आकाश में उड़ सकती है। सचमुच वक्रेश्वर श्मशान की वह आकाशचारिणी योगिनी ही थी जिससे मिलने के लिए मैं इतनी दूर से चलकर आया था।

दूसरे ही दिन अमावस्या थी। सायंकाल से ही महाश्मशान में कई चिताएँ धू-धू कर एक साथ जल को थीं। मैं माँ का दर्शन करने के बाद श्मशान की परिक्रमा कर नवमुण्डी आसन की ओर चल पड़ा। रास्ता सुनसान था। मन विषण्ण था मेरा। आसन की वेदी पर जाकर बैठ गया। सांझ की स्याह कालिमा धीरे-धीरे रात्रि की निविड़ता में बदल चुकी थी। चित्त को एकाग्र कर अपने विषण्ण मन को शान्त करने का प्रयास करने लगा। उसी समय अपने निकट किसी के लम्बी-लम्बी सांस लेने की आवाज सुनायी पड़ी मुझे। कौन? सिर घुमाकर देखा और देखते ही सारा शरीर एकबारगी रोमांचित हो उठा मेरा। बाघिन जैसी जलती हुई आँखें मेरी ओर घूर रही थीं। सहसा मदिरा का तीव्र भभका उठा और हवा में बिखर गया। समझते देर न लगी मुझे, माँ भैरवी थी। मुझसे कुछ ही फासले पर वह बैठी हुई थी। चिता की लाल-पीले लपटों के हल्के प्रकाश में भैरवी का शान्त और गम्भीर मुखमण्डल चमक रहा था। अपलक निहार रही थी वह चिता की ओर। भैरवी के अलावा और कोई न था। वातावरण में एक अबूझ-सी खिन्नता भरी उदासी बिखरी हुई थी। माँ भैरवी को देखकर एक बार विह्वल हो उठी मेरी आत्मा। मगर जैसे ही उठकर उनके करीब जाने लगा कि तभी मैंने देखा कि एक लम्बी-चौड़ी मानवाकृति वहाँ प्रकट हुई। उसके शरीर का रंग बिलकुल काला था। कमर में लाल रंग की लुंगी लपेटे थी वह। धीरे-धीरे वह आकृति स्पष्ट हुई। वह कोई कापालिक सन्यासी था। उसका सिर मुड़ा हुआ था और काफी बड़ा भी था। हाथ में काफी लम्बा एक त्रिशूल लिये था वह सन्यासी। एकाएक उसके भयानक चेहरे पर चिता की लपटों का हल्का सा प्रकाश पड़ा। एकबारगी चौंक पड़ा मैं और उसी के साथ मेरे मुँह से निकल पड़ा-'अरे ! यह तो चक्रपाणी महाशय हैं। हाँ, वे चक्रपाणी महाशय थे। पहचानने में मुझसे गलती नहीं हुई थी। भ्रम भी नहीं हुआ था। मैं कुछ आगे सोचूं या समझूँ कि तभी मैंने देखा कि माँ भैरवी अपने स्थान से उठी और चक्रपाणी महाशय को अपने साथ लेकर पंचवटी की ओर बढ़ गयी। अपने आपको रोक न सका। मैं भी उनके पीछे चल पड़ा। पंचवटी के निकट पहुंचकर आश्चर्य से मेरी आँखें खुली की खुली रह गयीं। मैंने विस्फारित नेत्रों से देखा-वे दोनों एक साथ हवा में लहराये और फिर धीरे-धीरे ऊपर उठने लगे और देखते ही देखते शून्य में विलीन हो गये। स्तब्ध जड़वत देखता रहा मैं उन्हें गहन अन्धकार

में समाते हुए। तभी अपने कन्धे पर किसी के स्पर्श का अनुभव हुआ। चौंककर पीछे देखा- भोलाराम खड़े थे। फुसफुसाकर बोले-'जानते हो कौन था वह?' 'हाँ, जानता हूँ। चक्रपाणि थे।' -हौले से उत्तर दिया मैंने।

'धत् ! तुमको धोखा हुआ है। वह सर्वेश्वरानन्द कापालिक था। भैरवी का...।'

'अच्छा ! मगर उसने तो चक्रपाणि नाम बतलाया था अपना मुझे।'

मेरी बात सुनकर हो-हो कर हँसने लगे भोलाराम। गहन अन्धकार में डूबे हुए उस निस्तब्ध वातावरण में उनके हंसने की आवाज काफी देर तक गूंजती रही।

एक प्रकार से मेरी यह विलक्षण कथा यहीं समाप्त हो जाती है। लेकिन उसके बाद भी आकाशगामिनी सिद्ध योगियों और आकाशचारिणी योगिनियों की खोज में सालों हिमालय की हिमाच्छादित घाटियों और तिब्बत के दुर्गम स्थानों में भटकता रहा मैं जिसकी अपनी अलग विचित्र और रोमांचकारी कथा है। खैर, यह निर्विवाद सत्य है कि आकाशगामिनी विद्या की सिद्धि के मूल में एकमात्र पारद ही है, कहने की आवश्यकता नहीं। आधुनिक विज्ञान के आधार पर पारद के द्वारा आकाशगमन की व्याख्या कर पाना बहुत कठिन है। ऋषियों का तरीका कुछ सीमा तक रसायन, नाभिकीय, भौतिकी, तत्व विज्ञान (मेटा फिजिक्स) का मिला जुला रूप था। फिर भी क्वाण्टम भौतिकी के आधार पर अंशत: इसे समझाया जा सकता है।

क्वाण्टम यान्त्रिकी के अनुसार पारद के परमाणु के नाभिक में प्रोटान अस्सी और न्यूट्रान एक सौ बीस होते हैं। यह एक ऐसा तत्व है जिसके आगे के तत्वों में नाभिक उत्तरोत्तर होता जाता है तथा पीछे के तत्वों में नाभिक मजबूत होता जाता है। अब यदि पारद के परमाणुओं का संयोग अभ्रक जैसे धन विद्युतीय पदार्थ में कर दे तो अभ्रकीय पारद के परमाणुओं के बीच दो बल काम करेंगे। एक तो हटाव बल और दूसरा आणविक बल। इस कारण पारद बद्ध हो जायेगा और अग्नि का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। अब अगर पारद के साथ चुम्बक पत्थर तथा तांबे, सोने आदि के परमाणुओं का संयोग कराया जाये तो प्रबल खिंचाव के कारण कुछ इलेक्ट्रॉन नाभिक के भीतर पहुंच जाते हैं और पारद के भौतिक गुणों में बदलाव आ जाता है। ये अतिरिक्त कण नाभिक के भीतर पहुँच कर प्रोटान और न्यूट्रानों के अनुपात को बदलते हैं, जब यह अनुपात १ से अधिक हो जाता है तो पारद रेडियोएक्टिव बन जाता है। इस तरह पारद का नाभिक सूक्ष्म गामा किरणों के उत्सर्जन का एक स्थायी स्रोत बन जाता है।

अत: जब पारद का नाभिक ऊर्जा के स्रोत की भांति भी व्यवहार करे और अभ्रक के परमाणुओं द्वारा विद्युतीय हटाव का अनुभव भी करे तो इन दोनों विपरीत बलों के कारण उसका जड़त्व समाप्त हो जाता है तथा उसमें संलग्न वस्तुओं का जड़त्व शून्य करने की क्षमता भी आ जाती है।

इस तरह पारद से आकाश गमन की क्रिया पूर्ण होती है। प्राचीन तथा आधुनिक दोनों दृष्टिकोणों से विचार करके यही निष्कर्ष निकलता है कि पारद की सहायता से आकाशगमन

सम्भव है। प्राचीन ग्रन्थों में दिये गये आकाश यात्राओं का वर्णन भी कल्पना नहीं है। यह वास्तव में एक सत्य एवं पूर्णत: वैज्ञानिक तकनीक है।

अध्याय २
तान्त्रिक मठ का रहस्यमय खजाना

मैं न योगी हूँ और न ही तांत्रिक हूँ। हाँ, इतना अवश्य है कि मैं पिछ्ले तीस-पैंतीस वर्षों से परामनोविज्ञान के आधार पर योग और तंत्र की गूढ़ गोपनीय और रहस्यमयी विद्याओं पर अनवरत शोध कर रहा हूँ। इस दीर्घकाल में मुझे जो अनुभव हुये हैं, जो अनुभूतियाँ हुई है और जो कुछ मैंने देखा है, वह सब अत्यन्त ही अलौकिक, अविश्वसनीय और आश्चर्यजनक है। सहसा उन पर कोई विश्वास नहीं कर सकता।

इस कहानी के माध्यम से मैं अपने जीवन की जो घटना सुनाने जा रहा हूँ, वह मेरा अत्यन्त विचित्र अनुभव है-इस पर शायद ही कोई विश्वास करेगा।

उन दिनों मैं केन्दीय पुरातत्व विभाग से संबंधित था।

शायद जनवरी-फरवरी का महीना था। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। नेपाल की सीमा से लगे हुये उस तराई के इलाके में पुरातत्व विभाग की ओर से खुदाई हो रही थी। वहाँ किसी प्राचीन मठ के ध्वंसावशेष मिलने की सम्भावना थी। लोगों का अनुमान था कि तीन सौ वर्ष प्राचीन मठ के उस ध्वंसावशेष के नीचे कोई अभूतपूर्व खजाना है। उस सम्भावना और अनुमान का साधन एक प्राचीन दस्तावेज था। जहाँ खुदाई हो रही थी वहाँ एक ओर पहाड़ों का सिलसिला था और दूसरी ओर था घनघोर जंगल।

मुझे लगभग दो महीने रहना था वहाँ, इसलिए मैंने तीन मील दूर बाजार में अपने रहने की समुचित व्यवस्था कर ली थी। जिस मकान में मैंने कमरा लिया था, वह काफी पुराना था।

उस दिन पूर्णिमा की रात थी।

धुनी हुई रूई जैसे सफेद बादलों के बीच लुकते-छिपते चाँद को अपलक निहारता हुआ मैं न जाने किस कल्पना लोक में विचरण कर रहा था। अचानक कानों में पायल की छम-छम की मधुर आवाज पड़ी और मैं एकदम चौंक पड़ा। देखा तो मेरे सामने अट्ठारह-बीस साल की एक युवती खड़ी थी। उसका चेहरा उदास था और उसकी बड़ी-बड़ी आखों में गहरा सूनापन भरा हुआ था।

जब से उस इलाके में आया था, तभी से मुझे तरह-तरह के किस्से सुनने को मिले थे। पहाड़ी के दूसरी ओर थारू जाति के लोग रहते थे। गोपाल बाबू उस इलाके के बहुत प्रसिद्ध व्यक्ति थे। बाजार में उनकी अपनी कई दुकाने थीं। पचपन-साठ वर्ष की उम्र हो चुकी थी, किन्तु

मन से वह युवक ही थे। उन्हें की कृपा से मुझे वह कमरा मिला था। अवकाश मिलने पर वह बहुधा मेरे कमरे में चले आते और घण्टों इधर-उधर की बातें करते रहते।

एक दिन बातचीत के सिलसिले में गोपाल बाबू ने बतलाया कि थारू औरतें काफी सुन्दर होती हैं। दौलत और मर्द उनकी कमजोरी है। वे जादू-टोना भी जानती हैं इसलिए स्वस्थ और सुन्दर मर्दों को अपने जादू-टोने के बल पर कब्जे में कर लेती है। एक बार कोई व्यक्ति उनके चंगुल में फस गया तो फिर उसका मुक्त होना कठिन ही होता है। वे इतनी खतरनाक होती है कि बस किसी व्यक्ति को पसन्द भर कर ले फिर कौन जीत सकता है उनसे।

गोपाल बाबू की यह बात सुनकर एक अजीब-सी उत्सुकता से मेरा मन भर गया था। थारू युवतियों के विषय में बड़ा ही रंगीन नक्शा अपने मस्तिष्क में बना लिया था मैंने। न जाने क्या हो गया था मुझे कि थारू नाम के उच्चारण के साथ ही मेरी आँखों के सामने एक अति सुन्दर कोमलांगी स्त्री का चित्र उभर आता था-

गोपाल बाबू से यह भी मालूम हुआ कि थारू औरतें लड़ाकू भी होती हैं। वे सरेआम किसी का भी मुर्गी-मुर्गा या बकरे-बकरियाँ पकड़ लाती है और उनको हलाल कर खा जाती हैं लेकिन कोई कुछ नहीं बोलता। यदि किसी ने विरोध किया तो समझिये उसका भला नहीं। सुबह-शाम होते-होते किसी न किसी बहाने उसके परिवार में कोई विपत्ति आ जाती और वह विपत्ति मामूली भी न होती। परिणामस्वरूप देखते-देखते उसका घर तबाह हो जाता। उस दिन गोपाल बाबू से थारूओं के विषय में इतनी बातें हुई थीं कि तमाम दिन मेरे दिल-दिमाग में वही थारू नारियों के रूप-रंग की छाया नाचती रही। कैंसी होती होगी है स्त्रियाँ? क्या होता होगा उनमें? सोचा-कभी किसी दिन अवकाश मिलने पर गोपाल बाबू के साथ पहाड़ी के उस ओर जाऊँगा और थारू युवतियों का रूप-रंग जी भर कर देखूँगा, किंतु कभी यह नही सोचा था... कल्पना तक नही की थी कि उसी रोज रात में इस प्रकार कोई थारू युवती रूपहली चांदनी में डूबे शान्त निस्तब्ध वातावरण में सहसा प्रकट हो जाएगी और उसी रात मेरी कल्पना एकाएक साकार हो जायेगी।

युवती के चेहरे पर घोर उदासी होते हुये भी उसके होंठो पर मुस्कराहट थी। गहरी काली आँखों में भी सूनेपन के साथ-साथ चंचलता और शरारत थी। उसका रूप मुझे कपूर सा शीतल और चन्दन-सा सुगन्धित लगा। उसकी चम्पई रंग की मादक देह रूपहली चांदनी में चमक रही थी जैसे। ऐसा लगा मानों यौवन से भरपूर उसकी देह वल्लरी किसी प्रदीप्त आभा से दप-दप करके जल रही हो। पहले तो भौचक्का सा उसकी ओर ताकता ही रह गया, फिर पूछा, ”कौन हो तुम? क्या काम है?”

मैंने देखा-वह गले में रूद्राक्ष, स्फटिक, मूंगे और शंखों की मालायें पहने थीं। बाल खुले हुए थे। मस्तक पर लाल रंग का गोल टीका लगाये थीं।

मेरे प्रश्न करने पर वह और करीब आ गयी फिर हौले से बोली-”वह मूर्ति मुझे दे दीजिये। वह मेरी है।”

”कौन सी मूर्ति?”

"वही, जिसे आपने पन्द्रह दिन पहले खुदाई में पाया है?"

सहसा मुझे याद हो आया। वह सच कह रही थी। पन्द्रह दिन पूर्व मठ के ध्वंसावशेष की खुदाई में मुझे एक अलभ्य, विलक्षण और अत्यन्त मूल्यवान मूर्ति मिली थीं।

मूर्ति शालिग्राम पत्थर की थी। मूर्ति का आधा भाग ताण्डव नृत्य करते हुये शिव का था और आधा भाग काम नृत्य करती हुई महाकाली का था। शिव का दाहिना पैर कामदेव के और महाकाली का बायाँ पैर रति की छाती पर था।

कामदेव और रति अष्टदल कमल के ऊपर सम्भोग मुद्रा में थे। वह मूर्ति लगभग एक फुट ऊँची थीं। उस रहस्यमयी तांत्रिक मूर्ति में कापालिक युग की स्पष्ट झलक थीं।

मगर वह विलक्षण प्राचीन ऐतिहासिक मूर्ति उस युवती की कैसे हो सकती थी? उस पर उसका कैसे अधिकार था? कुछ मेरी समझ में नहीं आया।

जब मैंने इस संबंध में पूछा तो उस युवती ने बड़े उदास, किन्तु कोमल स्वर में बतलाया कि जिस मठ के ध्वंसावशेष की खुदाई की जा रही है वह एक काफी पुराना तांत्रिक मठ है। कम से कम सात सौ वर्ष पुराना। चार सौ वर्ष पहले मुसलमानों द्वारा वह ध्वस्त कर दिया गया था। वह मूर्ति उसी मठ के इष्ट देवता की है। विशाल मठ के भीतर एक गुप्त स्थान में स्थापित थी वह मूर्ति और उसके सामने हर अमावस्या और पूर्णमासी की रात में बलि होती थी। बड़ी सिद्ध और जागृत मूर्ति है वह।

मैंने आश्चर्य से पूछा, "ये सारी बातें तुमको कैसे मालूम हुई?"

इस पर युवती ने किंचित व्यंग्य भरे स्वर में कहा, "मुझे नही मालूम होगा तो फिर किसको मालूम होगा?"

"तब तो तुमको खजानेवाली बात भी मालूम होगी।"

"क्यों नहीं ?"

"कहाँ है वह खजाना?"

"मठ के मन्दिर वाले कमरे के नीचे बने तहखाने में।"

"उस खजाने में जाने का रास्ता किधर से है?"

"उसे कोई नहीं जान सकता। जान भी लेगा तो भीतर नही जा सकता।"

"जब तुम इतनी सारी गुप्त बातें जानती हो तो यह भी जानती होगी कि खजाने का रास्ता किधर से है और उसके भीतर जाया कैसे जा सकता है?"

उस थारू युवती से मुझे अब तक जो मालूम हुआ और आगे जो कुछ मालूम होने वाला था. वह काफी महत्वपूर्ण था। उससे भारतीय संस्कृति और पुरातत्व के क्षेत्र में काफी हलचल मच सकती थी। इतिहास के एक तिमिराच्छन्न पृष्ठ पर प्रकाश पड़ सकता था।

मैंने उस युवती से कहा, ”तुम जितना कुछ जानती-समझती हो, यदि उसे ठीक-ठीक बतला दोगी तो सरकार की ओर से तुमको भारी पुरस्कार मिलेगा।”

मेरी बात सुनकर वह मुस्करायी फिर व्यंग्य-भरे स्वर में बोली, पुरस्कार! पुरस्कार तो मुझे जो मिलना था यह कभी का मिल चुका। रही बात खजाने की-उसे मैं जानती हूँ और उसमें जाने के रास्ते को भी जानती हूँ मगर बतलाऊँगी नहीं।”

”क्यों?”

”जब तक मुझे मूर्ति नहीं मिलेगी।”

मैं समझ गया कि वह काफी चालाक है। मूर्ति पाने के लिए यह चाल चल रही है।

मैंने कहा, ”मूर्ति तभी दूंगा जब तुम मुझे सारी बातें बतला दोगी और मैं खजाने तक पहुँच जाऊँगा।”

यह सुनकर युवती ने तीखी नजर से मेरी ओर घूर देखा, फिर बोली, ”ठीक है, मैं सिर्फ आपको अपने साथ खजाने तक ले चलूंगी, इसके अलावा और भी जो कुछ जानना-समझना चाहते हैं, वह सब भी बतला दूंगी, पर एक शर्त है।”

”क्या?”

”यही कि आप किसी को कुछ नहीं बतलायेंगे।”

”यदि बतला दिया तो...”

”भारी नुकसान उठाना पड़ेगा आपको? दुनिया की कोई भी ताकत उस नुकसान से आपको नहीं बचा सकती।”

काफी देर सोचने के बाद मैंने स्वीकृति में सिर हिलाकर कहा ठीक है। तुम्हारी शर्त मंजूर है मुझे। किसी को कुछ नहीं बतलाऊँगा मैं।”

”अच्छा! अब मैं चलती हूँ।”

”फिर कब मिलोगी?”

”अमावस्या की रात को। तैयार रहियेगा।” यह कहकर वह युवती तीन चार कदम वापस लौटी और मेरे देखते ही देखते एकदम गायब हो गई। ऐसा लगा मानो हवा में विलीन हो गयी हो।

उसके बाद मैं पूरी रात नहीं सो सका। विचित्र सी बेचैनी का अनुभव करता रहा मैं।

चौदह दिन बाद अमावस्या की रात आयीं। वे चौदहों दिन काफी अन्तर्द्वन्द और मानसिक उलझन में बीता। कभी-कभी तो किसी अज्ञात कल्पना से मेरा रोम-रोम सिहर उठता था।

मेरी मानसिक स्थिति गोपाल बाबू से छिपी न रह सकी, लेकिन उनके बार-बार पूछने पर

भी मैंने कुछ नहीं बतलाया। हर बार टालता रहा।

अभी तक जितनी खुदाई हुई थी, उससे मठ का विशाल आंगन और उस आंगन के चारों तरफ बने कमरों के अवशेष सामने आ गये थे। मैंने सोंचा-निश्चय ही कहीं आस-पास ही मठ का गर्भ गृह भी होगा, जिसमें कभी वह रहस्यमयी तांत्रिक मूर्ति स्थापित रही होगी। सच बात तो यह था कि उस युवती की बातों ने मेरे मन में जाने कितनी जिज्ञासाओं और कोतूहलों की सृष्टि कर दी थी, उसी के वशीभूत होकर मैं पागलों की तरह पूरा दिन तांत्रिक मठ के उन रहस्यमय ध्वंसावशेषों के बीच भटकता रहता था और मेरी आँखें न जाने क्या खोजती रहती थीं उन अवशेषों में। मेरे सहयोगी भी मेरी उद्विग्नता से अपरिचित नहीं थे, मगर उन्हें मुझसे कुछ पूछने की हिम्मत नहीं होती थी।

कई दिनों बाद मुझे लगने लगा कि रात के सन्नाटे में कोई अज्ञात सम्पोहन शक्ति उन अवशेषों की और खींच रही है। उस समय मैं व्याकुल हो उठता था और उसी व्याकुलता में उस अज्ञात सम्मोहन शक्ति के वशीभूत होकर निस्तब्ध काली अंधेरी रात में कब मेरे कदम उस तरफ बढ़ जाते, मुझे मालूम न होता।

आखिर अमावस्या की स्याह अंधेरी रात आ ही गयी। आकुल मन लिये सांझ से ही मैं उस थारू युवती का इंतजार करने लगा।

समय बीतने लगा।

समय के साथ मेरी बेसब्री भी बढ़ती जा रही थी। रात के ग्यारह बज गये। सोचा, अब वह नहीं आयेगी, मगर तभी सहसा याद हो आया कि उस रोज रात में वह एक बजे के करीब आयी थी। आखिर दो घंटे और इन्तजार कर लेना उचित समझा मैंने।

कमरे का बाहरी दरवाजा खोल कर मैं पलंग पर अच्छा लेट गया और समय काटने के लिये एक उपन्यास पढ़ने लगा।

पढ़ते-पढ़ते मुझे कब नींद आ गयी, सो मैं नहीं जानता। केवल इतना ही कह सकता हूँ कि नींद में ही मुझे ऐसा लगा, जैसे कोई सपना देख रहा होऊँ-कोई सुन्दरी अपने बाल खोले नशे में चूर मेरे पलंग पर बैठी-बैठी मेरा सिर सहला रही है। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में विचित्र सी चंचलता थी, किन्तु चेहरे पर आतंकजन्य भाव था। मैं अनुभव कर रहा था कि मेरी आँख खुली है और मैं जाग रहा हूँ, लेकिन न जाने क्या बात थी कि मैं पलंग से उठ नहीं पा रहा था और न कुछ बोला ही जा रहा था। उस अनुपम सौन्दर्य ने जैसे मुझे जकड़ लिया था। जब मैंने जबरदस्ती उठना चाहा तो लगा कि वह सुन्दर प्रतिमा धीरे-धीरे पीछे खिसकती जा रही है। मैं विवश होकर चिल्ला पड़ा-”कौन है?”

मेरी आवाज कमरे में गूंज कर रह गयी। मुझे कोई उत्तर नहीं मिला, लेकिन न जाने कैसा आकर्षण था उस सौन्दर्य-विभूति में कि मुझे लगा जैसे उसके बिना पागल हो जाऊँगा। मैं उसके पीछे-पीछे चलने लगा और चलते-चलते थोड़े ही देर में उस रहस्यमय तांत्रिक मठ के भूमिगत खण्डहरों में पहुँच गया, लेकिन वहाँ पहुँचते ही वह सहसा गायब हो गयी। मैं

भौचक्का सा देखने लगा चारों ओर, मगर स्याह अंधेरी रात में यह नहीं समझ सका कि वह किधर और कहाँ जाकर गायब हो गयी थी।

इसी प्रकार चार-पांच दिन बीत गये।

पलंग पर पड़े-पड़े मुझे अक्सर लगता, जैसे वही सुन्दरी मेरे निकट आकर मेरा सिर सहला रही है या मेरे मुँह के पास मुँह लाकर अपने चंचल नयनों की मूक भाषा में कुछ कह रही है- पता नहीं मुझे उस छाया के प्रति मोह क्यों होता जा रहा था ?

खुदाई का काम तेजी से बढ़ रहा था। मूर्ति के अलावा कुछ और भी ऐसी दुर्लभ वस्तुयें अबतक प्राप्त हुई थी-जिसका रहस्यमय तांत्रिक महत्व था। मैंने उन सारी वस्तुओं को लाकर सील-मुहर किया और सुरक्षित रख दिया।

मुझे ऐसा लगता था कि अभी खुदाई में इससे भी अधिक मूल्यवान और महत्वपूर्ण वस्तुयें मिलेंगी, इसीलिये मैं बराबर खुदाई वाले स्थान पर उपस्थित रहने लगा।

आखिर मेरा अनुमान सत्य निकला।

तीन-चार दिनों के खुदाई के बाद मठ के मंदिर का रहस्यमय गर्भगृह मिल गया। प्रसन्नता से उछल पड़ा मैं। अपने सहयोगी वर्मा जी से मैंने कहा, ”वर्मा जी, नीचे उतर कर देखो, गर्भगृह कैसा है?”

वर्मा जी पहले तो जाने में एक बार हिचकिचाये, फिर न जाने क्या सोच कर नीचे उतर गये। पहले से ही ”जेनरेटर” चला कर बिजली की पर्याप्त व्यवस्था कर दी गयी थी। नीचे एक साथ कई मजदूर काम कर रहे थे। वर्मा जी ने उन्हीं के साथ गर्भगृह में प्रवेश किया, मगर दूसरे ही क्षण एक साथ कई चीखें सुनाई दी और उनकी आवाज से नीचे का रहस्यमय वातावरण एकबारगी झनझना उठा।

विभाग के सभी कर्मचारी घबरा गये और उनके चेहरे पर हवाहयाँ उड़ने लगी।

मामला समझ में नहीं आया। मेरे दूसरे सहयोगी त्रिपाठी जी थे। उन्होंने कहा, ”निश्चय ही नीचे कोई भयंकर हादसा हुआ है। किसी को जाना चाहिए। मगर...जायेगा कौन?”

”मैं जाऊँगा त्रिपाठी जी।” कहकर मैं रस्सी की सीढ़ियों के सहारे नीचे उतरने लगा और जब गर्भगृह में पहुँचा तो वहाँ का दृश्य देखकर एकबारगी मैं स्वयं भी स्तब्ध रह गया। भय और रोमांच से मेरी आँखें फटी की फटी रह गयी।

तीन-चार मजूदरों के साथ वर्मा जी फर्श पर बेहोश पड़े थे। गर्भगृह लगभग आठ फुट लम्बा और उतना ही चौड़ा था। दीवार और फर्श लाल पत्थर के थे। चारों तरफ की दीवारों पर खूटियों के सहारे एक दर्जन नर-कंकाल झूल रहे थे। निश्चय ही उन्हीं नर-कंकालों को देखकर वर्मा जी और वे मजदूर बेहोश हुये होंगे। सारा रहस्य मेरी समझ में आ गया। मगर अभी कुछ सोच-विचार कर ही रहा था कि उसी समय न जाने कहाँ से एक भयंकर काला सर्प निकल आया। करीब दस फुट लम्बा विषधर था वह। उसका सिर चौड़ा था और उस

पर जटा की तीन-चार लटें थीं।

मैं भय से कांपने अवश्य लगा, लेकिन अपने स्थान से हटा नहीं, सर्प धीरे-धीरे रेंगता हुआ गर्भगृह के बाहर निकला और सामने बने एक चौकोर चबूतरे के भीतर समा गया।

निश्चय ही वह भयंकर विषधर काफी पुराना था। उसकी उम्र कम से कम दो-तीन सौ वर्ष रही होगी, क्योंकि दो सौ वर्ष की उम्र होने पर ही सर्पों के सिर पर इस प्रकार की लटें दिखलायी पड़ती है।

सभी बेहोश लोगों को ऊपर उठाया गया और उनको होश में लाने के लिए उपचार किया जाने लगा।

होश में आने पर वर्मा जी ने एक ऐसी बात बतलायी, जिसे सुनकर सब के मन में भय और संशय के मिले-जुले भाव भर गए। उन्होंने बतलाया कि जब वह गर्भगृह के भीतर पहुँचे उसी समय उनकी दृष्टि सामने खड़े एक विशालकाय व्यक्ति पर पड़ी। काफी लम्बी-चौड़ी काठी का सन्यासी जैसा था वह व्यक्ति। उसकी आँखें लाल थीं। वह कभी भयंकर सर्प के रूप में बदल जाता था, तो कभी सन्यासी का रूप धारण कर लेता। कुछ ही पलों में उसने कई बार ऐसा किया। समझने में देर नही लगी मुझे। जिस विषधर को मैंने देखा था, निश्चय ही वह वही सन्यासी था, जिसे वर्मा जी ने देखा था। इसके साथ ही मुझे न जाने कैसे अपने आप यह विश्वास हो गया कि वही संन्यासी उस रहस्यमय तांत्रिक मठ का अन्तिम महन्त रहा होगा।

सांझ हुई, गोपाल बाबू आ गये। इधर कई दिनों से भेंट नहीं हुई थी उनसे। आते ही पूछने लगे, ”क्या बात है, शर्मा जी! इतना परेशान क्यों हैं?”

मैंने गोपाल बाबू को सारी कहानी बतला देना उचित समझा। सब कुछ सुन लेने के बाद वे गम्भीर हो गये, फिर उसी मुद्रा में बोले, ”शर्माजी! एक बात कहूँ?”

”कहिये।”

”वे नाग बाबा थे।”

”कौन नाग बाबा?”

”वे एक सिद्ध योगी महापुरुष हैं। उसी जगह रहते हैं। कभी-कदा किसी भाग्यशाली को ही उनका दर्शन होता है।”

”यह तो मैं भी समझ रहा हूँ। आप इस संबंध में इसके अलावा कुछ जानते हो तो बतलाइये।” मैंने झुंझला कर कहा।

”घबराइये नहीं, समय पर आपको सब मालूम हो जाएगा। जिस लड़की की चर्चा आपने की है, वह उन्हीं नाग बाबा की शिष्या है और हिमालय की किसी गुफा में रहती है, मगर हर अमावस्या और पूर्णमासी की रात अपने गुरू के दर्शन करने आकाश मार्ग से यहीं आया

करती है।”

थोड़ा रूककर गोपाल बाबू बोले, ”वह आकाशगामिनी लड़की है। उसे आप मामूली मत समझिए। इस इलाके के कई लोगों ने उसे आकाश मार्ग से यहाँ आते हुये देखा है। वह जैसा कहे, वैसा ही आप करें। सारी बातें उसी से आपको मालूम हो जायेंगी।”

”मगर गोपाल बाबू। आपको इन रहस्यमय बातों का कैसे पता चला?”

गोपाल बाबू हँस पड़े मेरी बात सुनकर, बोले, ”यह भी एक रहस्य है।”

कभी सोचा भी नहीं था कि गोपाल बाबू भी एक रहस्यमय व्यक्ति निकलेंगे और उनका संबंध इन तमाम रहस्यमयी बातों से होगा। मेरी उलझन और अधिक बढ़ गयी। सारी समस्याओं को लेकर काफी परेशान हो उठा मैं। उसी स्थिति में मैंने निश्चय किया कि जिस स्थान पर वह विषधर गायब हुआ था, अब उसी चबूतरे को खुदवाना चाहिए। सम्भव है सारे रहस्यों का केन्द्र वही हो।

दूसरे ही दिन से चबूतरे की खुदाई शुरू हो गयी। काफी खोदने के बाद ठीक गर्भगृह के नीचे अत्यन्त गूढ़ ढंग से बना हुआ तहखाने का लोहे का दरवाजा मिलता। वह बन्द था अत: उसे तोड़ने का प्रयास किया जाने लगा, लेकिन क्या वह टूट सका?

नहीं, वह मंत्रपूत दरवाजा था। जब भी मजदूर उसे हाथ लगाते, उसी समय कोई अदृश्य शक्ति उनके हाथों को मरोड़ कर पीछे कर देती। सभी लोग इस घटना से घबरा गये और उनकी मनःस्थिति अर्धविक्षिप्त सी हो उठी। मगर मेरा स्वाभिमान उकसा रहा था। साथ ही साथ मैं यह भी अनुभव कर रहा था कि किसी अनहोनी सी घटना में डूबा जा रहा हूँ..किसी अथाह सागर में तिरोहित हो रहा हूँ...फिर भी जैसे मेरे भीतर कहीं कुछ था और उसी के बल पर मैं स्वयं उस दरवाजे के करीब जा पहुँचा। किन्तु यह क्या? जैसे ही मैंने दरवाजे पर हाथ रखा, उसी क्षण ऐसा लगा जैसे कोई मेरी कलाई मरोड़ रहा हो। मैं तुरन्त पीछे हट गया। साहस का जो अंश था, वह भी समाप्त हो गया। मेरा पैर कांपने लगा।

उसी रात हम लोगों ने निर्णय किया कि अब इस कार्य में किसी अच्छे तांत्रिक की सहायता ली जाए, मगर इस इलाके में तांत्रिक मिलेगा कहाँ? इस सबंध में मैं गोपाल बाबू से मिला तो उन्होंने मुझे एक नेपाली तांत्रिक का पता बतलाया, जो वहाँ से लगभग बीस मील दूर एक गाँव में रहता था।

गोपाल बाबू ने यह भी कहा कि उस थारू युवती से मिले बिना ने उस नेपाली तांत्रिक से सहायता न लूँ। इससे खतरा बढ़ जायेगा।

मगर गोपाल बाबू की इस बात पर मैंने ध्यान नहीं दिया और उसी दिन जीप लेकर नेपाली तांत्रिक के गाँव जा पहुँचा।

वह नेपाली तांत्रिक बीस वर्ष का युवक था, किन्तु उसके चेहरे पर साधना का तेज और आँखों में अनुभव की चमक थी। स्वभाव से वह बड़ा विनम्र लगा मुझे। उसका नाम था

राजेन्द्र बहादुर थापा।

थापा को सारी कथा सुनाते हुए मैंने यह भी बता दिया कि उस रहस्यमय तांत्रिक मठ से संबंधित एक थारू युवती मुझसे वह तांत्रिक मूर्ति मांगने आयी थी और अमावस्या की रात को फिर आने के लिये कह गयी थी, मगर आयी नहीं।

यह सुनते ही थापा एकबारगी चौंक पड़ा, फिर मेरी ओर रहस्यमय दृष्टि से देखते हुए बोला, "आज से तीन सौ साल पहले उसी थारू युवती की तो बलि देकर तांत्रिक विधि से उस खजाने को बांधा गया था।"

"बलि देकर? तीन सौ साल पहले?" मैं चीख पड़ा, "मगर वह तो सशरीर आयी थी मेरे पास। अमावस्या की तरह यह मुझे अपने साथ ले जाने वाली थी।"

"आपका कहना बिल्कुल ठीक है, मगर सामने मन से मूर्ति देने का वादा किया था?"

"नहीं! मैं उस मूर्ति को देना नहीं चाहता था !"

"तभी नहीं आयी वह।" थापा ने मुस्कराकर कहा।

"सुना है वह हिमालय की किसी गुफा में रहती है। आकाशगामिनी भी है वह?"

थापा फिर चौंक पड़ा, बोला, "यह कैसे मालूम हुआ आपको?"

"गोपाल बाबू से।"

"कौन गोपाल बाबू? बाजार में जिनकी दुकाने हैं?"

"हाँ ! उन्हीं गोपाल बाबू ने मुझे बतलायी है यह बात।"

"आप उनको अच्छी तरह जानते हैं?"

"पूरी तरह तो नही, मगर मुझे वह अत्यन्त रहस्यमय व्यक्ति अवश्य लगते हैं।

"हाँ! हैं भी वह रहस्यमय व्यक्ति।"

"क्या आप उनके रहस्यों से परिचित हैं?"

यह सुनकर थापा ने घूर कर एक बार मेरी ओर देखा, फिर बोला,"जी हाँ! मैं खूब अच्छी तरह से परिचित हूँ गोपाल बाबू के रहस्यों से।"

"क्या आप मुझे भी बतलायेंगे?"

थापा ने कहना शुरू जिया - "कुछ वर्ष पूर्व गोपाल बाबू को न जाने कहाँ से तांत्रिक मठ के उस गुप्त खजाने का नक्शा मिल गया। वह मेरे पिता से तांत्रिक सहायता लेकर चुपचाप खुदाई करवाने लगे। काफी खोदने के बाद वही तांत्रिक मूर्ति मिली उनको, जो आपके पास है इस समय। यह आकाशगामिनी थारू युवती भी अमावस्या की रात को उस मूर्ति को प्राप्त

करने पहुँच गयी गोपाल बाबू के पास। मगर उन्होंने मूर्ति नहीं दी।”

”फिर वया हुआ?” उत्सुकता से पूछा मैंने।

”वह हर अमावस्या और पूर्णमासी को आने लगी फिर। गोपाल बाबू बराबर यही समझते रहे कि वह जादू-टोना जानने वाली साधारण थारू युवती है। उन्होंने उससे शारीरिक संबंध भी स्थापित करना चाहा। इसके लिए वह तुरन्त तैयार हो गयी। फिर हर अमावस्या और पूर्णिमा को गोपाल बाबू रंगरेलियाँ मनाने लगे। वह समझते थे कि मूर्ति पाने की लालच में ही वह युवती इसके लिए तैयार हो गयी है, पर उनको क्या पता था कि जिसके साथ अमावस्या और पूर्णिमा की रात वह मदिरा के नशे में सहवास करते हैं, वह नाग बाबा की तांत्रिक भैरवी और शिष्या की तीन सौ साल पुरानी आत्मा है। आखिर एक दिन जो होना था वही हुआ...”

”क्या ?”

थापा जोर से सांस लेकर कहने लगा, ”अमावस्या की ही रात थी वह। मूसलाधार वर्षा हो रही थी उस समय। सदा की भांति वह युवती आयी, मगर उस रात अकेली नहीं आयी थीं। उसके साथ कई और आत्मायें थीं। शायद मठ में जिन-जिन की बलि दी गयी थी, वे सब उन्हीं की आत्मायें थीं। उनका रूप और भयंकर मुद्रा देखकर गोपाल बाबू आतंकित हो उठे। दिल तेजी से धड़कने लगा जैसे कभी भी हार्ट फेल हो जायेगा उनका। आँखें पथरा गयीं और आवाज रुंध गयी। गला बैठा जा रहा था। माथे पर पसीने की बूंदे छलकती आ रही थी। कुछ क्षणों के बाद गोपाल बाबू कटे पेड़ की तरह जमीन पर गिर पड़े। सारा शरीर कांप रहा था उनका। फिर बेहोश हो गये। काफी तांत्रिक उपचार के बाद गोपाल बाबू के जीवन की रक्षा हो सकी।”

”मूर्ति का क्या हुआ?”

”मूर्ति उसी रात अपने आप गायब हो गयी और अपने स्थान पर पहुँच गयी।”

गोपाल बाबू की इस रोमांचक कथा को सुनकर मैं आश्चर्यचकित रह गया, फिर थापा से काम के संबध में बातें हुई। उसने बतलाया, ”उस थारू युवती का नाम चन्द्रा है। मुसलमानों के आक्रमण के पहले नाग बाबा यानी सर्वेश्वरानन्द अवधूत की अन्तिम रूप से वही एकमात्र भैरवी और शिष्या थी। मठ का अतुल बताना मुसलमानों के हाथ न लगे इसके लिये नाग बाबा ने चन्द्रा की ही बलि देकर तहखाने में सारे धन को बांध कर सुरक्षित कर देना चाहा। चन्द्रा भी इसके लिए स्वेच्छा से तैयार हो गयी।” इतना कहकर थापा एक क्षण रूका, फिर बोला, ”तभी से इतने साल हो गये, चन्द्रा बराबर उस खजाने की रक्षा कर रही है।”

जब मैंने यह पूछा कि क्या वह खजाना मिल सकता है, तो थापा ने कहा, ”नहीं, मैं अपनी क्रिया से बन्द दरवाजा खोल दूँगा, भीतर का खजाना भी दिखा दूँगा, मगर इस बात का ध्यान रखिये कि खजाने की कोई चीज छूइएगा मत वर्ना...

मैंने यहा, ”ठीक है। आप जैसा कहेंगे, वैसा ही होगा, मगर आप अपनी क्रिया कब करेंगें?”

”अमावस्या की रात में।” थापा बोला-”पहले मैं चन्द्रा की प्यासी, अतृप्त आत्मा को तृप्त करुँगा, फिर उसी की सहायता से आगे की सारी तांत्रिक क्रिया करूँगा।”

इसके लिये थापा ने कुछ सामानों की मांग की। मैंने उसकी व्यवस्था कर दी, लेकिन जहाँ मेरी उलझन कुछ कम हुई वहीं इस बात का संदेह भी होने लगा कि थापा से यह सब काम हो सकेगा या नहीं? कहीं कोई खतरा न पैदा हो जाये?

अमावस्या की काली-अंधेरी रात।

बिना किसी को कुछ बताए मैं अकेला तांत्रिक मठ के ध्वंसावशेष के बीच पहुँच गया। सोचा था कि पाले अपनी आँखों से सब कुछ देख लूँगा, फिर उसके बाद ही जो कुछ करना होगा, करूँगा।

सांझ की स्याह कालिमा धीरे-धीरे गहन अन्धकार में बदल गयी। उसी समय सारे सामानों के साथ थापा आ पहुँचा। उसने गले में फूल-माला और रंग-बिरंगी कौड़ियाँ, शंखों, सीपिया की मालायें पहन रखी थीं। चेहरा एकदम सुर्ख था। वह मुझे अपने साथ दरवाजे के सामने ले गया। पहले उसने एक सफेद चादर बिछायी और सरसों के तेल का एक दीया जलाया, फिर फर्श पर जाने क्या लिखकर उस पर शराब और फूल चढ़ाकर एक मुर्गे की बलि दी। उसके बाद वह पहाड़ी भाषा में कोई मंत्र बोलने लगा-लयबद्ध स्वर में।

थोडी देर बाद दीपक की लौ बुरी तरह कांपने लगी। एक बार तो ऐसा लगा कि बुझ ही जायेगा वह, फिर धीरे-धीरे दीपक सचमुच बुझ गया। उस रहस्यमय वातावरण में शुक्र नक्षत्र जैसी धीमी और मंद-मंद ज्योति सी छा गयी और उस ज्योति के साथ ही साथ एक नवयुवती की रूप-छटा भी। सिर के बाल बिखरे हुये थे, उसके शरीर के वस्त्र पारदर्शी थे, जिसमें से छन-छन कर उसके अंग-प्रत्यंग स्पष्ट दिखलायी पड़ रहे थे। वह दरवाजे से सटकर खड़ी हो गयी। सुगठित यौवन से भरपूर उसकी सुन्दर कंचन काया में जाने कैसी मादकता थी कि मैं सहज ही उसकी ओर आकृष्ट हो गवा। तभी याद आया अरे, यह तो वही थारू युवती है-चन्द्रा। इसी रूप और छटा में उस रात मेरे पास आयी थी। हे भगवान! यह क्या देख रहा हूँ मैं।

थापा पर मेरा विश्वास जाने लगा।

उसी समय थापा ने एक प्याले में शराब ढालकर चन्द्रा की ओर बढ़ा दी, जिसे वह एक ही सांस में पी गयी। थापा ने दूसरा प्याला दिया। उसे भी चन्द्रा गट-गट कर पी गयी। इसी प्रकार काफी देर तक शराब का दौर चलता रहा। फिर चन्द्रा लड़खड़ाती कदमों से थापा के एकदम निकट आ गयी और अपनी दोनों बाहें उसके गले में डाल दी। थापा ने भी उसे अपनी बाहों में भर लिया। फिर शुरू हो गयी प्रणय-लीला।

मैं हतप्रभ अवाक् देखता रहा उस अपार्थिव प्रणय-लीला को। शुक्र तारा जैसी चमकती शुभ्र ज्योति की आभा धीरे-धीरे कम हो गयी। इसके बाद अपने आप पहले धीरे-धीरे, फिर एक

झटके के साथ सहसा लोहे का वह मजबूत बन्द दरवाजा एकदम खुल गया। अब मेरा सारा ध्यान उसी खुले दरवाजे की ओर था।

सहसा मुझसे एक दुस्साहस हो गया। मैं उत्सुकतावश तहखाने की ओर बढ़ने लया। मेरे हाथ में उस समय पांच सेल का टार्च था। उसके तीव्र प्रकाश में मैंने तहखाने के भीतर जो कुछ देखा, उससे मेरी आँखें फटी की फटी रह गयीं। इतनी ही गनीमत थी कि मैं बेहोश या पागल नहीं हुआ।

तहखाने के फर्श पर लाखों को संख्या में गिन्नियाँ और अशर्फियाँ पड़ी हुई थीं। दीवारों में लगाकर सोने की सैकड़ों सिल्लियाँ एक पर एक जमाई हुई रखी थीं। इसके अलावा दीवारों के पास काफी बड़े-बड़े दर्जनों हण्डे रखे थे, जिनमें मुँह तक सिक्के भरे थे। लोहे के दो बड़े-बड़े सन्दूक भी थे, जिनमें लबालब जवाहरात भरे हुए थे।

टार्च के तेज प्रकाश में वह सब चमक रहा था। मैं चकित दृष्टि से ताकता रहा उस अतुल वैभव को। लगता था जैसे मेरा कोई अस्तित्व ही न हो। रह-रह कर मन में ऐसी भावना आने लगी, जैसे मैं हूँ ही नहीं।

अब यहीं से इस लोमहर्षक विचित्र और अविश्वसनीय कथा का दूसरा पक्ष शुरू होता है।

काफी देर तक शून्य की उस स्थिति में रहने के बाद जैसे मुझे झटका-सा लगा। मैं तत्काल तहखाने के बाहर निकल आया।

मगर बाहर निकलकर जो कुछ देखा, उससे एकबारगी फिर स्तब्ध रह गया मैं। रोम-रोम कांप उठा मेरा।

शराब की खाली बोतलें, जली हुई हवन-सामग्री, फूल-माला सब कुछ अस्त-व्यस्त था। फर्श पर एक ओर थापा लुढ़का हुआ पड़ा था। साहस कर मैं उसे जगाने लगा। थोड़ी देर बाद उसने आँखें खोली। खुमारी में उसकी आँखें फूल कर गूलर की तरह हो गयी थी। उसने एक बार मेरी ओर देखा, लेकिन फिर बेहोश हो गया। मेरी समझ में नही आया कि क्या करूँ? मैं उसके मुँह पर पानी की छींटे देने लगा। काफी देर बाद वह पुन: होश में आया तो लड़खड़ाती हुई आवाज में बोला, ”मैं तो मर गया, शर्मा जी।”

”क्यों क्या हुआ?”

”उसने मेरा मंत्र तोड़ दिया। मेरी करधन तोड़ दी। अब तो जब वह चाहेगी, मुझे बुला लेगी... पर मैं जब चाहूँगा, उसे नहीं बुला सकूँगा...अब तो मैं उसक कब्जे में हो गया।”

मुझे महसूस हुआ कि गलती मेरी ही है-अगर मैं खजाने वाले कमरे में न गया होता तो शायद ऐसा कुछ न होता। मगर थापा से मैंने यह सब नहीं बताया।

मेरे दिमाग में सूझा। इतना धन इस खजाने में इतने वर्षों से पड़ा सड़ रहा है। इसको किसी प्रकार निकालना चाहिये।

वर्मा जी और त्रिपाठी जी ने मेडिकल छुट्टी ले ली। अब मैं अकेला रह गया था। एक बार मैंने भी सोचा कि बेकार ही परेशान हो रहा हूँ...मैं भी छुट्टी लेकर चल दूँ बनारस। अपने इस विचार को मैं क्रियान्वित भी करने ही वाला था कि एक रोज रात को कल्पना के विपरीत अचानक थापा आ पहुँचा। वह शराब के नशे में चूर था। पहले तो उसे देखकर विस्मय हुआ कि कैसे आया वह, क्योंकि मुझे आशंका थी कि उस रात की घटना के बाद अब वह वापस नही आयेगा। मुझे यह भी विश्वास था कि वह इतना कमजोर हो गया है कि महीनों उसे अपना स्वास्थ्य सुधारने में लगेगा। उस दिन भी उसमें वह तेजविद्या और आत्मविश्वास नहीं दिख पड़ा। एकदम निस्तेज और अधमरा-सा लग रहा था वह।

”कैसे आना हुआ थापा?” मैंने पूछा।

”चन्द्रा ने बुलाया है, शर्मा जी।” उसने कहा और थर-थर कांपने लगा।

”तो यहाँ क्या करने आये हो, वहीं खण्डहर में जाओ।” मैंने जरा कड़े स्वर में कहा।

”नहीं, शर्मा जी। वह यहीं आयेगी।” थापा ने रुंआसे स्वर में कहा, ”आपके कमरे में मिलने के लिए कहा है उसने।”

थापा की इस बात को सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। मेरे कमरे में थापा से मिलने क्यों आयेंगी? अभी मैं यह सोच ही रहा था कि कमरे का दरवाजा अपने आप खुल गया और दिव्य आभा से सम्यन्न वह अपार्थिव प्रतिमा सामने आकर खड़ी हो गयी।

मैं स्तब्ध रह गया।

चन्द्रा धीरे-धीरे थापा की ओर बढ़ने लगी। थापा मेरे पास बैठा पीपल के पत्ते की तरह कांप रहा था। मैं उस अपार्थिव आत्मा को सशरीर रहा था। उसने पारदर्शी कपड़े पहन रखे थे कभी-कभी वह मेरी ओर देख लेती थी, जिसकी प्रतिक्रिया थापा पर स्पष्ट परिलक्षित हो रही थी। फिर वह जोर-जोर से कांपने लगा। चन्द्रा ने एकाएक लपक कर उसका हाथ पकड़ा और लगभग घसीटती हुई मेरे पलंग पर खींच ले गयी। फिर शुरू हो गयी अमानवीय प्रणय लीला। वह जितनी कामुक थी, उससे कहीं अधिक विलक्षण थी।

मैं स्तब्ध बैठा भयमिश्रित दृष्टि से देखता ही रह गया।

मुझे कुछ दिन पूर्व की बात याद हो आयी-वह मेरे पलंग पर भी अच्छा बैठ जाती थी और मेरे सीने पर झुककर आँखों में आँखें डालकर देखती रहती थी-कामुक भाव से।

मुझे आदेश मिला कि तांत्रिक मठ की खुदाई में प्राप्त वस्तुयें वहाँ भेज दी जाये।

किन्तु खुदाई में प्राप्त दुर्लभ वस्तुएं क्या मेरे पास थीं? नहीं।

जब मैंने सील तोड़कर सन्दूक खोला तो एकदम स्तब्ध रह गया। सन्दूक में एक भी वस्तु नहीं थी। उस विलक्षण ऐतिहासिक मूर्ति के साथ ही अन्य सारी दुर्लभ वस्तुएं भी गायब थी।

मैं पहले ही अविश्वास और उपेक्षा का शिकार बन चुका था, मगर अब? अब तो अपनी बातों का विश्वास दिखाने का थोड़ा बहुत जो आधार था, वह भी नहीं रहा। उस समय मेरी मनोदशा कैसी थी उसे केवल भगवान ही समझ सकता है।

मुझे अपनी बातों को प्रमाणित करने के लिये कुछ न कुछ करना आवश्यक था। आखिर उसी मन: स्थिति में मैंने एक दुस्साहस पूर्ण निर्णय कर डाला।

काश ! मैंने वह मूर्खतापूर्ण कदम न उठाया होता, तो आज मेरी इतनी दुर्दशा न होती। इस प्रकार से उसका भयंकर परिणाम इस समय भी भोग रहा हूँ। लेकिन उस रोज जाने क्या हो गया था मुझे....

अमावस्या की ही काली रात थी वह। टार्च और कुछ खाली बोरे लेकर मैं जीप में खजाने की ओर चल पड़ा।

उस समय मुझे घोर आश्चर्य हुआ कि मेरे पहुँचते ही लोहे का मंत्र पूत दरवाजा अपने आप खुल गया। मैं समझता था कि कोई दूसरा अदृश्य हाथ अवश्य मेरी कलाई पकड़ लेगा, लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। मेरा साहस और बढ़ गया। टार्च के बीच प्रकाश में मैं खजाने के भीतर चला गया। फर्श पर गिन्नी-अशर्फियाँ ज्यों की त्यों पड़ी हुई थीं। सोने की सिल्लियाँ एक पर एक उसी तरह रखी थी। हण्डे उसी प्रकार पड़े थे। हीरे-जवाहरात से भरे सन्दूक भी पड़े हुए थे।

मैंने खाली बोरों में गिन्नियाँ, अशरफियाँ, सोने की वजनी सिल्लियाँ और जवाहरात भर लिए। मुझे अपनी बातों का प्रमाण चाहिये था। इतना प्रमाण क्या कम था?

मगर खजाने के बाहर आते ही मेरा सिर चकराने लगा। लगा कि किसी भी क्षण मैं बेहोश होकर गिर पड़ूंगा, फिर भी भरे हुए बोरों को किसी प्रकार ऊपर लाया और जीप पर लाद लिया, फिर तुरन्त ही जीप स्टार्ट करके निकल भागा वहाँ से।

मेरे होश ठिकाने नहीं थे उस समय। जीप चलाते हुए एक बार पीछे मुड़कर मैंने देखा। किसलिये देखा था-यही नहीं उतना सकता, मगर पीछे देखते ही मेरे होश उड़ गये। सोने से भरे बोरों के ऊपर छ: नर-कंकाल आसन जमाये बैठे हुये थे। वे सभी सजीव-से लग रहे थे और एक दूसरे की ओर इशारे कर रहे थे।

मैं भय से कांप उठा। स्टियरिंग छूट गया मेरे हाथ से और साठ-सत्तर मील की गति से दौड़ती हुई जीप न जाने जिस चीज से टकरा कर उलट गयी। मैं जीप से छिटक कर दूर जा गिरा और बेहोश हो गया।

पूरे नौ दिन तक मैं अस्पताल में बेहोश रहा। मगर एक बात बतलाऊँ आपको? मैं इस दुनिया में अवश्य चेतनाशून्य था, मगर किसी और दुनिया में उस समय भी पूर्ण चैतन्य था। वर्तमान से लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व अतीत में चला गया था मैं और उस समय उसी अतीत की दुनिया में मैं जीवित था। भले ही कोई मेरी बातों पर विश्वास न करे, मगर अतीत की उस दुनिया में मैंने जो कुछ देखा, वह बिल्कुल सत्य है।

जैसे ही मैं जीप से गिर कर बेहोश हुआ, उसी समय वे सारे नरकंकाल मेरे करीब आकर खडे हो गये। वे कुल छ: थे। अब वे नरकंकाल नहीं, बल्कि कापालिक सन्यासी के वेश में जीते-जागते मनुष्य थे। सभी के चेहरों पर तेज था और आँखों में साधना की प्रखर ज्योति थी। उन लोगों ने मुझे सहारा दिया और तांत्रिक मठ के ध्वन्सावशेष की ओर उठा ले गये।

जब मैं वहाॅ पहुँचा तो यह देखकर सन्न रह गया कि ध्वन्सावशेष के स्थान पर आलीशान भव्य और काफी लम्बा-चौडा मठ खड़ा था। उसके विशाल फाटक के ऊपर बरामदे में शहनाई बज रही थी। अगल-बगल हाथों में भाला लिये द्वारपाल खड़े थे। मेरे प्रवेश करते समय उन्होंने विनम्रता से सिर झुका लिया।

मठ का आंगन भी काफी लम्बा-चौड़ा और लाल संगमरमर के फर्श से बना था। आंगन के बिल्कुल मध्य में एक विचित्र विशाल प्रतिमा खड़ी थी। काले पत्थर की बनी यह प्रतिमा किसी तांत्रिक देवी की थी, जिसका मुख सात फण वाले सर्प की तरह था। लगभग बीस फुट ऊँची थी वह भयंकर प्रतिमा। उसके चार हाथ थे, जिनमें क्रमश: अग्नि से प्रज्ज्वलित खप्पर, नागपाश, नर-मुण्ड और खड्ग था। प्रतिमा का एक पैर स्त्री के और दूसरा पैर पुरुष के हृदय पर टिका था। वह विलक्षण तांत्रिक देवी एक ऊँची चौकोर वेदी पर स्थापित थी, जिसके सामने बलि देने वाला काले पत्थर का युथ था। इस पर खून के ताजे धब्बे पड़े हुए थे। ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे कुछ समय पूर्व ही किसी की बलि दी गयी हो।

मठ में विचित्र सी निस्तब्धता भरी शान्ति छाई हुई थी। धीरे-धीरे चलता हुआ मैं प्रधान गृह में पहुँचा। वह एक लम्बा-चौड़ा कक्ष था।

दीवार और फर्श सफंद संगमरमर के थे। दो तरफ की दीवारों से सटकर दो फुट चौड़े चबुतरे बने थे, जिन पर कतार में सजे पचासों नरमुण्ड रखे थे। सभी नर-मुण्डों पर सिन्दूर लगे थे और मंत्र लिखे हुए थे। उस कक्ष से निकलकर मैं प्रधान गह्वर में पहुँचा तो भीतर प्रवेश करते ही एकबारगी चौंक पड़ा। सामने चार फुट लम्बी-चौड़ी स्फटिक की वेदी पर वही विलक्षण तांत्रिक मूर्ति स्थापित थी, जिसे मैंने खुदाई के समय पाया था, मूर्ति के ऊपर सोने का छत्र झूल रहा भी और सामने पञ्चमुखादीप जल रहा था। गह्वर का वातावरण विचित्र अनिर्वचनीय सुगन्ध से महक रहा था। उसके प्रभाव से मेरा सारा शरीर पुलकित हो उठा। आत्मा को एक गहरी शान्ति की अनुभूति हो रही थी। वह कैसी अनुभूति थी इसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। सहसा मंदिर में एक युवती ने प्रवेश किया। वह बहुत सुन्दर और आकर्षक थी। शरीर का रंग स्फटिक जैसा उज्ज्वल था। दीपक के मन्द आलोक में उसके चमकते हुये चेहरे से कान्ति-शान्ति की मिली-जुली दैवी आभा फूट रही थी। वह लाल किनारे की रेशमी साड़ी पहने हुए थी। कलाइयों में लाल चूडियाँ पड़ी थी। हाथों में पूजा की थाली थी मुझ पर दृष्टि पड़ते ही वह चौंक पड़ी और पूजा की थाली झनझनाकर गिर पड़ी।

”तुम... तुम... फिर कैसे आ गये यहाँ?” फुसफुसाहट-भरे स्वर में युवती बोली।

अब तक मैं संभल चुका था। हौले से बोला, ”मैं स्वयं चलकर नहीं आया हूँ बल्कि मुझे लाया गया है। मगर तुम कौन हो? कैसे जानती हो मुझे?”

इस प्रश्न के साथ ही मेरे मस्तिष्क को एक झटका सा लगा। हे भगवान ! उस अलौकिक दिव्य परिवेश में एक उच्चकोटि की तांत्रिक भैरवी के रूप में मेरे सामने चन्द्रा ही तो खड़ी थी।

”पहचान लिया मुझे?” गम्भीर स्वर में बोली वह।

”हाँ! पहचान लिया तुम चन्द्रा हो न?”

”हाँ ! चन्द्रा ही हूँ। इस समय हम और तुम दोनों वर्तमान काल में हैं। वर्तमान के इस केन्द्र पर तीन सौ वर्षों का भूत और तीन सौ वर्षों का भविष्य मिल रहा है?”

”मैं समझा नहीं तुम्हारी बात?”

”अपनी वेष-भूषा की ओर तो पहले देखो? क्या तुम इस समय अधिकारी के वेष में हो?”

अभी तक मेरा ध्यान अपनी वेष-भूषा पर नहीं गया था। सचमुच, उस समय कोट-पैंट की जगह मैं सिल्क की रेशमी धोती और कुर्ता पहने हुए था। मेरी कमर में लाल रंग का एक कीमती दुशाला बंधा हुआ था। गले में सोने के तारों में गुथी हुई मोतियों की माला पड़ी थी और कानों में हीरे के कुण्डल झूल रहे थे।

चन्द्रा ने कहा, ”तीन सौ वर्ष आगे भविष्य में मैं तुमसे इसी मूर्ति को पाने के लिए मिली थी। ठीक इसी प्रकार तीन सौ वर्ष पहले भूतकाल में...”

एकाएक चन्द्रा फफक-फफक कर रो पड़ी। उससे आगे कुछ नहीं बोला गया। शेष शब्द आंसुओं के सागर में डूब गये।

पहली बार मुझे लगा कि इस रहस्यमय थारू युवती से...इस तांत्रिक भैरवी चन्द्रा से मेरा कोई गहरा संबंध है...कुछ-कुछ वातावरण भी जाना-पहचाना सा लगा मुझे। ऐसा प्रतीत होता था कि मैंने उस मठ में जीवन का बहुमूल्य समय व्यतीत किया हो, लेकिन आगे सोचने पर मन पकड़ में नहीं आता था। स्मृति जैसे कुहरे से ढक गई थी।

चन्द्रा अभी भी सिसक रही थी। मैं उसके करीब चला गया। हौले से पूछा, ”तीन सौ वर्ष पहले क्या हुआ था चन्द्रा? मैं कौन हूँ? तुम कौन हो? तुम्हारा मेरा क्या सम्बन्ध है? बतलाओ चन्द्रा, सब कुछ बतलाओ। मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है।”

चन्द्रा कुछ बोलती, इसके पहले ही मुझे लाने वाले वे कापालिक सन्यासी प्रकट हो गए वहाँ और मुझे पकड़ कर लगभग घसीटते हुये प्रधान पूजा गृह की ओर खींच ले गए।

चन्द्रा एकबारगी चीख पड़ी-”क्यों पकड़ कर ले जा रहे हो? छोड़ दो इन्हें, सब दोष तो मेरा है। हे भगवान।”

मगर किसी ने उसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया।

प्रधान पूजाघर में ले जाकर मेरी बलि-पूजा की गयी-मस्तक पर लाल सिन्दूर का टीका

लगाकर गले में लाल फूलों की माला पहना दी गयी। अन्त में मेरे दोनों हाथों को पीठ की ओर ले जाकर रेशमी डोरी से बांध दिया गया। इसके बाद मुझे वहाँ से आंगन की ओर ले जाया जाने लगा। भय के कारण मेरा सारा शरीर कांप रहा था। मैं समझ गया कि अब मेरी बलि दी जायेगी। निस्सन्देह मेरी बलि देने के पीछे कोई रहस्य है। बचने का कोई मार्ग नहीं था। वाणी मूक हो गयी थी। शरीर शून्य हो गया था। न बोला जा रहा था और न विरोध ही किया जा रहा था मुझसे।

करूण स्वर में चीखती-चिल्लाती विलाप करती हुई चन्द्रा मेरे पीछे-पीछे आ रही थी। वह कह रही थी, "छोड़ दो इनको। क्या नुकसान किया है इन्होंने, अगर बलि ही देना चाहते हो तो मेरी बलि दे दो।"

उसने मुझे छुड़ाने की बहुत कोशिश की पर हर बार वे नरपिशाच साधु उसे झिड़क देते थे, फिर भी वह बराबर निस्सहाय सी मेरे पीछे-पीछे लगी थी। उसके बाल छितरा गये थे और शरीर के वस्त्र बिखर गये थे।

मठ के किसी कोने से नगाड़े की गम्भीर मगर भयंकर ध्वनि गूंजने लगी। जब मैं आँगन के बलि-यूथ के सामने पहुँचा तो देखा-एक भीमकाय साधु कापालिक सन्यासी हाथ में विचित्र आकार-प्रकार का भयंकर खड्ग लिये खड़ा था। वह बाघ की खाल पहने हुए था और गले में नवजात शिशुओं के मुण्डों की माला झूल रही थी। चेहरा भयानक और वीभत्स था। आँखों में क्रूरता थी। शराब के नशे में चूर लड़खड़ाता हुआ वह भयंकर निर्दयी सन्यासी मेरे करीब आकर खड़ा हो गया। कभी वह मेरी ओर तो कभी लपलपाते हुये भयंकर खड्ग की ओर देखता। निश्चय ही वह उस तांत्रिक मठ का महन्त था।

कुछ फासले पर खड़ी चन्द्रा पहले की ही तरह करूण स्वर में चीख चिल्ला रही थी। कई लोग मिलकर उसे पकड़े हुये थे।

महन्त ने मेरे बालों को पकड़ कर मेरा सिर ऊपर उठाया और क्रूर दृष्टि से कुछ क्षण तक देखता रहा, उसके बाद उसने एक झटके से मेरा सिर बलि-यूथ पर झुला दिया। मेरी घिग्घी बंध गयी थी उस समय। न जाने कौन सा सम्मोहन मुझ पर छाया था कि मैं चाहकर भी कोई विरोध नहीं कर पा रहा था। बिल्कुल यंत्रचालित-सा हो गया था। उस क्रूर निर्दयी महन्त ने भयंकर खड्ग को हाथों में तोला, फिर जैसे ही मेरी बलि देने के लिये उसने खड्ग उठाया, उसी समय अपने आपको सन्यासियों के चंगुल से छुड़ाकर चन्द्रा रोती-चीखती आकर एकदम मुझसे लिपट गयी। बड़ा मर्मस्पर्शी दृश्य था वह। अवरूद्ध कण्ठ से वह आंसुओं में डूबे स्वर में कहने लगी, "मेरे कारण आज आपको बलि वेदी पर अर्पित होना पड़ रहा है। काश ! मैंने तुमसे प्रेम न किया होता। सारा दोष मेरा ही है। मैं ही तुम्हारी मृत्यु का कारण बन गयी।" फिर वह फफक-फफक कर रोने लगी। क्षण भर बाद आंसुओं से गीला चेहरा मेरे सीने पर रगड़ती हुई वह कातर स्वर में कहने लगी, "बोलो ! कुछ तो बोलो ! मेरे लिये क्या आज्ञा है?"

मगर मैं क्या बोलता? क्या आज्ञा देता उसे? मेरी हालत शोचनीय हो रही थी उस समय।

किसी तरह लोगों ने चन्द्रा को मुझसे अलग किया और आंगन के एक ओर खींच ले गये।

बिल्कुल पागलों जैसी हो गयी थी वह। अन्त में चन्द्रा के शब्द सुनाई पड़े मुझको, ”मेरी प्रतीक्षा करना। जरूर करना मेरी प्रतीक्षा। अगर मेरा प्रेम सच्चा है तो कभी न कभी अवश्य मिलूँगी मैं...।”

उसी समय महन्त का उठा हुआ खड्ग मेरी गरदन पर गिरा। ”खच” की आवाज हुई और उसके साथ ही मेरा अस्तित्व एकदम गहन अन्धकार में डूब गया।

वह अन्धकार कब तक रहा और उसमें मेरा अस्तित्व कब तक डूबा रहा-यह तो नहीं जानता मैं, मगर चेतना वापस लौटी तो अपने आपको अस्पताल की चारपायी पर पड़ा पाया। ऐसा लगा जैसे कोई लम्बा भयानक स्वप्न देखकर जागा हूँ मैं।

मेरे निकट डाक्टरों एवं नर्सो के अलावा मेरे विभाग के कई उच्चाधिकारी भी खड़े थे।

कुछ बोलना चाहा मैं, मगर मुँह से आवाज नहीं निकल रही थीं। मैं चाहता था कि अधिकारियों को सारी घटना सुना दूँ लेकिन बोलने की चेष्टा बेकार रही। मुझे लगता था कि मेरी जुबान ऐंठ गयी है। विवश होकर चुप ही रह गया मैं। जब भी बोलने की चेष्टा करता, मुँह से आवाज न निकलती। मैं गूंगे से भी बद्तर हो गया था।

ऐसा क्यों हो गया था-मुझे समझ में नहीं आया। डॉक्टरों ने भी बहुत चेष्ठा की पर उनकी भी समझ में नहीं आ रहा था कि मैं क्यों नहीं बोल पा रहा हूँ।

रात की कालिमा कमरे में फैल गयी। प्रकाश के लिये अस्पताल के उस कमरे में हल्के पावर का गहरे हरे रंग का बल्ब जल रहा था। मुझे नींद नहीं आ रही थी। मैं विचारों में डूबा हुआ अपलक जलते हुये बल्ब की ओर निहार रहा आ, तभी एक छाया धीरे-धीरे आकर मेरे सिरहाने बैठ गयी।

मैं तुरन्त पहचान गया-वह चन्द्रा थी।

उसके अस्तित्व की अनुभूति से मेरे मन को विचित्र सी शान्ति मिली। उसने मेरे सिर और गले को सहलाते हुये कहा, ”कण्ठ की नली कट जाने के कारण ही बोल नहीं पा रहे थे आप।”

सहसा अपनी बलि की रोमांचक घटना याद हो आयी। मैं सिहर उठा और चीख कर बोल पड़ा, ”चन्द्रा ! यह सब क्या है? कौन हो तुम? तुम्हारा-मेरा क्या संबंध है?”

मगर चन्द्रा कहाँ थी वहाँ ?

मेरी आवाज कमरे में गूंज कर चिथड़े-चिथड़े हो गयी।

स्वस्थ होने पर मेरा बयान लिया गया। मैंने जो कुछ देखा सुना था और मेरे साथ जो घटनायें घटी थीं - उन्हें विस्तार से बतला दिया, मैंने मगर मेरी बातों पर किसी को भी विश्वास नहीं हुआ। बाद में मुझे मालूम हुआ कि जीप पर लदे तमाम बोरों में ईंट पत्थर के

टुकड़े भरे हुए मिले थे। यह सुनकर मैं स्तब्ध रह गया।

इन तमाम बातों और घटनाओं का मेरे मस्तिष्क पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। सालों मेरी मन:स्थिति ठीक नहीं रही। पागलों जैसी हालत हो गयी।

आखिर चन्द्रा कौन थी? उससे मेरा क्या संबंध था? बेहोशी की हालत में जो कुछ मैंने देखा था, वह मात्र दु:स्वप्न था या अतीत के अन्धकार में डूबा मेरे पिछले जन्म का कोई भयंकर सत्य था? क्या किसी जन्म में मेरी बलि दी गयी थी उस रहस्यमय तांत्रिक मठ में?

इन तमाम प्रश्नों को लेकर मैं परेशान रहने लगा। उस सुनसान घाटी में स्थित रहस्यमय तांत्रिक मठ के ध्वन्सावशेषों के कई चक्कर भी लगा आया। अमावस्या और पूर्णिमा की कई रातें बिताई मैंने वहाँ, मगर मेरे प्रश्नों का उत्तर नहीं मिला और न चन्द्रा ही मिली मुझे।

इन विलक्षण अविश्वसनीय और रहस्यमयी घटनाओं को घटे काफी लम्बा अर्सा गुजर गया है, मगर वे तमाम अनसुलझे प्रश्न मेरे मस्तिष्क में बराबर चक्कर काटते रहते हैं और रह-रह कर चन्द्रा के अन्तिम वाक्य मेरे कानों में गूंजते रहते हैं, "मेरी प्रतीक्षा करना... आपसे कभी न कभी अवश्य मिलूँगी मैं।"

अगर वह सब स्वप्न नहीं था... मेरे साथ घटी घटनायें असत्य नहीं थी तो एक न एक दिन सारे प्रश्नों के जवाब मुझे अवश्य मिलेंगे और चन्द्रा भी अवश्य मिलेगी मुझसे, लेकिन कब और किस रूप में मिलेगी-यह मैं भी नहीं बतला सकता। बस, मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ, जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा है मेरा विश्वास भी दृढ़ होता जा रहा है। देखना है कि चन्द्रा कब मिलती है और कब रहस्यों पर से पर्दा उठता है?

अध्याय ३
अब मैं मुक्ति चाहती हूँ

योग तंत्र ज्योतिष के अनुसंधान ने पिछले तीस वर्षों के अन्दर मुझको जिन मानवेतर शक्तियों से परिचित कराया और जिन अलौकिक सत्यों की अनुभूति करायी, उनसे मेरे सामने जीवन और जगत के तमाम गूढ़ रहस्य अनावृत हुए हैं। संसार में सबसे रहस्यमय है मनुष्य और उसका जीवन। यद्यपि आज का विज्ञान ग्रहों-नक्षत्रों पर पहुँचने का प्रयास कर रहा है और इसमें उसे सफलता भी मिल रही है, फिर भी अभी तक यह रहस्य नहीं खुल पाया कि मनुष्य क्या है और जीवन क्या है?

मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ और कहाँ चला जाऊँगा-ये तीनों प्रश्न अनादि है और इन्हीं के उत्तर में भारतीय दर्शन की रचना हुई है। योग दर्शन को छोड़कर अन्य सभी दर्शन केवल सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं। योग दर्शन ही एकमात्र ऐसा दर्शन है जो ज्ञानात्मक और क्रियात्मक रूप से मानव और मानव जीवन के तिमिराच्छन्न रहस्यों को अनावृत्त करता है।

उस समय मेरी उम्र मात्र सोलह वर्ष थी। एक दिन हरिश्चन्द्र घाट के श्मशान में जलती हुई एक चिता देखकर मेरे मन में अचानक वैराग्य की भावना पैदा हो गयी। लाश एक युवक की थी। शायद कुछ ही समय पूर्व उसका विवाह हुआ था। पत्नी के हाथों में लगी मेहदी का रंग अभी छूटा भी नहीं था कि उसका जीवन वैधव्य की कठोर चट्टान से टकरा गया। वह एक ओर सीढ़ी पर बैठी विलाप कर रही थी। मैं गालों पर हाथ धरे सोचने लगा-यह युवती किस लिये और किसके लिये विलाप कर रही है? उसके पति के शरीर में कौन था? वह कहाँ से आया था। फिर कहाँ चला गया? यदि यह सब वह नहीं जानती तो विलाप किसलिये कर रही है? क्या पार्थिव शरीर के लिये ?

शायद शरीर के प्रति मोह ही विलाप का एक मात्र कारण है। मृत्यु की धारणा मृत्यु के प्रति भय पैदा करती है और इसी से आभास होता है जीवन नाशवान है। यही भावना दृढ़ होकर वैराग्य का रूप धारण कर लेती है। इसी वैराग्य ने मुझे जहाँ एक ओर अन्तर्मुखी बना दिया, वहीं दूसरी ओर मुझमें सत्य की खोज की प्रवृति भी जागृत कर दी।

जलती हुई चिता अब राख में बदल चुकी थी। श्मशान में सांझ की स्याह चादर फैलने लगी थी। बोझिल मन लिये मैं भारी कदमों से हरिश्चन्द्र घाट की सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर आया। यह मेरा विद्यार्थी जीवन था, पर बहुत ही कष्टमय। बिजली बत्ती का इन्तजाम नहीं था सो रात्रि की पढ़ाई म्युनिसिपैलिटी की लालटेन की रोशनी में होती थी।

मगर उस रात मन विषण्ण था। पढ़ाई-लिखायी में जी नहीं लगा। काफी देर तक चारपायी पर विचारमग्न पड़ा रहा, फिर न जाने कब नींद आ गयी। उसी अवस्था में मैंने एक विचित्र स्वप्न देखा...वास्तव में वह स्वप्न मेरे जीवन का संक्रांति काल बन गया। और वह स्वप्न था-

मैं चारपायी से धीरे-धीरे उठा। कमरे में अन्धकार था-मगर उस अन्धकार में भी मैंने अपने पार्थिव शरीर को बिस्तर पर निरचेष्ट पड़ा हुआ देखा। उस समय मेरे शरीर के चारों ओर

रंग-बिरंगे प्रकाश के स्फुलिंग घूम रहे थे। दरवाजे बन्द थे, पर मैं बिना उन्हें खोले ही कमरे के बाहर निकल आया। बाहर शुक्ल पक्ष की चांदनी छिटकी हुई थी। शान्त चांदनी के रूपहले प्रकाश में मैंने गंगा के किनारे एक मढ़ी पर मृग चर्म के आसन पर पद्मासन मुद्रा में बैठी हुई एक युवती को देखा। बाद में मालूम हुआ कि वह भैरवी थी-शरीर पर लाल रंग की रेशमी साड़ी और उसी रंग का दुपट्टा था। दोनों भुजाओं, मस्तक और गले में लाल चन्दन की पतली रेखायें। दोनों भौहों के बीच लाल सिन्दूर का गोल टीका। आम की फांक जैसी कुछ-कुछ रक्ताभ आँखें। कण्ठ में बड़े आकार के रूद्राक्ष की माला। कलाइयों में शंख की चूड़ियाँ। शरीर का रंग एकदम काला। नाक-नक्श आकर्षक और कमनीय, मगर स्थिर और कठोर, कसा हुआ सुडौल तन। पास ही चमचमाता हुआ बड़ा सा त्रिशूल रखा था।

उसकी बड़ी-बड़ी काली आँखों की अपलक दृष्टि से बंधा हुआ सा मैं उसके सामने स्थिर होकर खड़ा हो गया। उसकी दृष्टि देखकर ऐसा लगा मानों वह मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। आँखें मिलते ही हठात् मेरा सारा शरीर बेबस हो गया। मर्म को बेधने वाली उसकी उस तीक्ष्ण और स्थिर दृष्टि में एक विचित्र सम्मीहन था। मैं मंत्र मुग्ध सा ताकता ही रह गया।

भैरवी की पलकें एक बार धीरे से गिरीं, फिर मूक संकेत से उसने मुझे अपने समीप बुलाया। जब मैं पास पहुँचा तो उसका दाहिना हाथ मेरे सिर पर उठ गया। मानों वह मुझे आशीर्वाद दे रही हो, लेकिन सहसा मुझको झटका सा लगा। भैरवी स्थिर दृष्टि से अपलक मेरी ओर देख रही थी। फिर वह उठ खड़ी हुई और मुझे अपने पीछे आने का संकेत करके चलने लगी।

मैं उसके पीछे-पीछे किस स्थान पर पहुँचा, यह नहीं बतला सकूँगा। उस समय भैरवी का रूप बड़ा ही निर्मम और भयंकर था। मुझे साथ ले जाकर वह एक विशाल-श्मशान में खड़ी हो गयी। वहाँ चारों ओर पीपल, पाकड़ और गूलर के पेड़ खड़े थे और हर पेड़ के नीचे नर-कंकाल, हड्डियाँ, खोपड़ियाँ आदि पड़ी हुयी थीं। मेरा दम घुटने लगा। श्मशान क्षेत्र के सामने एक विशाल मंदिर था। ऊपर जाने के लिये सैकड़ों सीढियाँ थीं। भैरवी के साथ किसी अज्ञात सम्मोहन के वशीभूत होकर मैं मंदिर की सीढियाँ चढ़कर ऊपर पहुँचा। देखा तो मंदिर के सामने पञ्च प्रेतासन है। बगल में पारिजात के पेड़ के नीचे सहस्त्रमुण्डी आसन है। उसके दूसरी ओर पंचवटी है। सिंहद्वार से प्रवेश करके मैं मुख्य मंदिर में पहुँचा। भीतर घना अन्धकार था। एक ओर पंचमुखी दीपाधार पर घी के दीप जल रहे थे-उसके मन्द आलोक में मैंने सामने देवी छिन्नमस्ता की सजीव-सी रक्तवर्ण पाषाण प्रतिमा देखी। वह षोडश दल कमल के ऊपर आसीन थीं। कमल पुष्प के भीतर रति मुद्रा में आलिंगनबद्ध युवक-युवती लेटे हुये थे-जिनके ऊपर माँ के दोनों पैर थे। माँ के एक साथ में शोणित लगा विकराल खड्ग था और दूसरे में स्वयं माँ का ही रक्त से सना मुण्ड। कटे हुये गले से रक्त की तीन धारायें निकल कर अगल-बगल खड़ी हाकिनी-डाकिनी और शाकिनी की प्रतिमाओं के मुँह में गिर रही थीं। किसी का क्षीण स्वर सुनाई पड़ा-"ये तीनों रक्तधारायें ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की प्रतीक हैं।"

माँ के सामने खड़े बहुत सारे लोग अपनी-अपनी वेदना अर्पित कर रहे थे। मैं भी जाकर उन्हीं के साथ खड़ा हो गया, किन्तु मेरी कौन-सी वेदना थी... कौन सी व्यथा थी ?

भैरवी भी मेरे निकट ही खड़ी थी। गम्भीरता के बावजूद उसका काला चेहरा मुझे उस समय बड़ा सुन्दर लगा। उसकी दृष्टि भी उतनी अन्तर्भेदी नहीं थी, पर अपलक और कठोर अवश्य थी।

एकाएक मेरा मन अशान्त हो गया। भैरवी की दृष्टि पैनी होती जा रही थी। सहस्त्रमुण्डी आसन पर बैठने से मन को शान्ति मिलेगी-यह सोचकर मैं उधर ही बढ़ गया। चारो ओर अंधेरा था। वातावरण स्तब्ध था। हवा की सरसराहट भी चौंका देती थी। मैं पालथी मारकर आसन पर बैठ गया। मन अपने आप शान्त होने लगा। फिर बिलकुल शान्त होकर किसी अतल गहरायी में डूब गया। वह एक विचित्र अलौकिक अनुभूति थी। मैं समर्पण के एक नये प्रवाह में विभोर था और उसी अपार्थिव अनुभूति के बीच मैं अपने पार्थिव शरीर में वापस लौट आया।

मेरा वह गहरा स्वप्न टूट गया। मगर यह क्या? मेरे कमरे का दरवाजा टूट कर एक ओर झूल रहा था। कमरे में बहुत सारे लोग इकट्ठे थे। सभी रो रहे थे। मेरा शरीर चारपायी से उतारकर जमीन पर लिटा दिया गया था और शव-यात्रा की व्यवस्था की जा रही थी। मैं संसार के लिये मर चुका था और मरे हुये काफी समय गुजर चुका था। अर्थात् मुझको जागने में यदि एक-दो घंटे की और देर हो जाती तो निस्सन्देह मेरी पार्थिव काया चिता को अर्पित कर दी गयी होती।

मैं उठकर बैठ गया। ऐसा लगा मानों गहरी नींद सोकर उठा होऊँ। लोग अचकचाकर मुझसे तरह-तरह के प्रश्न करने लगे, किन्तु भला मैं उन्हें क्या उत्तर देता, क्या कहता। यदि मैं उन तमाम दृश्यों और अनुभूतियों के बारे में बतलाता भी तो भला कौन विश्वास करता।

गम्भीर होकर मैं सोचने लगा-क्या वास्तव में मैं मर गया था? क्या सचमुच इस बीच शरीर और संसार से मेरा संबंध टूट चुका था? यदि हाँ तो वह कौन सा शरीर और कौन का संसार था? वह सत्य था या यह सत्य है? यदि दोनों जीवन सत्य है, दोनों शरीर सत्य है और दोनों संसार भी सत्य है, तो जैसे यहाँ मर कर मैं उस संसार में जीवित हो उठा था वैसे ही उस संसार में भी मर कर अब इस स्थूल जगत में जीवित हो उठा हूँ फिर? अब तक इस संसार के लिये मृत और उस अनजाने लोक के लिये जीवित था, परन्तु अब वहाँ के लिये मृत और यहाँ के लिये जीवित हूँ। मेरे सामने एक रहस्यमयी गुत्थी थी, जिसे मैं उस समय नहीं सुलझा सका। तब मेरी उम्र ही क्या थी... अनुभव और ज्ञान ही कितना था। हाँ, उस अनोखी अविश्वसनीय घटना ने मेरे लिये एक ऐसा मार्ग जरूर खोल दिया,जिस पर चलकर मैंने ऐसे तमाम सत्यों की खोज की और अनुभव प्राप्त किए जो लौकिक स्तर पर सम्भव नहीं है।

जीवन शाश्वत है। उसकी धारा अबाध गति से प्रवाहित है। मृत्यु से जीवन धारा में किसी प्रकार का व्यतिक्रम नहीं उत्पन्न होता, न तो कोई प्रभाव ही पड़ता है उस पर। उत्पत्ति से लेकर मानव जीवन विभिन्न स्तरों पर क्रम से विकसित होता रहता है। आज के भौतिकवादी वातावरण और पैतृक परम्परा को मानते हैं। इस सन्दर्भ में ज्योतिष शास्त्र का कहना है कि जीवन को बराबर गतिमान बनाये रखने के लिये सौर-मण्डल की रश्मियों का

प्रभाव प्रमुख है। सौर रश्मियों के विकिरण का प्रभाव सबसे ज्यादा मनुष्य की आत्मा, मन और विचारों पर पड़ता है। गर्भ में शिशु के आने पर वे सौर रश्मियाँ अपना प्रभाव डालना शुरू कर देती हैं। फिर उत्पत्ति से लेकर मृत्युपर्यन्त की जीवन यात्रा के दौरान उनका प्रभाव क्रमश: क्षीण होता जाता है। ज्योतिष के इस सिद्धान्त को आज वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार कर लिया है। सर्वविदित है कि एटमबम के विकिरण ने हिरोशिमा के शिशुओं पर अपना प्रभाव डाला था।

सौर रश्मियाँ तीन प्रकार की हैं-वे आत्मा, मन और विचारों पर अलग-अलग अपना प्रभाव तो डालती ही है, इसके अलावा मनुष्य के स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों की रचना भी करती है। विचारों के स्तर पर रथूल शरीर, मन के स्तर पर सूक्ष्मशरीर और आत्मा के स्तर पर कारण शरीर का निर्माण वे रश्मियाँ ही करती है। मेरी इस कहानी की रहस्यमयी घटनाओं को समझने के लिये यह भी बतला देना आवश्यक है कि मनुष्य के एक साथ दो व्यक्तित्व होते हैं-आन्तरिक और बाह्य। इनके आधार पर मनुष्य एक साथ दो जीवन व्यतीत करता है। इन दोनों व्यक्तियों की उत्पत्ति मूलत: दो के संयोग से समझना चाहिये। बाह्य व्यक्तित्व का निर्माण मन और पार्थिव तत्वों के संयोग से होता है-इसका दूसरा नाम स्थूल जीवन है। आन्तरिक व्यक्तित्व का निर्माण मन और आत्मा के संयोग से होता है। भेषज विज्ञान इस तथ्य को अब अस्वीकार नहीं करता।

अब सामने आता है मन और आत्मा से सम्बन्धित प्रश्न? मन और आत्मा मूलत: एक चीज है, किन्तु रूप दो है-पहला रूप अर्थात् मन क्रियाशील है, जबकि दूसरा रूप अर्थात् आत्मा स्थिर है और मन की क्रियाओं का एकमात्र साक्षी है। मन और आत्मा के अस्तित्व को किसी न किसी रूप में प्राय: सभी धर्मों ने स्वीकार किया है। भौतिक विज्ञान की भी जब गति अवरूद्ध होने लगी तो उसे भी इनके अस्तित्व को स्वीकार करना पड़ा। यदि इसे स्वीकार न कर लिया गया होता कि मनुष्य का एक मन भी होता है तो शायद मनोविज्ञान का तो अस्तित्व ही नहीं होता। हालांकि मन अगोचर वस्तु है।

मन को दो भागों में विभक्त किया गया है-व्यक्त और अव्यक्त अथवा चेतन और अचेतन। अव्यक्त अथवा अचेतन परामनोविज्ञान का विषय है। तांत्रिक साधना मन की इन दोनों अवस्थाओं से शुरू होकर आत्मसाधना में परिवर्तित हो जाती है। तीनों शरीर इस साधना के माध्यम मात्र हैं।

मृत्यु का अर्थ है मन से पार्थिव तत्वों का पृथक होना है। यह अलगाव तभी होता है जब सौर रश्मियों का प्रभाव क्षीण हो जाता है। मन और विचार तत्व के बीच चित्त है। विचार जब धीरे-धीरे चित्त में और चित्त मन में लीन हो जाता है तब मन मस्तिष्क के मूल केन्द्र में जाकर स्थित हो जाता है और बाह्य चेतना लुप्त हो जाती है। इसे मृत्यु की मूर्च्छा कहते हैं। आत्मा से मन का तथा मन से विचार तत्व व चित्त का तादात्म्य सूक्ष्मतम प्राण (ईथर) के धरातल पर स्थापित होता है। प्राण ही सबको एक सूत्र में पिरोए रहता है। मूल केन्द्र में मन के स्थित होते ही प्राण में झटका लगता है और वह मन को अपने साथ लेकर शरीर के किसी भी रास्ते से बाहर निकल जाता है-यह मृत्यु का पहला रूप है।

आत्मा अपना अस्तित्व शरीर के मूल केन्द्र में बनाये रखती है, जिसके फलस्वरूप स्थूल दृष्टि से मृत्यु हो जाने के बाद भी सिर का पिछला भाग गर्म रहता है, जो इस बात की ओर संकेत करता है कि अभी शरीर में आत्मा का अस्तित्व है।

मृत्यु के समय वातावरण में एक नीरव विस्फोट होता है इसके साथ ही शरीर के परमाणुओं का विघटन शुरू हो जाता है। शरीर नष्ट हो जाने के बाद भी वे परमाणु वातावरण में बिखरे रहते हैं। उनमें वासना के कण भी विद्यमान रहते हैं, जिनके कारण वे परमाणु वासना के अनुसार फिर से आकार बनाने की दिशा में प्रवृत्त हो उठते हैं। सूक्ष्मतम प्राण वायु के कणों का आश्रय लेकर वे परमाणु एक स्थान पर एकत्र होने लगते हैं। जब एक दूसरे से आकर्षित होकर वे पूर्णरूप से एकत्र हो जाते हैं, तब स्थूल शरीर जैसे रूप का निर्माण कर बैठते हैं। इसी रूप को वासनामय या प्रेतशरीर कहते हैं।

सूक्ष्मजगत का यह शरीर निम्न स्तर का होता है। आत्मा बिना शरीर के कभी नहीं रह सकती। उसे कोई भी किसी भी प्रकार का शरीर चाहिये। वासना शरीर का निर्माण मनुष्य की चित्त वृत्ति पर आधारित है-कभी यह जल्दी हो जाता है तो कभी देर भी लग जाती है। मगर जब निर्माण पूरा हो जाता है, उसके बाद ही स्थूल शरीर को छोड़कर अपने केन्द्र से आत्मा निकलती है ओंर तत्काल वासना शरीर में प्रवेश कर जाती है। यह मृत्यु का दूसरा रूप है।

शरीर कोई भी हो - उसकी रचना में कुछ समय लगता है। गर्भ में स्थूल शरीर की रचना पूर्ण होने पर ही आत्मा प्रवेश करती है। स्थूल शरीर में प्रवेश करते ही आत्मा उस शरीर को गर्भ के बाहर निकालने के लिये प्रयत्न करने लगती है।

वासना-शरीर में आत्मा को 'प्रेतात्मा' की संज्ञा दी गयी है। यहाँ भी वह वासनामय मन के क्रिया-कलापों का साक्षी है। मन वासना वेग के कारण अशान्त रहता है। स्थूल शरीर कर्मप्रधान है। वासना का योग कर्म से होता है, अत: स्थूल-शरीर के अभाव में प्रेतात्मा अपनी वासना को पूर्ण कर सकने में असमर्थ होती है-यही उसका मूल दुख है। प्रेतात्मा अपनी वासना को पूर्ण करने के लिये प्राय: मनुष्य का सहारा लिया करती है। जीवन काल में जो मुख्य वासना-कामना होती है, वही प्रेतजीवन में मुख्य क्लेश का कारण भी बनती है। उन्हें पूर्ण करने के लिये, तृप्त होने के लिये प्रेतात्मायें चक्कर लगाया करती हैं और अपनी कामना के अनुकूल मनुष्य के भीतर प्रवेश करके उसे पूर्ण कर लेती हैं। यदि प्रेतात्मा शक्तिशाली होती है तो अनुकूल मनुष्य के अभाव में वह किसी भी मनुष्य के भीतर प्रवेश करके इच्छानुसार उससे काम करवा कर तृप्ति अनुभव करती है। वासना अच्छे संस्कार की भी होती है और बुरे संस्कार की भी। यह पढ़कर आपको आश्चर्य होगा कि हम और आप सहसा जो अच्छा या बुरा काम कर बैठते हैं, जिसकी कल्पना भी कभी नहीं की गयी होती है, समझ लीजिये कि वह काम किसी प्रेतात्मा द्वारा प्रेरित होकर ही किया गया है। कभी-कभी प्रेतात्मायें मनुष्य के भीतर प्रवेश करके स्थायी रूप से अपनी वासना को पूर्ण करने का प्रयास करती हैं। इस स्थिति को "प्रेतबाधा" की संज्ञा दी गयी है।

यदि वासना-शरीर की रचना पूर्ण नहीं हो पायी है तथा आत्मा स्थूल-शरीर में ही बनी है,

और ऐसी अवस्था में स्थूल-शरीर को जला दिया गया, तो समझें कि ऐसे मृत मनुष्य की मुक्ति में काफी समय लगता है। उसकी आत्मा बिना शरीर के भटकती रहती है। ऐसी आत्मा को जीवात्मा की संज्ञा दी गयी है। जीवात्माओं में प्रेतात्माओं से कहीं अधिक शक्ति होती है। यदि उनकी वासना अच्छे संस्कार की है तो वे अनुकूल मनुष्य की सहायता करती है, उसे प्रेरणा देती है और उनके अभाव को पूर्ण करने की चेष्ठा करती है, किन्तु यदि वह जीवात्मा बुरे संस्कार वाली है तो वह दुष्ट और चरित्रहीन मनुष्यों के कार्य क्षेत्र में सहायता करेगी। प्रेतात्मायें पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से बाहर नहीं निकल पाती, किन्तु जीवात्मायें उसकी सीमा के बाहर निकल कर अन्य ग्रहों-नक्षत्रों तक की यात्रा करने में समर्थ होती है। प्राणशक्ति की प्रबलता के कारण इनकी गति सर्वत्र होती है। वे अपनी प्रबल इच्छाशक्ति के साथ संकल्प शक्ति को भी युक्त करके कुछ समय के लिये अपने पूर्व स्थूल शरीर का भी निर्माण कर उसके माध्यम से भौतिक सुख पाने की क्षमता रखती हैं। इसके अलावा वे कल्पना के अनुसार स्थूल सृष्टि कर सकने में भी समर्थ होती है।

उस विचित्र अविश्वसनीय घटना के लगभग बीस वर्ष बाद-जबकि मैं उसे प्राय: भूल चुका था-मुझे मरणोत्तर जीवन के इसी रहस्यमयी विषय पर "ओरियन्टल रिसर्च सोसायटी" की ओर से शोध कार्य करने के लिये नेपाल जाना पड़ा। मैं शुरू से ही एकान्त प्रेमी हूँ। संयोग से मेरे एक नेपाली मित्र महोदय ने मेरे रहने की काफी सुन्दर व्यवस्था कर दी। जो मकान मिला, एक मंजिला था। तीन बड़े-बड़े कमरे थे। मकान काफी पुराना होते हुये भी साफ-सुथरा और हवादार था। मैंने एक कमरा तो अपने नौकर "थापा" को रहने के लिये दे दिया, शेष दो में से एक कमरे को अध्ययन कक्ष बनाया और दूसरे को शयन कक्ष। मकान के पीछे काफी लम्बा-चौड़ा दालान भी था। उसी में एक ओर थापा ने भोजन आदि बनाने का इन्तजाम कर लिया।

जिस इलाके में मकान था, उसके तीन ओर तो ऊँचे-ऊँचे पहाड़ थे, जिनकी चोटियों पर हमेंशा बर्फ जमी रहती थी। एक ओर मीलों तक फैली हुई समतल घाटी थी। उसके छोर पर पूरब की ओर मुड़ती हुई एक पहाड़ी नदी बहती थी। उसके पार घने जंगलों का सिलसिला था। उस शान्त घाटी में मेरे मकान के अलावा नदी से थोड़ी दूर पर पाँच-छ: मकान और थे, मगर उनमें कोई रहता नहीं था। मेरे घर से लगभग एक मील दूर उन स्थानों के उत्तर में किसी विशाल मंदिर का ध्वन्सावशेष था। जब घाटी में रात का अंधेरा घिर जाता तो अपने मकान और आस-पास की निस्तब्धता मुझे इतनी आकर्षक लगती कि मैं छत पर बैठा घंटों उसका आनन्द लेता था।

उस दिन कार्तिक की पूर्णिमा थी। पहाड़ों के हिमाच्छादित उत्तुंग शिखरों की ओट से पूर्णिमा का रूपहला चांद झांक रहा था। घाटी में कुहरे की सफेद चादर में लिपटी स्निग्ध चांदनी बिखरी हुई थीं।

सहसा उस निस्तब्ध वातावरण में धीमें स्वर में किसी के गीत गाने की आवाज गूँजने लगी। ऐसा लगा मानों कोई करूण कण्ठ से विरह-गीत गा रहा हो। ध्यान से सुनने पर स्पष्ट हो गया-वह नारी स्वर था। करूणा में डूबे उस गीत में असीम व्यथा और व्याकुलता थी।

आधी रात को यह कौन स्त्री विरह-वेदना से कातर स्वर में गया रही है?

कुछ ही क्षणों बाद वह गीत मर्मभेदी चीत्कार और विहल रूदन में बदल गया, लेकिन तमाम दयार्दता के बावजूद उस क्रंदन की विशिष्टता अलग ही झलक रही थी। कुल मिलाकर मुझे वह गीत और रूदन-दोनों ही अमानवीय लगे।

जब मैंने दूसरे दिन थापा से इसके बारे में पूछा तो उसने बताया कि हर पूर्णमासी की रात इसी प्रकार. किसी स्त्री के पहले गीत गाने की, फिर रोने की आवाज सुनाई पड़ती है, पर आज तक उस स्त्री की शक्ल किसी ने नहीं देखी है। वह कौन है, क्यों गाती है, फिर रोती क्यों है... इसे भी आज तक कोई नही जान सका है। इतना जरूर सबको मालूम है कि वह आवाज मन्दिर के खण्डहर से आती है।

उस दिन मेरा मन किसी काम में नहीं लगा। चित्त में अजीब सी व्याकुलता समायी रही। दूसरे दिन न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर मैं नदी की ओर चला गया। मन्दिर के ध्वन्सावशेष के सामने पहुँचकर मैं एकदम स्तब्ध रह गया। सहसा बीस वर्ष पूर्व स्वप्न में देखे गये मन्दिर का आकार-प्रकार मेरे मानस-पटल पर स्पष्ट हो गया। कहीं कोई असमानता नहीं थी। सब कुछ वही था। वैसी ही सीढ़ियाँ, वही सहस्त्रमुण्डी आसन का चबूतरा, वही पंच प्रेतासन और पंचवटी का वही वृक्ष। सिर्फ इतना ही अन्तर था कि मन्दिर अब खंडहर में बदल चुका था और सब कुछ ज्यों का त्यों था।

न जाने किस भावावेश में मैं मन्दिर के भीतर चला गया। सामने देवी छिन्नमस्ता की हूबहू वैसी ही पाषाण प्रतिमा खड़ी थी। काफी देर तक मन्दिर के चारो ओर घूमता रहा। मेरे समाने एक अविश्वसनीय सत्य था। मैंने कभी कल्पना तक न की थी इसकी।

बड़ी देर तक घूमने के बाद मैं सहस्त्रमुण्डी के चबूतरे पर बैठ गया और सोचने लगा उस रोज अपने शरीर से मेरे निकलने का प्रयोजन क्या था? वह भैरवी कौन थी? अपने साथ मुझे किसलिये इतनी दूर इस मन्दिर में ले आई थी। जब मन्दिर का पार्थिव अस्तित्व है तो उस भैरवी का भी .....।

एकाएक दिमाग को झटका सा लगा। वह भैरवी अब पार्थिव शरीर में कहाँ होगी? जब स्वप्न की स्थिति में उसके साथ आया था, उस समय यह मन्दिर खण्डहर के रूप में नहीं था। निश्चय ही वह भैरवी मुझे सैकड़ों वर्ष अतीत में ले गयी थी - जिस समय वह मन्दिर अपनी आन बान शान से खड़ा रहा होगा। इसका मतलब वह भैरवी निश्चय ही कोई सूक्ष्म शरीरधारिणी आत्मा थी।

एक महीने के बाद फिर पूर्णिमा की रात आयी। अर्द्ध रात्रि का समय। वैसा ही निस्तब्ध, शान्त वातावरण। ओस में भीगी चांदनी बिखरी हुई थी। सहसा वायुमण्डल में गीत की स्वर-लहरी थिरकने लगी। फिर वही करूण क्रन्दन और रूदन। आवाज मन्दिर की ओर से ही आ रही थी।

मैं तैयार बैठा था। तुरन्त मन्दिर की ओर चल पड़ा। वहाँ पहुंचने में अधिक समय नहीं

लगा। रूदन का करूण स्वर मन्दिर की दीवारों से टकराकर अभी गूंज ही रहा था।

सीढ़ियाँ चढ़कर मैं ऊपर पहुँचा। वहाँ का दृश्य देखकर मैं स्तब्ध अवाक् रह गया। अपने स्थान से हिल-डुल भी नही सका। जड़वत खड़ा ताकता ही रह गया-सामने पंचवटी के नीचे सहस्त्रमुंडी आसन के चबूतरे पर वीणा बजाता हुआ एक युवक तल्लीन होकर कातर स्वर में धीरे-धीरे राधा का विरह गीत गा रहा था। उसके पैरों को किसी की घनी केश-राशि घेरे हुये थी। कोई युवती थी शायद। वह उस युवक के दोनों पैर सीने से लगाये रो रही थी।

सहसा युवक ने कहा, ”छोटी माँ, अब चलिये। भोर होने वाली है।”

”चलती हूँ।” युवती गिड़गिड़ा उठी, ”मगर एक बार फिर वही गीत सुना दो। कृष्ण के विरह में कातर राधा की व्याकुलता... ”

”नहीं, अब नहीं। तुम मुझे पथभ्रष्ट करने पर तुली हुई हो। अब, चली जाओ। मैं तुमको बार-बार मना करता हूँ कि यहाँ मत आया करो, लेकिन... ”

”लेकिन तुम्हारा गीत...तुम्हारा स्वर मुझे पागल बना देता है। मैं अपने को बहुत समझाती हूँ पर तुम्हारे गीत की मूर्च्छता मुझे यहाँ आने पर विवश कर देती है। फिर मैं अपने को रोक नहीं पाती।” युवती गीले स्वर में कह रही थी, ”रही पथभ्रष्ट करने की बात, सो किसने किसको पहले पथभ्रष्ट किया है-यह तुम अच्छी तरह जानते हो। तुमने ही मेरे आचरण, संयम,निष्ठा और दस वर्षों की कठोर साधना को अपनी सम्मोहन-शक्ति से नष्ट कर दिया। आत्मा की मुक्ति की ओर अग्रसर मेरे जीवन में तुमने ही बिष घोल दिया। वैधव्य के कठोर संयम मेरे आचरण पर तुमने ही कुठाराघात किया है। दोष किसका है? मैंने तुमको पहले नहीं चाहा था। तुम यहाँ आये ही क्यों? किसका इशारा था तुम्हारे वहाँ आने में? बोलो...बोलो…”

मगर युवक ने युवती की बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया। वीणा को कन्धे पर रखकर वह धीरे-धीरे पैर उठाता हुआ एक ओर चल पड़ा।

युवती दोनों हाथों के बीच मुँह छिपा कर फफक-फफक कर रोने लगी। उसके रूदन का करूण कातर स्वर मन्दिर की दीवारों से टकराकर वातावरण में बिखरने लगा।

मैं युवती के समीप जाकर खड़ा हो गया। मेरा मन विचलित हो उठा था। देशकाल को जैसे भूल गया था। आखिर मुझसे रहा नहीं गया तो हौले से पूछ बैठा-”तुम कौन हो? तुम्हारा दुख मुझसे देखा नहीं गया। मेरा हृदय फटा जा रहा है तुम्हारा स्थिति देखकर। बोलो, तुम कौन हो?”

युवती मेरी बात सुनकर खड़ी हो गयी। उसके ऊपर भरपूर चाँदनी पड़ रही थी उस समय। हे भगवान ! मेरे सामने वही भैरवी खड़ी थी-स्वप्नवाली भैरवी। शरीर का सारा रक्त जैसे बर्फ हो गया। आँखें मिलते ही मैं बेबस हो गया। सिर्फ दो फुट की दूरी से दो जलती हुई स्थिर आँखें मेरे चेहरे की ओर देख रही थी...ये क्या किसी बाघिन की आँखें हैं? मैं कांप उठा। नहीं, ये किसी युवती की आँखें है। सारा शरीर पाषाण की तरह निश्चल था, आँखें भर

मशाल की तरह जल रही थी।

उसी क्षण मानों मुझे होश आया। शरीर की नस-नस में मानों एक बिजली सी दौड़ गयी।

सहसा वे जलती हुई आँखें बुझ गई। चेहरे पर सहज भाव उभर आया। मेरा हाथ थाम कर बोली-”मैं कौन हूँ...वही जानना चाहते हो न ?

मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा में थी। उस दिन गंगा घाट पर तुम मुझसे मिले थे-तभी से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी। तुमको यहाँ पाकर बड़ी शान्ति मिली। आओ मेरे साथ।”

मैं उसकी यह रहस्यमयी बातें समझ नहीं सका, पर सम्मोहित सा उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। वह मुझे लेकर एक दुमंजिले मकान में पहुँची। उस लम्बे-चौड़े कमरे में प्रकाश हो रहा था। एक और बड़ा सा पलंग था, जिस पर रेशमी चादर बिछी थीं। सामने लकड़ी के एक छोटे से मन्दिर में कृष्ण काली की पीतल की मूर्ति थी, जिसके गले में जवा पुष्प की माला पड़ी थी। घी का चौमुखा दीप जल रहा था। धूपबत्ती भी जल रही थी। कमरे के सुगन्धित वातावरण में एक विचित्र सी अलौकिक शान्ति छायी हुई थी।

वह कहने लगी– ”मेरा नाम शकुन्तला है, पर मैं दुष्यन्त की शकुन्तला नहीं हूँ। बस शकुन्तल की व्यथा और व्याकुलता भर है मुझ में। इसी से मुझे यह नाम सार्थक लगता है। तुमको कैसा लगा?”

”बहुत सुन्दर।”

”बैठो। पलंग पर ही बैठो। संकोच मत करना।”

मैं पलंग पर बैठ गया।

उसने कृष्ण काली के सामने रखी हुई चांदी की कटोरी उठा ली। उस समय वह बहुत शान्त और गम्भीर थी। उसकी चितवन में गहरापन था, पर तीक्ष्णता नहीं थी। उसने कटोरी की ओर इशारा करते हुये पूछा,”पीयोगे?”

”क्या है?”

”तीर्थ यानी मदिरा। माँ का प्रसाद है। इन्कार मत करना।” यह कहकर उसने तीर्थ-यात्र मेरे होठों से लगा दिया। मैं उसे एक सांस में पी गया। मदिरा बड़ी मीठी लगी, मगर सारा शरीर एकदम झनझना उठा।

शकुन्तला ने वह कटोरी फिर तीर्थ से भरी और अपने गले में ढाल लिया। इसके साथ ही उसको आँखें रक्ताभ हो गयीं। अब उसके रूप में उग्रता के स्थान पर सौम्यता का भाव उतर आया था। यौवन की उष्णता का स्पर्श और मदिरा के गुलाबी नशे का मिला-जुला प्रभाव मेरे विवेक को भी ले डूबा। मैंने अपने को उसके आलिंगन में बंध जाने दिया।

उसी अवस्था में कानों के पास उसका कोमल स्वर सुनाई पड़ा। वह कह रही थी-मैं एक मूर्तिमान अभिशाप हूँ। एक ऐसा हीन व्यक्तित्व हूँ जो किसी के काम नहीं आ सकी।

कुमारीत्व का विसर्जन स्त्रीत्व के बल पर ही सम्भव है। मैं बाल विधवा हूँ। बंगाल की एक रियासत की छोटी रानी। पति का मुख देखने के पूर्व ही मैं विधवा हो गयी थी। वैधव्य के कठोर नियमों का पालन करते हुए मैंने एक युवा तांत्रिक सन्यासी से तंत्र की दीक्षा ले ली। तंत्र की साधना आत्मा की साधना है। इसके लिए पहले मन को साधना पड़ता है, लेकिन मैं मन को नहीं साध सकी और अपने दीक्षा गुरू से ही प्रेम कर बैठी। वह भी मुझसे प्रेम करता था-मगर पवित्र प्रेम...निस्वार्थ...गुरू तुल्य प्रेम। मगर मेरा प्रेम वासना में डूबा था। तंत्र साधना में "वासना" का कोई स्थान नहीं है। वासना-कामना के जन्म लेते ही सब कुछ नष्ट हो जाता है। मगर मुझे इसकी चिन्ता नहीं थी। सन्यासी शायद मेरे मनोभाव समझ गया था सो एक दिन बिना बतलाये यहाँ चला आया। कहीं वह मेरी वासना की आग में झुलस कर पथभ्रष्ट न हो जाय-शायद इसीलिए, मुझसे दूर हो गया था। मगर मैंने उसका पीछा नहीं छोड़ा। खोजती हुई मैं भी आ गयी यहाँ। जानते हो, मुझे यहाँ आए कितने वर्ष हो गये। पूरे सौ वर्ष। तब से यहीं भटक रही हूँ। मेरे दीक्षा गुरू, वह तांत्रिक सन्यासी भी तभी से भटक रहा है।"

एक दीर्घ निःश्वास लेकर उसने आगे कहना शुरू किया -"जब तक मेरा कुमारीत्व भंग नहीं होगा, तब तक मैं इसी तरह भटकती रहूँगी। तुम मुझे उबार लो...मुझे अपना लो। मेरे मन में जलती हुई आग को बुझा दो। मेरी अतृप्त कामना को पूर्ण कर दो। तुम्हारा एहसान कभी नहीं भूलूंगी।

उसका कण्ठ अवरूद्ध हो गया। क्षण भर रूक कर वह भींगे स्वर में बोली, "तुम उच्च तंत्र साधक परिवार के हो। तुम्हारे रक्त में साधना का संस्कार है। उसकी स्पर्शानुभूति से मैं कृतार्थ हो जाऊँगी। मैं तुमको अब नहीं छोड़ सकती।"

कहते-कहते उसने मुझे आलिंगन में जकड़ लिया। उसके अपरूप सुन्दरता की पर्तें खुल गयी, चांद सा उजला मुखड़ा, घनी स्याह केश राशि, बड़ी-बड़ी काली कजरारी आँखें, आकर्षक भंगिमा में उभरे हुये यौवन के चिन्ह सब निर्वसन होकर धीरे-धीरे मेरे अस्तित्व में लीन होने लगे और अन्त में उसका संगमरमरी शरीर मुझसे एकाकार हो गया। फिर मुझे होश नहीं रहा। पता नहीं कब, किसी क्षण वह कुमारी से पूर्ण नारी बन बैठी...

जब चेतना लौटी तो देखा - मैं कमरे में निढाल पड़ा हूँ और थापा पास खड़ा घूर रहा था। मुझे चैतन्य देखकर वह बोला-"साहब ! मैं आपको पूरी रात खोजता रहा। आप यहाँ कब और कैसे पहुँच गये?

मैंने थापा को कुछ नहीं बतलाया। जब चलने लगा तो अचानक धूल से भरे उस उजाड़ कमरे के एक कोने में दृष्टि पड़ गई। मैं आश्चर्य चकित रह गया-वहाँ सोने का एक लॉकेट पड़ा था। उस लॉकेट को मैंने उस भैरवी के गले में झूलते देखा था।

इस घटना को हुये लगभग सोलह वर्ष हो गये। सचमुच उस तांत्रिक भैरवी ने मेरा साथ नहीं छोड़ा। आज भी मैं उसकी आत्मा से मुक्त नहीं हूँ। जिसको मैं अनुभव अवश्य करता हूँ, मगर उसे किसी को बतला नहीं सकता। फिर भी मैं सन्तुष्ट हूँ, प्रसन्न हूँ। जीवन के प्रति

शिकायत नहीं है, क्योंकि मैं जीवन का रहस्य समझ गया हूँ।

अन्त में यह बताना देना आवश्यक है कि उस तांत्रिक भैरवी से मुझे कोई भौतिक लाभ नहीं है। यह सत्य है कि यदि मैंने उसे लौकिक सुख दिया तो उसके बदले उसने मेरी पारलौकिक सहायता की। उसकी सहायता से उसके साथ चलकर मैं आज जिस स्थान पर पहुँचा हूँ, वह मानव चेतना की उच्चतम भूमि है, जहाँ पहुँचने के लिये लोग योग का सहारा लेते हैं।

अध्याय ४
परकाया प्रवेश

योग की उच्चतम सिद्धियों में एक सिद्धि परकाया प्रवेश भी है। परकाया प्रवेश का सीधा सा अर्थ है- दूसरे के शरीर में प्रवेश करना। यह विशेषत: योग द्वारा ही सम्भव है, पर तंत्र की उच्चतम साधना द्वारा भी लोग दूसरे के शरीर में इच्छानुसार प्रवेश कर सकते हैं।

जिन मृतात्माओं में वासना और इच्छाशक्ति की प्रबलता रहती है, वे भी किसी की शरीर में प्रविष्ट हो जाती है। इसे भी एक प्रकार से "परकाया प्रवेश" की ही संज्ञा दी जा सकती है। मृतात्मायें जीवित और मृत दोनों शरीरों में प्रवेश करती हैं। जीवित शरीर में प्रवेश करके जिस व्यक्ति का वह शरीर होता है, उसके माध्यम से वह अपनी अतृप्त वासना और इच्छाओं की पूर्ति करती है। इसी को "प्रेत-बाधा" की संज्ञा दी गयी है।

मानव शरीर में वैसे तो ७२ हजार नाड़ियाँ हैं। केवल मस्तिष्क में ही लगभग ६ हजार नाडियाँ है, मगर उन सब नाड़ियों में मुख्य नाड़ियाँ तीन ही है- प्राणवहा, रक्तवहा और मनोवहा। जीवन धारण की प्रमुख प्रक्रियायें बराबर इन्हीं तीनों नाड़ियों में होती रहती है। इनके पूर्ण रूप से शिथिल हो जाने पर ही शरीर के परमाणुओं का विघटन शुरू होता है और शरीर से दुर्गन्ध निकलने लगती है।

मृत्यु के बाद, पर तीनों नाड़ियों के शिथिल होने के पहले यदि अवसर मिल जाय तो स्वयं जीवात्मा अपने पार्थिव शरीर में प्रवेश कर पुन: जीवित हो सकती है। ऐसी बहुत सी घटनायें आप लोगों ने पढ़ी सुनी होगी कि अमुक व्यक्ति मरने के कुछ समय बाद फिर से जीवित हो उठा।

जीवात्मा को अपने मृतकाया में पुनः प्रवेश करने की सम्भावना तो कम ही रहती है, मगर मृतात्माओं द्वारा प्रवेश करने की सम्भावना सर्वाधिक होती है। वे अवसर पाते ही मृतकाया में मुख के मार्ग से प्रवेश कर जाती हैं। उनकी गर्मी के प्रभाव से शिथिल हो रही नाड़ियाँ पुनः चैतन्य हो उठती है और अपना-अपना काम करने लगती हैं।

इस प्रकार दूसरे के शरीर में मृतात्मायें बहुत कम ही रह पाती हैं। फिर भी यदि कोई श्रेष्ठ और उच्च कोटि की मृतात्मा चाहे तो वह ऐसे शरीर में दीर्घकाल तक भी रह सकती है।

काशी में एक दण्डी स्वामी रहते थे। नाम था स्वरूपानन्द। वेदान्त दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान थे। मैंने विद्यार्थी जीवन में उन्हीं से वेदान्त का अध्ययन किया था। ८० वर्ष की अवस्था में भी वे पूर्ण स्वस्थ थे और उस समय वेदान्त पर एक पुस्तक लिख रहे थे। लेकिन एक दिन अकस्मात उनकी मृत्यु हो मयी। केवल मामूली सा ज्वर हुआ था।

आखिर शव को जल प्रवाह के लिये ले जाया गया। शवयात्रा में मैं भी था। यथाविधि केदारेश्वर मन्दिर के सामने स्वामी स्वरूपानन्द का शव गंगा में प्रवाहित कर दिया गया।

इसके ठीक दो काल बाद एक युवक सन्यासी मुझे मिला। वह मुझे देखकर मुस्कराया,

बोला- ”पहचानते हो मुझे?”

”नहीं ! मैं तो आपको पहली बार देख रहा हूँ।” मैंने कहा।

सन्यासी ने गम्भीर स्वर में कहा, ”मैं स्वामी स्वरूपानन्द हूँ।”

”यह कैसे सम्भव हो सकता है।”

”सम्भव है, सब कुछ सम्भव है।”

उस युवक सन्यासी का नाम भी स्वरूपानन्द ही था। उसने जो विचित्र कथा सुनाई, वह अत्यन्त रहस्यमय थी। पता चला कि अपनी अधूरी पुस्तक को पूरी करने के लिये ही स्वामी स्वरूपानन्द की मृतात्मा प्रबल वासना वेग के फलस्वरूप एक ऐसे ब्राह्मण युवक के शरीर में प्रवेश कर गयी थी जिसकी उसी समय बीमारी के कारण मृत्यु हुई थी। उसके शरीर में जीवित होकर स्वामी स्वरूपानन्द ने पुनः सन्यास ले लिया और इसके बाद वे अधूरी पड़ी अपनी पुस्तक के लेखन कार्य में जुट गये।

उच्चकोटि के तांत्रिक भी अपनी किसी कामना को पूरी करने के लिये कुछ समय के लिये विशेष तांत्रिक क्रिया के बल पर किसी जीवित व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

काशी के नारद घाट मुहल्ले में काली जी का प्राचीन मन्दिर है। बाहर से तो वह मकान-सा लगता है, पर भीतर काली की भव्य प्रतिमा स्थापित है। १८-२० वर्ष पूर्व एक बंगाली सज्जन वहाँ पुजारी के रूप में नियुक्त हुये थे। नाम था चारूचन्द्र अवधूत। उनकी अवस्था उस समय ७० वर्ष से कम नहीं थी, फिर भी साधना के तेज से उनका मुख हमेशा प्रदीप्त रहता था।

चारू महाशय को कई सिद्धियाँ प्राप्त थीं। वे प्राय: रोजाना पूजा-पाठ करने के बाद अपनी कोठरी को भीतर से बन्द करके शरीर के बाहर निकल जाया करते थे। यदि उनको कुछ खाने की इच्छा हुई तो उस समय खा रहे किसी भी व्यक्ति के शरीर में रहस्यमय ढंग से प्रवेश कर जाते थे और पूर्ण रूप से तृप्त होकर बाहर निकल आते। इसी प्रकार वे अपनी तमाम इच्छायें पूरी कर लिया करते थे। जब मैंने उनकी इस क्रिया को पकड़ा तो हँस कर कहने लगे, ”एक ही शरीर से आत्मा की सारी इच्छायें कैसे पूरी की जा सकती है? शरीर प्रकृति के नियम और धर्म में बंधा हुआ है, भला उसे तोड़कर कैसे सारी इच्छाओं को पूरा किया जा सकता है।”

लेकिन परकाया प्रवेश के ये सब रूप मुझे उतना प्रभावित नहीं कर सके, जितना कि परकाया प्रवेश-सिद्ध हिमालय के एक महान योगी ने मुझे प्रभावित कर और चमत्कृत किया था। मेरी रचनाओं को पढ़कर अब तक आप इतना तो अवश्य ही जान गये होंगे कि मैं शुरू से ही एक खोजी प्रवृति का आदमी हूँ। मेरी अपनी भावना है, अपने विचार हैं और अपने सिद्धान्त हैं। मैं उसी के अनुसार योग-तंत्र की दिशा में खोज करता रहता हूँ और मुझे इसमें सफलता भी मिलती है।

यौगिक क्रियाओं द्वारा परकाया प्रवेश सभी योगियों के वश की बात नहीं है। इस विश्व में दो सत्ताएं हैं- वस्तुपरक और आत्मपरक, दोनों को एक में जोड़ना ही "योग" का काम है। जहाँ तक वस्तुपरक सत्ता है- वहाँ तक शरीर है। उसके बाद आत्मा का व्यापार शुरू हो जाता है। योग का कार्य है वस्तु सत्ता पर अधिकार कर आत्म सत्ता में प्रवेश करना। "यम" से लेकर "धारणा" तक योग यात्रा वस्तुपरक सत्ता की दीर्घयात्रा है। "सविकल्प समाधि" आत्मसत्ता यानी आत्मजगत में प्रवेश का मुख्य द्वार है - जिसमें योगी मनोमय शरीर द्वारा प्रवेश करता है। योग साधना की उच्चतम अवस्थाओं की प्राप्ति के लिये एक मात्र मनोमय शरीर ही "साधन" है। जो वास्तव में सच्चे अर्थों में योगी हैं, वे स्थूल शरीर के रहते हुये भी मनोमय शरीर में जीते हैं और वही शरीर उनकी साधना का माध्यम भी होता है।

मनोमय शरीर अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यही शरीर आत्मा का वाहक है। इस संसार और ब्रह्माण्ड के सभी लोक-लोकान्तरों में इसी शरीर को लेकर आत्मा गमन करती है। दार्शनिक के शब्दों में मनोमय शरीर से आत्मा का अलग होना ही मोक्ष, निर्वाण अथवा मुक्ति है। एक बार संबंध टूट जाने पर आत्मा फिर शरीर पकड़ सकती- यही आत्मा की मुक्ति है। इस अवस्था में न वह कहीं जा सकती है और न कहीं जन्म ही ले सकती है।

समाधि के कई स्तर हैं और उन स्तरों की अपनी-अपनी उन्नतियाँ हैं। समाधि के उन्नतिशील स्तरों में मनोमय शरीर के पूर्ण विकसित हो जाने पर योगी किसी प्रकार के समय और स्थान की बाधा के बिना किसी भी व्यक्ति से संबंध स्थापित कर सकता है...बिना बोले किसी के विचार को पढ़ सकता है...हजारों मील दूर बैठे व्यक्ति के विचारों को भी जान-समझ सकता है...बिना कहे, बिना बतलाये और बिना समझाये कोई बात दूसरे में प्रवेश करा सकता है...किसी का संस्कार भी किसी में डाल सकता है...स्थूल शरीर के बाहर निकलकर लम्बी यात्रा कर सकता है...शरीर के बाहर घूम सकता है...और अत्यधिक उन्नत हो जाने पर मनोमय शरीर द्वारा किसी के भी पार्थिव शरीर में चाहे वह मृत हो या जीवित, प्रवेश कर सकता है।

योग की जितनी भी सिद्धियाँ हैं, उन सबका संबंध मनोमय शरीर से ही समझना चाहिये। आपने कुण्डलिनी, सहस्त्रार, षट्चक्र आदि की चर्चा अवश्य सुनी होगी। आपने शायद यह भी सोचा होगा कि ये सब स्थूल शरीर में ही होंगे। जी नहीं, ये सब मनोमय शरीर में हैं। कुण्डलिनी एक महत्वपूर्ण शक्ति केन्द्र है। मनोमय-शरीर में जीने वाला व्यक्ति ही कुण्डलिनी को जगा सकता है और उसकी शक्ति की सहायता से अपनी आध्यात्मिक उन्नति भी कर सकता है। स्थूल शरीर और मनोमय-शरीर के बीच में सूक्ष्म-शरीर है। प्रेत-शरीर और वासना-शरीर इसी के रूपान्तर हैं। प्रारम्भिक अवस्था में योगी और तांत्रिक इस शरीर से अवश्य काम लेते हैं, मगर महत्वपूर्ण कामों के लिये इस शरीर का कोई उपयोग नहीं है। इस शरीर से उत्पन्न रूकावटों को हटाकर मनोमय-शरीर से संबंध स्थापित करने के लिये "ध्यान योग" अति उत्तम साधन है। तांत्रिक लोग इससे भी एक कदम आगे हैं। वे इस साधन के साथ मदिरा का शोधन कर उसका भी सेवन करते हैं। आपको मालूम होना चाहिये कि मनोमय-शरीर बहुत नाजुक होता है। वह अन्य नशीली वस्तुओं से तो नहीं- मगर शराब से तुरन्त प्रभावित होता है। उच्चकोटि के योगपरक तांत्रिक, प्राणायाम से सधे

श्वास-प्रश्वास के मध्य पड़ने वाले अन्तर में अपने मन को एकाग्र करते हैं, फलस्वरूप तुरन्त ही कुछ समय में मनोमय-शरीर से उनका सम्पर्क हो जाता है। फिर वे कुछ भी कर सकते हैं- प्रेतात्माओं, सूक्ष्मात्माओं अथवा देवात्माओं आदि से किसी भी काम के लिये अलौकिक सहायता प्राप्त कर सकते हैं। कुछ सीमा तक असम्भव दीखने वाले कामों को भी पूरा कर सकते हैं। तरह-तरह के चमत्कारों का भी प्रदर्शन कर सकते हैं।

अब प्रश्न यह है कि योगियों के लिये परकाया प्रवेश की क्यों और किसलिये आवश्यकता है?

इसके उत्तर में मैं आपको संक्षेप में इतना ही बतला सकूँगा कि योगियों की मति-गति हमारी आपकी मति-गति से काफी भिन्न होती है। हम लोग जिस वस्तु को साध्य रूप में अपनाते हैं, उसे वे साधन के रूप में स्वीकार करते हैं। निर्लिप्त भाव से योग में पूर्ण तृप्त हुये बिना कोई भी योगी नहीं हो सकता, यह आप समझ लीजिये। योगियों के लिये यह संसार एक रंग मंच है। वे संसार आदि का अनुभव प्राप्त करने के लिये अथवा अपने किसी अधूरे पड़े सांसारिक कार्य को पूरा करने के लिये अथवा संसार का अध्यात्मिक कल्याण करने के लिये अपने अनुकूल किसी के शरीर में प्रवेश करते हैं। एक कारण और भी है- वह यह कि यदि उनका अपना शरीर अति वृद्ध या कमजोर हो गया होता है और उसके जरिये योग की कठिन साधना नहीं हो पाती है तो वे उसको त्याग कर किसी स्वस्थ और अनुकूल शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

यह तो हुई मेरी कथा की पृष्ठभूमि- जिसके आधार पर मैं आपको हिमालय निवासी एक ऐसे योगी की कौतूहलपूर्ण कथा सुनाने जा रहा हूँ, जिसने दो सौ वर्ष के दीर्घकाल में अपने निज शरीर को सुरक्षित रखते हुये सोलह बार "परकाया प्रवेश" किया था।

जब मैंने पूछा कि परकाया प्रवेश का उद्देश्य क्या था तो उस महायोगी ने गम्भीर स्वर में बतलाया- "संसार के विभिन्न रूपों का अनुभव प्राप्त करना।"

उस योगी से मेरी भेंट हिमालय में हुई थी।

योग-तंत्र के विद्वानों का कहना है कि भारत "महायोनि पीठ" है, जिसके उपरी दोनों कोणों पर महासरस्वती पीठ (कश्मीर) और महालक्ष्मीपीठ (कामरूप) है तथा नीचे के कोण पर महाकाली पीठ (कन्याकुमारी) है। मध्य में बिन्दु रूप शिव (महाकालेश्वर, उज्जैन) है। इस महायोनि पीठ के ऊपर हिमालय की गोद में पूरब से पश्चिम तक लगभग ६० मील का क्षेत्र बिल्कुल शून्यमय है। योगी तांत्रिकों की भाषा में यह हिम क्षेत्र "महाश्मशान" के नाम से प्रसिद्ध है। गोरखनाथ ने इसी महाश्मशान में साधना की थी। आदि शंकराचार्य से पराजित होकर कापालिक ने भी अपनी साधना के लिये इसी क्षेत्र को चुना था। गोरखनाथ की प्रसिद्ध अखण्ड धूनी इसी स्थान पर है। धूनी से निकलने वाली धूमशिखा आज भी कभी-कदा किसी भाग्यवान को आकाश का स्पर्श करती हुई दिखलायी पड़ जाती है। उस प्रदेश की हिमाच्छादित चट्टानों से टकराती हुई "अलख निरञ्जन" की आवाज तो आज भी प्राय: लोगों को सुनाई पड़ जाती है। इसी क्षेत्र में कैलाश, मानसरोवर, रूप कुण्ड, गौरी कुण्ड भी है और चर्मचक्षु से परे कुछ ऐसे योगाश्रम, सिद्धाश्रम और मठ भी हैं जिनमें उच्च अवस्था

प्राप्त दो सौ से हजार वर्ष की आयु वाले सिद्धों और योगियों की मण्डिलयाँ निवास करती हैं।

उन्हीं में वह महायोगी भी थे, जिनकी मैंने अभी चर्चा की है। उनका नाम था सत्यानन्द सरस्वती। देखने में तो वे साठ-पैंसठ वर्ष से अधिक के नहीं लगते थे, किन्तु उनकी वास्तविक उम्र दो सौ वर्ष थी। चेहरे पर अलौकिक तेज था। नेत्रों में प्रखर ज्योति। शरीर का रंग गोरा, मूँछ, दाढ़ी तो नहीं थी, पर सिर की जटायें जमीन को छूती थीं। उनके शरीर से हमेशा विचित्र प्रकार की सुगन्ध निकलती रहती थी।

महायोगी सत्यानन्द सरस्वती ने जो रोमांचक कथा सुनाई थी, वह उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है :-

पंचभूत तत्वों पर विजय प्राप्त कर लेने पर दो सौ ही क्या, दो हजार वर्षों तक भी पार्थिव शरीर को रखा जा सकता है। आत्मा और शरीर के संबंध की अवधि को ही काल या उम्र कहते हैं। मेरे इस दो सौ वर्ष के जीवन में रोमांच, कौतूहल और रहस्यों का एक ऐसा इतिहास छिपा हुआ है जिसका अनुभव शायद आज तक कोई भी एक साथ नहीं कर सका होगा। समझ में नहीं आता कि कहाँ से शुरू करूँ। पहले क्या कहूँ, अनगिनत कहानियाँ हैं। यह शरीर जितना कीमती और महत्वपूर्ण है तथा इसका कितना उपयोग है- यह मनुष्य तब समझता है, जब शरीर उसके हाथ से निकल जाता है।

प्रत्येक जीवन चाहे वह पचास वर्ष का हो या सौ वर्ष का- अपने आपमें एक कहानी है। मैंने दो सौ वर्षों के दीर्घ अन्तराल में इस प्रकार की सोलह कहानियाँ एकत्र की है।

जिस शरीर को तुम अपने सामने पालथी मारे आसन पर बैठा हुआ देख रहे हो, यह माता-पिता का दिया हुआ शरीर है। प्रकृति की ओर से मुझे इस शरीर से जो जीवन भोगने के लिये मिला था, उसी से मैं अपनी कथा शुरू कर रहा हूँ-

उस समय ब्रिटिश शासन था। मैं सरकारी कर्मचारी था। अच्छा पद, अच्छा वेतन था। परिवार में मैं था और मेरी पत्नी कमला थी। मैं सब तरह से सुखी और सम्पन्न था। कोई भी अभाव नहीं था मुझे। शायद मेरा पूरा जीवन इसी प्रकार बीत जाता- मगर नियति तो कुछ और ही थी। एक दिन जरा-सी बीमारी ने मेरी पत्नी को मुझसे छीन लिया। यों देखने में नहीं लगता था कि वह मर गयी है। बल्कि ऐसा जान पड़ता मानो वह गहरी नींद में सो रही हो। मृत्यु उसमें कोई भी परिवर्तन न ला सकी थी। होंठो पर पर वही मन्द मुस्कान थी। वही अधखुली स्वप्निल आँखें जिनमें मेरे लिये प्यार छलकता था। होंठो का अमृत, चेहरे की कान्ति कुछ भी कम नहीं हुआ था। लेकिन मेरी सारी खुशी, सारा उत्साह और सारी उमंग छिन गयी थी। सारी कामना-लालसा एकबारगी खत्म हो गयी थी। आत्म-विश्वास का महल ढह गया था और संसार में सौन्दर्य का जो आकर्षण था वह खत्म हो चुका था।

मैंने नौकरी छोड़ दी।

उस समय मेरी उम्र सिर्फ तीस वर्ष की थी।

शान्ति पाने लिये मैं हरिद्वार चला गया। जब मैं वहाँ गुफाओं और पर्वत-शिखरों पर भटक रहा था, तभी मेरी भेंट एक साधु से हुई। उनके चेहरे पर अद्भुत सौम्यता और तेज था किन्तु वह एक मुर्दे का मांस नोच-नोच कर खा रहे थे। भयमिश्रित कौतूहल के कारण मैं उनके पीछे-पीछे हो लिया। उन्होंने भी मुझे पीछे-पीछे आते देखा, पर कुछ बोले नहीं। आखिर मैंने उनको अपनी पीड़ा सुनाई। वे चुपचाप निर्विकार सुनते रहे। उनके चेहरे पर न कोई भाव आया, न गया। उनकी मुद्रा पहले की तरह शान्त और निर्विकार रही। मुझे आशा थी कि वे कुछ कहेंगे- शान्ति के दो शब्द या फिर ब्रह्मज्ञान का रहस्य, जिसे सुनकर मैं अपनी पीड़ा भूल सकूँगा, परन्तु उनकी चुप्पी से भी मुझे कोई निराशा या झुंझलाहट नहीं हुई। उनके व्यक्तित्व में चुम्बक जैसा आकर्षण था, जो मुझे कुछ सोचने-समझने नहीं दे रहा था।

धीरे-धीरे काफी समय बीत गया, किन्तु इस दीर्घ अवधि में वे मुझसे एक बार भी नहीं बोले थे।

अचानक एक दिन सबेरे उन्होंने कहा, ”आज मैं जा रहा हूँ।”

”जी, कहाँ?”

उन्होंने दूर बर्फ से ढँकी चोटियों की ओर इशारा कर दिया।

मैं चुपचाप उस ओर देखता रहा। बर्फीली चोटियाँ सूरज की सुनहली किरणों से सोने जैसी जगमगा रही थी। फिर भी वहाँ जैसे रहस्य का गहरा धुन्ध छाया हुआ था।

मैं बोला- ”मैं भी चलूँगा।”

”नहीं तू वहाँ नहीं जा सकता।”

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। फिर न जाने क्या हुआ, झुक कर उनके चरण पकड़ लिये। बारह महीने के सम्पर्क ने मुझे जो मानसिक शान्ति दी थी, वह मुझे कहीं नहीं मिली थी। वे चुपचाप खड़े गहरी नजरों से मेरी ओर देखते रहे।

एकाएक मैं कह उठा, ”मैं अब लौट कर अपने पिछले संसार में नहीं जाना चाहता। वह अब है भी नहीं। लेकिन कामना-वासना और भोग लालसा के पीछे भागते हुये संसार को मैंने देखा है- उसे ही और विशाल एवं व्यापक रूप में देखना चाहता हूँ।”

”यह तो परकाया प्रवेश की सिद्धि से ही सम्भव है।” उन्होंने फुसफुसाकर कहा, ”अच्छा आ, चल मेरे साथ।”

मैं उनके साथ हिमालय की ओर चल पड़ा। दो माह की यात्रा के बाद इस गुफा में पहुँचा। फिर उस महात्मा के साथ रहकर पूरे पच्चीस वर्ष मैंने इसी गुफा में योग साधना की।

फिर मेरे गुरूदेव की समाधि का समय आ गया। समाधि ग्रहण करने के पूर्व उन्होंने मुझे अपने निकट बुलाया। उस समय मेरी आँखों में आँसू थे। एक महापुरुष से हमेशा-हमेशा के लिये संबंध टूट रहा था। मन विगलित और कण्ठ अवरुद्ध था मेरा।

गुरूदेव गम्भीर स्वर में बोले- ”मैं अपनी इच्छा शक्ति से तुझे एक अपूर्व योग सिद्धि प्रदान कर रहा हूँ। इसके बल पर जब तेरी इच्छा हो, अपने पार्थिव शरीर को छोड़कर विशुद्ध आत्मा बन जाना, फिर जब तक तेरी इच्छा हो किसी के भी मृत शरीर में वास करना। तुझे जीवन का विराट रूप देखने को मिलेगा।

परकाया प्रवेश की विलक्षण सिद्धि मुझे मिल गयी।

दूसरे दिन सबेरे ही मैंने पद्मासन पर बैठकर उस सिद्धि की सहायता से अपने शरीर का त्याग कर दिया। अब मेरे सामने ही मेरा पार्थिव शरीर पद्मासन में बैठा था। मैंने अपनी ओर देखा, मैं स्थिर नहीं था। हवा के कम्पन के साथ मेरा अस्तित्व भी झूल रहा था अधर में। चारो ओर निस्तब्धता थी। एक विलक्षण अनुभूति से मैं अपने आपको निर्विकार अनुभव कर रहा था। चारों तरफ का मोहक वातावरण देखकर मुझे लगा जैसे मैं किसी ऐसे संसार में हूँ जहाँ अपार तुष्टि और शान्ति है। एक मोह के वशीभूत मैं कुछ देर अपने शरीर के चारो ओर चक्कर काटता रहा, फिर अचानक ही जैसे मैंने उस मोह को जीत लिया और अपने पार्थिव शरीर को इसी गुफा में छोड़कर सहारनपुर की ओर बढ़ चला। इच्छा करते ही मैं वहाँ पहुँच गया। मेरे सामने पूरा शहर था। पत्थर और लोहे-सीमेन्ट से बनी इमारतों के आरपार भी मैं इस प्रकार देख सकता था, जैसे वे पारदर्शी शीशे की बनी हों।

मनुष्य कितने भ्रम में जीवन व्यतीत करता है और अपने भ्रम पूर्ण विश्वास के कारण वह हर समय कितना छला जाता है, इसका उदाहरण मुझे तुरन्त मिल गया।

एक मठ में भजन-कीर्तन हो रहा था। महन्त जी निर्विकार भाव से एक ऊँची चौकी पर आसन लगाये थे। शरीर पर रेशमी भगवा वस्त्र था। मस्तक पर त्रिपुण्ड लगा था। एक ओर भक्तगण बैठे थे और दूसरी ओर महिलायें। सभी भक्ति-भाव से विभोर झूमते हुए हरिभजन कर रहे थे। सहसा महन्त जी आसन से उठकर भीतर कमरे में चले गये। थोड़ी देर बाद एक प्रौढ़ महिला भी अपनी बगल में बैठी युवती के साथ उठी, और दूसरे रास्ते से महन्त जी के कमरे में पहुँच गयी। वह प्रौढ़ा और महन्त जी शायद सधे-बधे थे। युवती बहुत सुन्दर थी। शायद हाल में ही उसकी शादी हुई थी। प्रौढ़ा ने उसे कमरे के भीतर ढकेल कर बाहर से दरवाजा बन्द कर दिया।

मैने कमरे में झांककर देखा। अब महन्त जी का असली रूप मेरे सामने था। वे उस युवती को अंक में समेटे हुए विषय-भोग में लिप्त थे। वह युवती छटपटा रही थी। महन्त जी का पैर पकड़ कर गिड़गिड़ा रही थी, मगर...

मुझसे आगे नहीं देखा गया। मैं वहाँ से चल पड़ा। थोड़ी दूर पर एक मकान में एक युवती अपने पति को बड़े प्रेम से भोजन करा रही थी। पति भी पुलकित होकर भोजन कर रहा था। मैं सोचने लगा पति-पत्नी का कितना नैसर्गिक प्रेम है यह। मगर मेरा सोचना गलत था। पति जैसे ही भोजन करके मकान से बाहर निकला, दूसरे रास्ते से एक युवक भीतर घुस आया। उसे देखते ही वह युवती उसके गले से लिपट गयी। वह युवक उसका प्रेमी था।

मेरा मन खिन्न हो गया। फिर आगे बढ़ा तो एक सेठ जी को होटल के कमरे में एक षोडशी

के साथ जबर्दस्ती मुंह काला करते देखा। सेठ जी शराब के नशे में धुत थे और बार-बार कह रहे थे, "मैंने तेरे लिये पांच सौ रूपये तेरे बाप को दिये हैं। पूरा चुकता हो जायेगा, तभी तुझे छोड़ूँगा प्यारी। चल आ ... मेरे पास आ ..."

लड़की की हालत दयनीय थी। नोच-खसोट से साड़ी-ब्लाउज कई जगह से फट गये थे। आखिर थक कर वह लुढ़क पड़ी। फिर सेठ उसके शरीर के साथ मनमानी करने लगा। मेरी इच्छा हुई कि उस युवती की सहायता करूँ। अपना हाथ बढ़ाया भी, मगर उनके और मेरे बीच अचानक जैसे एक ठोस पारदर्शक दीवार आकर खड़ी हो गयी। मैं चाहकर भी उस बेसहारा युवती की कोई सहायता नहीं कर सका।

पता नहीं कितनी देर तक मैं इसी प्रकार विभिन्न सांसारिक खेलों को देखता रहा। कहीं क्रोध था तो कहीं द्वेष, घृणा या वासना। धर्म के नाम पर वासना का नग्न रूप देखकर मेरा मन उचट गया।

उसी समय देखा- कुछ दूर पर एक अर्थी जा रही थी। लाश किसी वृद्ध सेठ की थी। न जाने क्यों मेरे मन में आया कि मृत शरीर को छू लूं और मैंने आश्चर्य से देखा कि मैं उस मृत शरीर को छू सकता हूँ। तब याद आया कि गुरूदेव ने कहा था कि मैं मृत शरीर में प्रवेश कर सकता हूँ। यह याद जाते ही मुझे इच्छा हुई कि मैं जीवित हो उठूँ और परकाया प्रवेश सिद्धि की सहायता से मैं दूसरे ही क्षण सेठ जी के मृत शरीर में बैठ गया।

यह मेरा प्रथम परकाया प्रवेश था।

शरीर में प्रवेश करते ही मेरी भौतिक चेतना वापस लौट आयी। इस बात का मुझे पहली बार अनुभव हुआ कि पृथक होने पर आत्मा अपने-आप में असीम शक्ति और व्यापक सत्ता का अनुभव करती है, परन्तु जब वह शरीर की सीमा में बंध जाती हैं तो उसकी शक्ति और सत्ता संकुचित हो उठती है —

मैं अभी तक अपने आप में जो व्यापकता अनुभव कर रहा था, शरीर में प्रविष्ट होते ही उसके अनुसार अपनी शक्ति और सीमा का अनुभव करने लगा ।

सेठ जी का शरीर बंधा था । उसमें प्रवेश करते ही मुझे उसके बंधन का अनुभव हुआ। मैंने जोर से बोलना चाहा, मगर शरीर की दुर्बलता के कारण ऐसा नहीं कर सका । फिर भी मुझे जीवित देख कर भीड़ में खलबली मच गयी । कुछ लोगों को प्रसन्नता हुई और कुछ लोगों के मुंह लटक गये । क्यों? इसका रहस्य बाद में खुला ।

सेठ जी का नाम था नरोत्तम दास । वह करोड़पति सेठ थे । काफी लम्बा-चौड़ा व्यापार था । साठ वर्ष की उम्र में उन्होंने तीसरी शादी की थी । पत्नी का नाम था शोभा । सेठ जी की पहली पत्नी से एक लड़का था- पुरुषोत्तमदास । शोभा और पुरुषोत्तम - दोनों हम उम्र ही थे अत: दोनों एक दूसरे के प्रति आकर्षित हो गये । बाद में वही आकर्षण प्रेम और शारीरिक संबंध में बदल गया ।

सेठ नरोत्तमदास शोभा को हर प्रकार से खुश रखते थे, पर वे उसकी तन की प्यास बुझा

सकने में असमर्थ थे। जब शोभा को पहली बार पुरूषोत्तम दास से पुरुष-सुख मिला तो वह निहाल हो उठी। फिर तो दोनों रोज वासना का खेल खेलने लगे। पुरूषोत्तम को बचपन से ही बुरी आदतें पड़ गयी थीं। वह शराब पीता था, जुआ खेलता था और उसकी रातें वेश्याओं की गोद में बीतती थी। रूपये-पैसे की कमी उसे बराबर बनी रहती थीं। शोभा काफी चालाक औरत थी। वह पुरुषोत्तम दास की इस कमी को पूरी करने लगी। पुरुषोत्तमदास जितने रुपये मांगता, वह झट से निकाल कर उसे दे देती। इसके बदले पुरुषोत्तमदास भी शोभा को अधिक से अधिक खुश करने लगा। अब तो उसके साथ बैठकर बेझिझक शराब भी पीने लगी थी। पूरी-पूरी रात वे शराब के नशे में चूर एक दूसरे से लिपटे पड़े रहते थे।

ऐसी ही स्थिति में एक दिन सेठ जी की नजर उन दोनों पर पड़ गयी। उनको सहसा अपनी आँखों पर विश्वास ही नहीं हुआ, किन्तु सत्य सत्य ही था। वे आपे से बाहर हो गये और दोनों को उसी समय उठा कर डांटने-फटकारने लगे, मगर उन दोनों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

इसके दूसरे ही दिन सेठ जी अपने बिस्तर पर मरे पाये गये। कहते हैं, उनका हार्ट फेल हो गया था।

कुछ क्षण मौन रहने के बाद स्वामी सत्यानन्द ने फिर कहना शुरू किया -

दूसरे के शरीर में प्रवेश करके मैं जिन्दा तो हो गया था, परन्तु अब मेरे सामने कठिनाई यह थी कि मैं वहाँ किसी को पहचानता नहीं था। मुझे घेरे हुये कई लोग खड़े थे। सेठ नरोत्तमदास का किससे क्या संबंध था - यह तुरन्त समझ पाना मेरे लिये कठिन था अब मुझे चतुराई से काम लेना था।

एक मोटा-सा व्यक्ति जो मेरे करीब ही बैठा था। मैंने उससे धीरे से कहा, ”मुझे सहारा दो। मेरा सिर दर्द कर रहा है। मुझे आराम की जरूरत है।”

मैं तुरन्त सेठ जी के सजे-धजे कमरे में पहुँचा दिया गया। आँखें बन्द करके मैं बिस्तर पर पड़ा रहा। तभी मुझे देखने के लिये शोभा कमरे में आयी। गजब की खूबसूरत थी वह। मेरी आँखे सहसा चौंधिया गयीं।

उसने आँखों में छलक आये आँसू पोछते हुये कहा, “मुझे छोड़कर कहाँ चले गये थे तुम?” फिर मेरे सीने पर अपना सिर रखकर वह फफक-फफक कर रोने लगी।

“उफ्।”

“क्या हुआ?” शोभा बोला।

“सीने में दर्द हो रहा है।”

“क्यों?...मालिश कर दूँ ?”

“नहीं मालिश-वालिश करने की जरूरत नहीं हैं। अपने आप ठीक हो जायेगा।”

“क्या तुमने मुझे अभी भी माफ नहीं किया?”

“माफ करने के लिये ही तो मैं मर कर फिर वापस लौट आया।” इतना कहकर मैंने गहरी नजरों से शोभा की ओर देखा। वह सहम गयी। शायद मेरी आँखों की भाषा पढ़ ली थी उसने।

करीब एक साल मैं सेठ नरोत्तमदास के शरीर में रहा। इस बीच मैंने संसार के सारे सुखों को भोगा, मगर मैंने इस बात का भी अनुभव किया कि जर्जर और अशक्त शरीर हमेशा आत्मा की आवाज को पूरी तरह नहीं प्रकट कर पाता था। जो जिन्दगी स्वस्थ शरीर में सुन्दर और आकर्षक दिखती थी, वही इस बूढ़े शरीर के कारण धुंधली और कुरूप दिखती। अक्सर मुझे लगता कि बूढ़ा सड़ा हुआ शरीर मेरी आत्मा को जीत लेगा। मैं हार जाऊँगा। उस समय मेरी इच्छा होती थी कि इस शरीर को छोड़ कर पुन: विशुद्ध आत्मा बन जाऊँ, लेकिन सुख का लालच मुझे बार-बार इस विचार से हटा देता। मैं सोचता क्या हुआ, यदि मैं कान से कम सुन पाता हूँ या मुझे आँख से कम दिखता है। मैं इन्द्रियों के सुख का तो अनुभव कर ही सकता हूँ।

लेकिन एक दिन विरक्ति और अपने आपसे घृणा की मेरी यह भावना बहुत अधिक बढ़ गयी और सिद्धि की सहायता से मैंने तुरन्त सेठ नरोत्तमदास का बूढ़ा जर्जर शरीर छोड़ दिया। मगर उसे छोड़ने के पहले मैंने सारी चल-अचल सम्पत्ति का एक ट्रस्ट बनाकर उसकी जिम्मेदारी सरकार को दे दी।

शरीर के बाहर आते ही मैंने स्वतन्त्रता महसूस की। सिर्फ एक क्षण के लिये शरीर के बंधन के प्रति आकर्षण हुआ, लेकिन तुरन्त ही मैंने उस आकर्षण पर विजय प्राप्त कर ली और एक बार फिर कमल के पत्ते की तरह निर्लिप्त होकर मैं संसार की भोग-लालसाओं की भाग-दौड़ को देखता-महसूस करता और उसकी निरर्थकता समझता हुआ विचरण करने लगा।

योगी सत्यानन्द पल भर चुप होकर कुछ सोचते रहे, फिर कहने लगे-

मैं तुम्हें अपने सभी अनुभव नहीं सुनाना चाहता। मेरे पास इतना समय भी नहीं है। इतना ही कह सकता हूँ कि अपने इस लम्बे जीवन के दौरान मैं अक्सर इच्छानुसार चोला बदल लिया करता था। जो चोला लेता था उसी की व्यथा विचित्र होती।

उन दिनों देशी राजाओं के साथ ब्रिटिश सरकार का भयंकर युद्ध छिड़ा हुआ था। एक बार मैं यों ही घूम रहा था अचानक मेरी नजर एक सुन्दर युवक पर पड़ी। वह सड़क पर पड़ा था। शायद मर गया था वह। उसका सारा शरीर खून से भींगा हुआ था। सीने में कई गोलियाँ लगी थीं। पास ही खड़े उसके साथी हर-हर महादेव का नारा लगा रहे थे। कुछ लोग लाश से लिपट कर रोती हुई उसकी माँ को हटाने की कोशिश कर रहे थे। मुझसे एक माँ का करूण क्रंदन नहीं देखा गया सो तुरन्त ही मैं उस युवक के शरीर में प्रवेश कर जीवित हो उठा।

युवक का नाम बलवन्त सिंह था। उसका शरीर पूर्ण स्वस्थ था। जरूर उसकी आत्मा मेरी आत्मा से महान थी, क्योंकि जब तक मैं उसके शरीर में रहा, मुझे उस शरीर रूपी आवरण की महानता की निरन्तर अनुभूति होती रही। वह अनुभव कुछ ऐसा ही था, जैसा झोपड़े में रहने वाला गरीब किसान ऊँचे आलीशान महल में जाने पर करता है।

कुछ दिनों के बाद मेरा चित्त फिर स्वतन्त्र होने के लिये व्याकुल हो उठा। यों सुनने में यह बात आश्चर्यजनक मालूम होती होगी कि किस तरह बार-बार मैं मानव शरीर को इतनी जल्दी त्याग देता था। क्या सांसारिक सुख भोग की लालसा और मोह मुझे मानव शरीर से अलग होते समय ललचाते नहीं थे?

सचमुच शरीर का एक जबर्दस्त आकर्षण था, पर विशुद्ध आत्मा बने रहने में जिस सार्वभौमिक शून्यता, एकान्त और शान्ति का अनुभव होता था वह सांसारिक परेशानियों की तुलना में कहीं ज्यादा मोहक थी। संसार में मनुष्य शान्ति और आनन्द पाने के लिये जितना संघर्ष करता है, क्या उस संघर्ष के बावजूद उसे वे दोनों चीजें सच्चे अर्थों में मिल पाती हैं ? नहीं कभी नहीं जीवन एक मृग-मरीचिका है। यहाँ सब कुछ खोना है। गंवाना हैं पाना कुछ भी नहीं है। विशेष आत्मा बन जाने पर मैं अपने आपको इस संसार में अनुभव करते हुये भी जिस वातावरण में रहता था, उसमें असीम शान्ति और असीम आनंद था, जिसकी अनुभूति इस संसार और शरीर में रहते हुये मनुष्य कभी भी नहीं कर सकता। उस वातावरण में एक अद्‌भुत शून्यता छायी रहती थी। कभी-कदा केवल शंख की ध्वनि और भगवान के कीर्तन के स्वर भर वहाँ सुनाई पड़ जाते थे, बस।

जब मैं विशुद्ध आत्मा के रूप में रहता तो मनुष्यों की सांसारिक लीला निर्विकार और तटस्थ भाव से देखा करता, लेकिन फिर पता नहीं किस प्रेरणा से किसी मृत शरीर में प्रवेश करके एक साधारण प्राणी बन जाता था। मुझे ठीक-ठीक याद नहीं कि मैं जितनी बार मृत शरीर में प्रविष्ट हुआ, वे कौन लोग थे? जीवन और मृत्यु का यह लम्बा चक्र था और मैं उनकी भावनाओं से निर्लिप्त सिर्फ एक कौतूहल की सृष्टि करता हुआ क्रमहीन आवागमन की जंजीर में जकड़ा हुआ था। मुझे अपने द्वारा त्यागे गये शरीर का मोह कभी नहीं हुआ। शरीर छोड़ने के बाद उसकी क्या गति होती है - यह भी जानने की कभी उत्कंठा नहीं हुई।

जब मैं किसी के शरीर में प्रवेश करता, तब उस शरीर की पहले की संज्ञा मुझे दी जाती। यद्यपि मुझे अपने पहले का इतिहास-पूर्व रूपी आवरण में घिरी आत्मा अपना इतिहास एकदम भूल जाती और न शरीर का जो इतिहास होता, उसे ही स्वीकार कर लेती।

हाँ, एक बात और बतला दूँ, जब मैं विशुद्ध आत्मा बनकर आत्म लोक में रहता था, तब मुझे समय का कोई ज्ञान नहीं होता था, वहाँ हर समय उषाकालीन जैसा हल्का सफेद प्रकाश तैरता रहता था। पर जब मैं संसार में आता तो मुझे तुम लोगों के हर समय के ज्ञान की अनुभूति होने लगती थी।

इसी तरह न जाने कितने वर्ष बीत गये।

एक दिन अचानक काशी के प्रति आकर्षण पैदा हुआ। उस समय मैं एक सन्यासी के शरीर

में था। मुझे ऐसा लगा, मानों वहाँ कोई करूण स्वर में मुझे पुकार रहा है। मैं तुरन्त काशी पहुँच गया। सांझ का समय था। टहलता हुआ मैं श्मशान घाट की ओर चला गया। वहाँ दर्जनों चितायें जल रही थीं। उन पर घी-तेल, चन्दन, धूप आदि डाला जा रहा था। एक ओर मरने वाले के सगे-सम्बन्धी बैठे पिण्डदान कर रहे थे। उन लोगों को घेरे हुए दर्जनों पण्डे खड़े थे।

सहसा मैंने देखा - एक बूढ़ा आदमी कफन में लिपटी हुई एक लाश बांहों में उठाये अकेला चला आ रहा है। कोई उसका साथ देने वाला भी नहीं। मैंने पास जाकर कहा, ”तुम थक गये होगे लाओ लाश मुझे दे दो।”

बूढ़े की आँखों से आंसू बह रहे थे। लाश को मेरे हाथों में देते हुये उसने कहा, ”जरा संभाल कर लेना। मेरा इकलौता बेटा है।”

उसके लिये वह अभी तक वह ”है” था ”था” नहीं हुआ था। लाश मुझे थमाकर वह पीछे की ओर पलटा। कुछ दूर पर एक युवती खड़ी थी। बूढ़े ने बताया, “वह मेरी बहू है, इसी लड़के की औरत।”

इतना कहकर बूढ़ा रोने लगा। जब जी कुछ हल्का हुआ तो कहने लगा - “बाबा जी, पिछले महीने ही मेरे बेटे की शादी हुई थी। शादी के दो ही दिन बाद यह अचानक बीमार पड़ गया, फिर इसकी लाश ही उठी खाट से। दवा-दारू में सारी जमा पूँजी खत्म हो गयी। बहू के जेवर भी बिक गये। आखिर मुझे और बहू को बेसहारा छोड़कर चला गया मेरा लाल।”

मैंने नजर घुमाकर बहू की ओर देखा, घूंघट काढ़े वह जड़वत् खड़ी थी। बेचारी के पैरों के महावर और हाथों की मेहदी भी अभी नहीं छूटी थी। धीरे-धीरे वह भी सिसक रही थी।

मेरा मन करूणा से भर गया। अत: आँखें दूसरी ओर घुमा लीं। तभी एक डोम चिल्लाता हुआ पास आया - “ए..ए...तुम लोग इधर कैसे आये ? यहाँ राजाओं और पुण्यात्माओं के क्रिया-करम होते हैं।”

दूसरा डोम बोला - “उधर उस तरफ ले चलो मुर्दे को और क्रिया-करम के लिये दो सौ रूपये निकालो। जल्दी करो धन्धे का समय है।”

दो सौ रूपये ? सुनते ही बूढ़ा एकदम सकपका गया। जैसे उसे लकवा मार गया हो ? उसके पास तो दो रूपये नहीं थे उस समय। सारी रकम और जमा पूँजी तो खत्म हो गयी बेटे के इलाज में।

थोड़ी देर बाद जब उसे होश आया तो वह पास ही सामने खड़ी बहू के पास पहुँचा। रूंआसे स्वर में बोला, “बहू ये लोग तो बिना रूपये लिये श्मशान में क्रिया करम भी नहीं करने देंगे .. अब क्या होगा, बहू ...”

बहू मौन साधे चुप खड़ी रही, कुछ बोली नहीं। फिर कुछ क्षण बाद उसका एक हाथ आंचल के बाहर निकला तो गोरे रंग की उसकी पतली-पतली कोमल उंगलियों के बीच मंगल सूत्र

लटक रहा था।

“बाबूजी।” हौले से युवती बोली, ”इसे ले लीजिये और देकर उनका क्रिया-करम करिये।”

“बहू यह तो मंगल सूत्र है।” कहते-कहते बूढ़ा फूट-फूट कर रोने लगा।

”बाबू जी, अब कहाँ रह गया वह मंगल सूत्र ? अब वही नहीं रहे तो उनके मंगलसूत्र को रखकर अब क्या करूंगी ?”

उसी समय सहसा पूर्वी हवा का एक झोंका आया और युवती का घूंघट हट गया। उसका चांद-सा चेहरा देखकर चौंक पड़ा मैं। घोर आश्चर्य हुआ मुझे। उस युवती का चेहरा मेरी पत्नी कमला से बिल्कुल मिलता-जुलता प्रतीत होता था। कहीं कोई वैषम्य नहीं था। वैसी ही बड़ी-बड़ी कजरारी आँखें, वैसी ही नुकीली लम्बी नाक और वैसे ही गुलाब के फूल जैसे कोमल रक्ताभ होंठ। बिल्कुल वैसा ही रंग-रूप। आकुल हो उठा मेरा मन। समझते देर नहीं लगी शायद कमला की आत्मा ने ही उस युवती के रूप में जन्म लिया था। शायद उसी की विहलता भरी करूण पुकार थी जो मुझे काशी खींच ले आयी थी। दीर्घ अन्तराल के बाद बिछुड़ी हुई दो आत्माओं का मिलन हुआ था और वह भी इस रूप और परिस्थिति में। मगर यह युवती क्यों और कैसे विश्वास करेगी कि दो सौ वर्ष पूर्व वह जिसकी प्रियतमा थी, वह आज साधु के वेष में उसके सामने खड़ा है। मैं उलझन में पड़ गया। पर जब मैं किसी भी कीमत पर कमला की आत्मा को छोड़ने को तैयार नहीं था।

दो सौ वर्ष पहले की अशान्ति एकाएक भड़क उठी थी मेरे भीतर। उस युवती के रूप में सामने खड़ी कमला को आलिंगनबद्ध कर लेने के लिये व्याकुल हो रहा था मेरा मन। मैं तुरन्त वहाँ से हट गया और कुछ दूर जाकर एकान्त में लेट गया। फिर अपनी सिद्धि की सहायता से सन्यासी का वह शरीर छोड़ दिया और दूसरे ही क्षण उस युवक की मृत काया में प्रवेश कर गया।

कमला को पाने के लिये यही रास्ता था मेरे सामने, पर युवक के शरीर में घुसते ही पहली बार एक विचित्र प्रकार की घुटन का अनुभव हुआ। शायद इसलिये कि उसे मरे बहुत अधिक समय हो गया था और रोग-ग्रस्त शरीर की नाड़ियाँ एक-एक कर सुख चुकी थीं।

जीवित होते ही मैं हाथ-पैर पटककर जोर-जोर से चिल्लाने लगा, ”मुझे खोलो, खोलो मुझे...मैं मरा नहीं हूँ..।”

मेरी आवाज सुनकर चारों तरफ खलबली मच गयी। कुछ लोग तो डर कर भागने लगे। शायद किसी की नजर साधु की लाश पर भी पड़ गयी। वह वहीं से चिल्लाता, ”अरे! यह साधु कैसे मर गया, अभी तो वहाँ खड़ा-खड़ा बुड्ढे से बातें कर रहा था ... “

दूसरे ने कहा, “कहीं यह साधु ही तो नहीं मर कर इस छोकरे की लाश में घुस गया है ?”

“यह कैसे हो सकता है ?”

अभी हो-हल्ला हो ही रहा था कि किसी ने एक डॉक्टर बुलाकर मेरी जांच पड़ताल करानी

शुरू कर दी। तब तक मैं स्वयं कफन हटाकर उठकर बैठ गया था। डॉक्टर ने मेरे सीने को टटोला, फिर नाड़ी देखी और आखिर उसने मुझे जीवित घोषित कर दिया। मैं चिल्लाया, "कमला"।

कमला नहीं बेटा मनोरमा है तेरी औरत का नाम। यह भी भूल गये क्या ? वह बूढ़ा व्यक्ति मेरे करीब आ खड़ा हुआ।

मैं अपने आप बुदबुदाया, "इससे क्या हुआ? शरीर भले ही मनोरमा का हो, आत्मा तो मेरी कमला की है उसमें। मेरे पुकारते ही मनोरमा ने लपककर मेरे गले में अपनी कोमल बाहें डाल दी और मेरे कन्धे पर सिर रखकर रोने लगी। मैंने उसकी काली पलकों पर हाथ फेरते हुये उसे धीरे से उठाया और हौले से कहा, "मंगल सूत्र कहाँ है उसे पहन लो। उस मंगल सूत्र ने ही तुम्हें फिर सुहागिन बना दिया मनोरमा।"

मगर मनोरमा मेरी रहस्यपूर्ण बातों को नहीं समझ सकी। उसने सिर्फ आश्चर्य से मेरी ओर देखा, जैसे उसे विश्वास ही न हो रहा हो कि मैं जिन्दा हो उठा हूँ।

धीरे-धीरे मुझे सब कुछ मालूम हो गया। मैंने जिस मृत युवक के शरीर में प्रवेश किया था, उसका नाम मुरारी लाल था। उसकी एक छोटी-सी दुकान थी। उसी की आमदनी से गृहस्थी का सारा खर्च चलता था। घर की हालत दयनीय थी। चारो ओर अभाव ही अभाव था। मृत मुरारी लाल के शरीर में रहते हुये मुझे चार मास के ऊपर हो गये थे। स्वस्थ आत्मा और मनोरमा की सेवा पाकर मेरा शरीर जल्दी ही निरोग हो गया।

मनोरमा रोज सबेरे मुझे प्रेम से भोजन कराकर दुकान भेज देती और स्वयं घर-गृहस्थी में लग जाती। पहले मेरी इच्छा हुई कि मै मनोरमा को सब कुछ बतला दूँ। यह स्पष्ट कर दूँ कि मैं उसका पति नहीं, बल्कि उसके वर्तमान पति के शरीर में दो सौ वर्ष पहले के उसके पति की आत्मा हूँ, परन्तु कुछ अपनी कमजोरी और कुछ उसका कमला जैसा असाधारण सौन्दर्य और प्रेम मुझे चुप रहने को विवश कर देता, सोचता हूँ जीवन के प्रति इतना जबर्दस्त मोह मुझे पहले कभी नहीं हुआ था। मनोरमा में मैं कमला की मोहक छवि देखता था। उसके प्यार को कमला का प्यार समझता था। गरीबी और अभावों से जूझती हुई जिन्दगी में हम दोनों एक दूसरे के सहारा थे। हमारे दिन शान्ति के साथ बीत रहे थे। जीवन में न विरक्ति थी, न उपेक्षा। मैं करीब-करीब यह भूल गया था कि मैं एक विशुद्ध आत्मा भर हूँ।

शरीर को मेरे जीवन का साध्य नहीं बनना है...और यह भूल गया था कि मरीचिका के बंधन को तोड़ सकूं, इसीलिये मैंने गुरुदेव से सिद्धि का फल मांगा था। मुझे सिर्फ अपना संसार - अपनी पत्नी, एक घर और एक छोटी-सी दुकान मात्र की याद रह गयी थी। यदि मेरे लिये कोई सुख था तो वह सिर्फ पत्नी के सान्निध्य में था।

एक दिन जब दुकान से थका-हारा लौटकर आया तो मनोरमा मेरे बालों को सहलाते हुई हौले से बोली, "सुनते हो ?"

“क्या ?”

”तुम पिता बनने वाले हो ?”

”पिता ।” मैंने हँस कर मनोरमा की ओर देखा, लेकिन इस समाचार ने मेरे मन में हलचल मचा दी । यह किसका पुत्र है ? क्या मुरारी लाल का, जिसका यह शरीर है ? उस समय मुझे इसका उत्तर नहीं मिला परन्तु बाद में, जब मैं मुरारी लाल का शरीर छोड़ कर अन्यत्र भटक रहा था, तब मुझे इसका उत्तर मिल गया । वह लड़का मेरी आत्मा का ही अंश था । मैं जहाँ कहीं भी गया, मुझे उसकी याद बराबर आती रही । दूर रहकर भी वह जैसे हर समय, हर क्षण मेरे साथ रहा । मुझे बराबर यह महसूस होता रहा जैसे मैं अपना ही एक अंश काशी में छोड़ आया हूँ।

दो सौ वर्ष की लम्बी यात्रा में मैंने सिर्फ तीन-चार गुफा में पड़े अपने इस निज शरीर में प्रवेश किया था । जब मैंने मुरारी लाल का शरीर छोड़ा, उस समय मुझे फिर अपना यह शरीर अपनी ओर आकर्षित करने लगा । मैं बिना कहीं रुके सीधा यहाँ चला आया — देखा तो मेरा अपना पार्थिव शरीर गुफा के भीतर निश्चेष्ट पड़ा है । मुझे अपने शरीर के प्रति जबरदस्त मोह हुआ । ऐसा मोह मुझे किसी दूसरे का शरीर ग्रहण करते या परित्याग करते समय कभी नहीं हुआ था । मैंने अनुभव किया कि माता-पिता द्वारा प्रदत्त पार्थिव शरीर के प्रति आत्मा को जो मोह-माया होता है, वही वास्तविक होती है । दूसरे का शरीर, उसके लिये किराये के मकान के समान होता है ।

मैं अपने निजी शरीर में प्रवेश कर जीवित हो उठा । अट्ठारह साल हो गए - तब से मैं इसी शरीर में इसी गुफा में हूँ।

इतना कहने के बाद स्वामी सत्यानन्द चुप हो गये ।

रात आधी से ज्यादा गुजर चुकी थी । वातावरण में विचित्र नीरवता छायी हुई थी । बाहर अनवरत हिमपात हो रहा था । मैंने एक बार स्वामी जी की ओर देखा। वे किसी गहरे विचार में डूबे हुये थे । जब उनकी विचार-तन्द्रा टूटी तो मैंने पूछा - ”आपने मुरारी लाल का शरीर क्यों छोड़ा - यह तो बतलाया ही नहीं ?”

यह सुनकर स्वामी जी पहले तो हँसे, फिर गम्भीरता से बोले, ”मनोरमा ने मेरे दबे हुये संस्कार को एकबारगी जगा दिया एक दिन । उसी समय मैंने मुरारीलाल का शरीर छोड़ने का फैसला कर लिया । बात यह हुई कि उस रोज दुकान से आकर मैं लेटा हुआ था कि अचानक मनोरमा ने मर जाने का ताना दिया। बात कुछ न थी, फिर भी उसका व्यंग्य मुझे छू गया । मेरे मन की स्वतन्त्रता की उद्दाम कामना, जो काफी अर्से से दबी-दबी सुलग रही थी - एकाएक भभक उठी । मैंने सोयी हुई मनोरमा को एक बार भर नजर देखा और उसी रात मुरारी लाल का शरीर छोड़ दिया । फिर न जाने कहाँ-कहाँ भटकता रहा । दो-तीन बार मन में मनोरमा के प्रति मोह जागृत हुआ । जब नहीं रहा गया तो उसे देखने के लिये गया भी, पर तब तक लोग मुरारी लाल की लाश जला चुके थे । मनोरमा पागलों की तरह विलाप कर रही थी । कुछ देर तक उसे देखता रहा, फिर वहाँ से चला आया । किन्तु मेरे

मन में शान्ति नहीं है। कभी-कभी सोचता हूँ कि मेरी आत्मा का अंश लेकर पैदा होने वाला मेरा पुत्र इस समय युवक हो गया होगा। निश्चय ही वह गरीबी और अभाव में ही पलकर बड़ा हुआ होगा। मनोरमा को उसके पालने-पोसने में कितने कष्ट उठाने पड़े होंगे। उसके भीतर बैठी कमला की आत्मा भी मुझे कम व्याकुल नहीं करती। मनोरमा का मोह और कमला की आत्मा का आकर्षण - दोनों मिल कर मुझे अशान्त किये रहते है —"

फिर थोड़ा रूककर लम्बी सांस लेते हुये स्वामी जी ने कहा, "जीवन मृत्यु के चक्र में आत्मा कब से फंसी है - यह बतला पाना कठिन है। एक बार आत्मा इस चक्र में फंस गई तो फिर उसका निकल पाना असम्भव ही है। दो सौ वर्ष की लम्बी अपनी जीवन यात्रा में मैंने इस बात का अनुभव किया कि आत्मा के कई वर्ग हैं। कालचक्र में घूमती हुई जब तक एक ही वर्ग की दो आत्मायें संयोगवश मिल जाती हैं तो अलग हो जाने पर वे फिर एक दूसरे से मिलने के लिये व्याकुल रहती हैं - इसमें सन्देह नहीं। कौन सी आत्मा किस आत्मा के लिये व्याकुल है - यह नहीं बतलाया जा सकता। वास्तव में वही व्याकुलता मन की अशान्ति है, जिसे लेकर मनुष्य बार-बार जन्म लेता है और यह मानी हुई बात है कि दो बिछुड़ी हुई आत्मायें कभी-न-कभी मिलती जरूर हैं। यदि उन दोनों में पूर्व मिलन का ज्ञान है तो वे एकाकार होकर इस संसार के आवागमन से और कालचक्र से हमेशा-हमेशा के लिये मुक्त हो जाती है। काश ! मनोरमा के शरीर में बसी कमला की आत्मा को भी मेरी तरह पूर्व मिलन का ज्ञान हो गया होता हो..."

स्वामी सत्यानन्द फिर चुप हो गये और निर्विकार भाव से गुफा के बाहर शून्य में ताकने लगे।

धीरे-धीरे दस साल का लम्बा अर्सा गुजर गया। एक प्रकार से मैं स्वामी सत्यानन्द को और उनकी स्मृति कथाओं को भूल ही चुका था। फिर इस बात की तो कभी कल्पना भी नहीं की थी कि बनारस में उनसे एक बार फिर भेंट हो जाएगी।

मैं नित्य की भांति उस दिन भी सांझ के समय गंगा किनारे चुपचाप बैठा था, उसी समय किसी के पदचाप से तन्द्रा भंग हो गयी मेरी। सिर घुमाकर पीछे की ओर देखा तो गोरे रंग के एक प्रौढ़ सज्जन खड़े मुस्करा रहे थे। वह सिल्क का कुर्ता और कीमती धोती पहने हुए थे। उंगलियों में हीरे, मानिक और पुखराज की अँगूठियाँ थी और चेहरे पर लक्ष्मी का तेज दमक रहा था। कोई धनी सज्जन है - यह समझने में कठिनाई नहीं हुई। मेरी ओर देखते हुए उनके मुस्कराने का ढंग ऐसा लगा, जैसे वे मुझसे परिचित हैं।

अचानक उन्होंने पूछा, "आपने मुझे पहचाना नहीं ?"

"जी...जी नहीं।"

"मैं स्वामी सत्यानन्द हूँ।"

"आप सत्यानन्द है ?" विस्मय से मैं ताकता ही रह गया।

"जी हाँ ! वैसे आपका विस्मित और आश्चर्यचकित होना स्वाभाविक ही हैं, क्योंकि जिस

शरीर में आपने मुझे हिमालय की गुफा में देखा था, उसे मैं वहीं छोड़ आया हूँ और जिस शरीर में आप मुझे इस समय देख ही रहे है, यह कलकत्ता के एक करोड़पति सेठ की काया है।"

अचानक चन्दन की भीनी-भीनी सुगन्ध से भर गया वातावरण। सेठ जी के रूप में स्वामी सत्यानन्द को देखकर मुझे घोर आश्चर्य हो रहा था। "परकाया प्रवेश" की उनकी कथा उन्हीं के मुँह से सुनी अवश्य थी, फिर भी उसे एकदम सहज ही मेरा मन स्वीकार नहीं कर सका था।

स्वामी सत्यानन्द मुस्कराते हुये मेरे पास बैठ गए और कहने लगे, "चार-पाँच महीने पहले मैंने हरिद्वार में एक पंडितजी का शरीर ग्रहण किया था और उसी शरीर से मनोरमा और उसके बेटे को देखने के लिये बनारस आया था। माँ-बेटे की हालत बहुत ही दयनीय थीं। मनोरमा की जर्जर काया एवं भिखारिनों जैसा वेश और उसके बेटे कश्यप की शोचनीय स्थिति देख कर मेरा मन करूणा से भर उठा। घोर दरिद्रता के कारण मनोरमा बेटे को पढ़ा-लिखा नहीं सकी। अत: कश्यप अखबार बेचकर किसी प्रकार गृहस्थी का खर्च चलाता था। मैं सोचने लगा कि माँ बेटे की कैसे सहायता करूँ। बुद्धि काम नहीं कर रही थीं। मैं पंडितजी की काया त्याग कर फिर विशुद्ध आत्मा बन गया। एक दिन यों ही शहर में भटक रहा था कि मेरी नजर एक मोटर पर पड़ी। मोटर से एक सेठ उतर रहा था। उसी समय उसका हार्टफेल हो गया। मैं तुरन्त ही उस सेठ के शरीर में घुस गया। फिर मैंने तुम्हारा भी पता लगाया। सेठ जी के कोई औलाद नहीं है। शरीर तो उसका देख ही रहे हैं आप। मेरा विचार है कि कश्यप को गोद ले लूँ। दत्तक पुत्र के रूप में वह सेठ की अपार सम्पत्ति का मालिक हो जायेगा और मेरा भी कर्तव्य पूरा हो जायेगा। दरिद्रता के दुख को मैंने खूब महसूस किया है और यह नहीं चाहता कि उस दुख को मेरी आत्मा का कोई अंश भी सहे। यदि यह काम हो गया तो सचमुच मेरी आत्मा को परम शान्ति मिलेगी। मौत शरीर की नहीं, आत्मा की भी होती हैं। मैं महसूस करने लगा हूँ कि एक समय ऐसा भी आता है, जब आत्मा किसी भी शरीर में रहने से इन्कार कर देती है। अब मेरा ऐसा ही समय आ गया है। मैं समझ रहा हूँ, मेरी आत्मा अब किसी भी शारीरिक बंधन को स्वीकार नहीं करेगी।"

स्वामी सत्यानन्द के कहे अनुसार मैं दूसरे ही दिन कश्यप से मिला। उस समय वह गोदौलिया चौराहे पर खड़ा अखबार बेच रहा था। जब मैंने उसको बतलाया कि कलकत्ता के एक सेठ उसे गोद लेना चाहते हैं तो वह भौचक्का-सा मेरी ओर देखने लगा।

सेठ जी उसी दिन कश्यप और मनोरमा के साथ मुझे भी लेकर कलकत्ता रवाना हो गये और एक सप्ताह के भीतर ही कानूनी रूप से उन्होंने कश्यप को गोद ले लिया।

महीने भर बाद ही सुना कि सेठ जी का हार्ट फेल हो गया। उसके बाद स्वामी जी से मेरा पुन: सम्पर्क न हो सका ..... लगता है उनकी आत्मा उच्चावस्था को प्राप्त कर दिव्य लोक पहुँच गई।

अध्याय ५
ब्रह्म पिशाच की प्रेमिका

रात आधी से ज्यादा गुजर चुकी थी। कमरे का वातावरण बिल्कुल खामोश और बोझिल था, जिसमें रहस्यमयता का एहसास भी घुला हुआ था। स्फटिक की वेदी पर जलती हुई दीपशिखा एक बार कांपी, फिर वृत्ताकार रूप में चारों ओर फैलने लगी। एक सीमा तक फैलने के बाद उसका प्रकाश गहरा नीला हो गया और उसके बाद हल्का गुलाबी। उस गुलाबी प्रकाश में मैंने एक सुन्दर-सजीले युवक का आकर्षक रूप उभरते हुए देखा। वह युवक मुगलकालीन वेश-भूषा में था। उसकी आँखों में चमक और चेहरे पर रोब था, मगर मुझसे नजर टकराते ही उसका रोबदार चेहरा स्याह पड़ गया, और आँखों की चमक भी बुझ सी गयी।

दीपशिखा के उस गुलाबी प्रकाश के चमचमाते धब्बे पर से एकाएक युवक की शक्ल गायब हो गयी। उसके बाद वहाँ जो दृश्य उभरा - वह एक सजी-संवरी महफिल का था। इतिहास के पन्नों पर एकबारगी छा जाने वाले टीपू सुल्तान की महफिल का।

एक लम्बा चौड़ा हाल था, जिसके चारो ओर नक्काशीदार खम्भे थे। फर्श पर ईरानी कालीन बिछा हुआ था और खम्भों में जूही, चमेली, रात रानी की लड़ियों की मालायें लिपटी हुई थीं।

हाल के एक ओर गद्दी बिछी हुई थीं, जिस पर मखमल की चादर पड़ी हुई थी। उस गद्दी पर मसनद का सहारा लेकर सुल्तान बैठा था। हाल के दूसरी ओर भी उसी तरह गद्दी लगी हुई थी, जिस पर सुल्तान के हाकिम एवं सिपहसालार के अलावा अमीर, अमराव बैठे थे। तरह-तरह के इत्रों और फूलों की मिली-जुली सुगन्ध से महफिल का वातावरण सुगन्धित हो रहा था। महफिल में उस रात चुनी हुई, कमसिन नर्तकियाँ बुलायी गई थीं। वे सभी एक साथ नृत्य कर रही थीं। घुंघरुओं की झंकार के बीच कभी-कभी वाह ! वाह ! और माशाल्लाह का स्वर गूंज उठता था।

नृत्य कर रही नर्तकियाँ एक से एक बढ़कर हसीन, सुन्दर और जवान थीं, मगर सुलतान की पारखी नजर जिस हसीना पर बार-बार फिसल जाती थी - वह लाखों में एक थी। सचमुच उसके बेपनाह हुस्न ने सुलतान की रगो में दौड़ते हुये खून की रफ्तार को तेज कर दिया था।

नृत्य करते समय उस हसीना के घुंघराले बालों की कोई आवारा लट उसके चांद जैसे मुखड़े पर जब बिखर जाती, तो ऐसा लगता था, मानों पूर्णमासी के रूपहले चांद को सावन भादों के काले बादल के किसी स्याह टुकड़े ने ढकने की कोशिश की हो और तभी सुलतान की मजबूत उंगलियों में फंसा जाम कांप उठता और शराब फर्श पर छलक जाती। सुलतान के मुंह से दबी हुई आवाज निकल पड़ती - “या अल्लाह क्या हुस्न है ?”

एकाएक दीप-शिखा का रंग बदलकर हल्का नीला हो गया और उसी के साथ दृश्य भी बदल गया। अब मैं उस हल्ले नीले प्रकाश में सिर्फ उस हुस्न की मलिका को देख रहा था,

जिसने सुलतान की आँखों की नींद और दिल का चैन छीन लिया था। वह गुलमोहर की छांव में उदास बैठी हुई थी। कभी-कभी चौंक पड़ती थी, चौंककर अपने चारो ओर देखने लगती थी।

कौन थी वह नर्तकी ? क्यों इतनी उदास और सहमी-सहमी थी वह उस समय ? मुझे समझ में नहीं आ रहा था। तभी मुझे सामने से वही युवक आता दिखलायी पड़ा, जिसे मैंने प्रकाश के धब्बे पर शुरू-शुरू में देखा था। नर्तकी शायद उसी का इन्तजार कर रही थी। युवक के नजदीक आते ही उसका मुरझाया हुआ चेहरा गुलाब के फूल की तरह खिल उठा और फिर वह युवक से लिपट गयी। मिलन के उन क्षणों में दोनों में जो बातें हुई, उससे दोनों का संबंध साफ जाहिर हो गया। नर्तकी का नाम - सलीमा था और युवक का नाम था - भानु। दोनों एक-दूसरे को चाहते थे और जल्द से जल्द शादी कर लेना चाहते थे। मगर दोनों के बीच सम्प्रदाय की वही रूकावट थी, जिसका सामना सदियों से एक-दूसरे को चाहने वाले लोग करते आ रहे हैं।

सलीमा के स्याह घुंघराले बालों को अपने उंगलियों से सहलाता हुआ युवक हौले से बोला - "अमावस्या की अंधेरी रात में तुझे लेने आऊँगा सलीमा। तैयार रहना तुम। मैं यही कहने आया था —"

ठीक है - सलीमा ने जवाब दिया।

दीप-शिखा एक बार फिर झिलमिलाई प्रकाश का दायरा एक बार फिर कसमसाया। अब मैं जो दृश्य देख रहा था, वह किसी पहाड़ी इलाके का था। सामने एक पहाड़ी नजर आ रही थी, जिसके नीचे से बेहद पतली और आड़ी-तिरछी सीढ़ियों की कतार घूमती हुई ऊपर को गयी थी। जहाँ से सीढियाँ खत्म हुई थी। उसी के सामने एक दरवाजा था, जिस पर नक्काशी का काम था। उसके बाद पत्थरों से पटा हुआ एक चबूतरा था। चबूतरे के ठीक बीचो-बीच पहाड़ी के एक दम चोटी पर एक सुन्दर सा मकान था। वह सफेद संगमरमर के लाल पत्थर का अभूतपूर्व संयोग करके बनाया गया था — चबूतरे के चारो कोनों पर ऊँची-ऊँची चार मीनारें थीं। बीच में मकान के ऊपर झिलमिलाता हुआ एक गुम्बज था।

मुझे वह महलनुमा मकान काफी अच्छा लगा। जहाँ तक नजर जाती थी, हरियाली छायी थीं। जो दूर क्षितिज की नीलिमा में जाकर मिल गयी थी। बीच-बीच में पर्वत श्रेणियों की अल्पना थी। सीढ़ियों की कतार जंगल के हरे-भरे प्रदेश तक उतर गयी थी। इन प्राकृतिक मनोरम दृश्यों को देखकर एकाएक मेरे मस्तिष्क में गहरे अतीत की एक स्मृति जागृत हो उठी। लगभग पन्द्रह सोलह साल पहले मैंने मनोरम प्रकृति की गोद में छिपे हुए इस अद्‌भुत महल के ध्वंसावशेष को मैसूर के हासान जिले स्थित श्रवण बेला-गोला में देखा था। श्रवण बेला-गोला में करीब साठ फुट ऊँची गोमतेश्वर की प्राचीन मूर्ति है। मैं उसी को देखने गया था। वहीं मैंने काफी दूर पर एकान्त वन प्रदेश में स्थित इस महल का ध्वंसावशेष देखा था। उस समय मैं अचानक ही अकेला घूमते-घूमते काफी देर तक निकल गया था।

मुझे महल और मीनारों के खण्डहरों ने अपनी ओर बरबस खींच लिया था। मैं टूटी-फूटी धूल से भरी सीढ़ियों पर काफी देर तक बैठा रहा था। वहाँ बड़ी शान्ति थीं। ऐसा लगता था, मानों उस खण्डहर में बहुत सारी आत्माएं गहरी नींद में सो रही हो। दीप-शिखा के प्रकाश में उभर आये महल और मीनारों को देखकर सचमुच मैं स्तब्ध रह गया। कैसा विचित्र संयोग था? भूतकाल में जिस महल के खण्डहर को देखा था, उसी के शानदार रूप को वर्तमान में देख रहा था।

सांझ की स्याह कालिमा फैलती जा रही थी। गोधूलि बेला के हल्के प्रकाश में पक्षियों का कलरव बन्द नहीं हुआ था।

चबूतरे पर धीमें कदमों से एक युवती चहलकदमी कर रही थीं। वह जाफरानी रंग का चूड़ीदार पाजामा और उसी रंग का अंगरखा पहने हुए थी। सिर और चेहरे का आधा हिस्सा आसमानी रंग की एवं पतली सी ओढ़नी से ढका हुआ था। छाती और पीठ पर केशों की दो वेणियाँ सांप की तरह झूल रही थीं। वेणी में नरगिस के फूल लगे हुये थे। युवती असाधारण सुन्दरी सलीमा ही थी।

मैंने देखा सलीमा के चेहरे पर चिंता का भाव था। वह अपने दोनों हाथ पीछे की ओर बांधे चबूतरे पर चहल-कदमी कर रही थी। अपने पतले होठों को दाँतों से दबाकर वह अपनी उत्तेजना को दबाये रखने का व्यर्थ प्रयास कर रही थी। कभी-कभी वह चौंककर नीचे काफी दूर तक फैले हुए घने जंगलों की ओर देखने लगती थी, जैसे किसी के आने की प्रतीक्षा में उसका मन चंचल हो रहा था।

थोड़ी देर बाद तेजी से आते हुए घोड़े की टाप सुनाई देने लगी। क्षण भर बाद ही जंगल की सीमा रेखा को भेदकर घोड़े की पीठ पर एक सवार आता हुआ दिखायी पड़ा।

सवार ने सीढ़ियों के नीचे पहुँचकर घोड़े की लगाम खींची। लगाम खींचते ही दूधिया सफेद रंग का वह अरबी पैर उठाकर खड़ा हो गया। सवार ने एक बार ऊपर की ओर देखा, फिर छलांग लगाकर घोड़े की पीठ पर से नीचे कूद गया और जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ चढ़ने लगा।

उस सवार को पहचानने में मुझे कठिनाई नहीं हुई। वह भानु था। वह प्रसन्न मुद्रा में आखिरी सीढ़ी पर पैर रखते हुए खुले हुए दरवाजे की किवाड़ों को थाम कर खड़ा हो गया। उसका पौरूष नवयौवन की आभा से दीप्त था। उस समय मुझे उसकी आकृति, हँसी और खड़े होने की भंगिमा सुन्दर लगी। हीरे और पन्ने से जड़ित उसका मूल्यवान शिरस्त्राण देखने से यह समझा जा सकता था कि वह किसी हिन्दू राजवंश का राजकुमार था।

दरवाजे पर हाथ रखे मन्द-मन्द मुस्कराता खड़ा रहा भानु और कुछ दूर पर चित्र की तरह स्थित खड़ी रही सलीमा। कुछ क्षण बाद प्यार भरे स्वर में भानु ने पुकारा - “सलीमा”।

टीपू सुल्तान का आदमी आया था ?

आहिस्ता इतने जोर से नहीं। सुनो ! वह आज आया था। अब्बाजान ने वचन दिया है। सुलतान के हाथ में मुझे उपहार के रूप में सौंप देने पर उन्हें सारी जायदाद वापस मिल

जायेगी। शान्त स्वर में सलीमा बोली।

यह सुनकर भानु का चेहरा फीका पड़ गया..."तो मुझे क्या करने को कहती हो ?" उसी भाव और उसी मुद्रा में भानु ने प्रश्न किया।

आँखों से आँखे मिलाकर बिना पलक झपकायें ताकती रही सलीमा। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें जैसे गुलाबी शीराजी के नशे से मदिर हो उठी थी। हवा के से स्वर में वह बोली - "तुम हिन्दू ब्राह्मण हो। मैं मुसलमान पठान हूँ। चाँद सितारे और आसमान को गवाह बनाकर हमने जो कसम खायी हैं, वह क्या बेकार चली जायेगी। क्या हमारा वह स्वप्न झूठा हो जायेगा। क्या हमारा जीवन, हमारा यौवन हमारी सारी आशाएं बेकार हो जायेगी ? मिट्टी में मिल जायेंगी। हमेशा के लिए दफन हो जायेंगी ? बोलो - कुछ कहो, कुछ जवाब दो ?"

पत्थर की बुत की तरह खड़ा रहा भानु। निश्चय, निर्विकार —

नहीं ऐसा नहीं होगा। आवेग से कांपते हुए स्वर में सलीमा कहती गयी - "कतरा जो दरिया में मिल जाये तो दरिया हो जाये वह काम अच्छा हैं, जिसका मकसद अच्छा हो - तुम पुरूष हो, मैं नारी हूँ। तुम हमारा सौन्दर्य चाहते हो और हम तुम्हारा ऐश्वर्य यानी शौर्य।"

जरा रूककर एकाएक दबे हुए, मगर कठोर स्वर में सलीमा बोली - "भानु ! तुम मुझे आज और अभी यहाँ से ले चलो। अमावस की रात का मैं इन्तजार नहीं कर सकती।

"अभी ?" - विस्मित हुआ भानु।

"हाँ ! हाँ ! अभी !' और वक्त अब नहीं है। कल ही अब्बाजान मुझे सुल्तान के भरे दरबार में पेश करने वाले है। इसीलिये कहती हूँ —"

स्थिर खड़ा रहा भानु।

सांझ की गोधूलि, रात के घने अंधेरे में बदल चुकी थी। चारो ओर गहरी निस्तब्धता छा गयी थी। भानु की आँखों में संकल्प की चमक एकबारगी उठी। वह अपनी जगह से जरा-सा भी हटे बगैर बोला - "ठीक है यही सही।" उसके मुँह की बात मुँह में ही रह गयी। अचानक हवा में एक सीटी गूंज उठी। एक क्षीण और तेज आवाज हुई। सलीमा चौंक पड़ी, लेकिन वक्त और नहीं था। क्षण भर के अन्दर ही विष से बुझा हुआ एक तीर आकर भानु की पीठ में बिंध गया। उसके मुँह से एक आवाज तक नहीं निकल पायी। उसका दमकता हुआ चेहरा वेदना से विकृत हो गया। उसने अपने बायें हाथ से तीर निकालने की व्यर्थ कोशिश की। दूसरे ही क्षण उसकी निष्प्राण काया सीढ़ियों पर लुढ़क गयी।

वज्राहत-सी खड़ी रह गयी सलीमा। जब उसकी चेतना वापस लौटी, तो एक और पदचाप सुनाई पड़ने लगी। एक हाथ में लम्बा-सा धनुष लिए एक दीर्घकाय व्यक्ति आगे बढ़ आया और सलीमा को देखकर अट्टहास कर उठा, बोला - "क्यों री सलीमा ! तुम्हारे काफिर मेहमान का क्या हाल है ?"

सलीमा की दोनों आँखें नफरत से जल उठी। उसने घृणात्मक और रोष भरे स्वर में कहा - ”मेरे करीब मत आओ तुम।”

”शाबाश बेटी। लड़की के पास उसका बाप आये भी नहीं। क्या कहती हो तुम?” इतना कहकर वह विशालकाय व्यक्ति और करीब आ गया।

तभी एक भयंकर काण्ड हो गया। सलीमा ने लपक कर भानु के निष्प्राण शरीर को अपनी गोद में उठाया और खुले दरवाजे से पहाड़ के नीचे कूद पड़ी। चीत्कार करती हुई भानु की लाश को लिए उसकी देह नीचे चली गयी। उसके साथ झिलमिलाता हुआ दीप एकबारगी बुझ गया और वातावरण में एक खिन्नता भरी खामोशी छा गयी।

अरबी तंत्र-मंत्र के अन्दर जितनी भी अलौकिक सिद्धियाँ हैं, उनमें ”चिरागे हाजरात” का नाम सबसे ऊपर हैं। उसके जरिये कम से कम चार सौ साल पीछे तक की किसी भी घटना के दृश्य को चिराग की रंग-बिरंगी रोशनी के धब्बे पर देखा जा सकता है।

चिरागे हाजरात की जानकारी एक फकीर ने मुझ पर खुश होकर दी थी। उसने कहा था कि यह इल्म अपने आपमें काफी कीमती और खतरनाक है। वक्त-जरुरत पर ही इसका इस्तेमाल करना चाहिए।

अरबी मंत्र की जबरदस्त शक्ति के आकर्षण में फंस कर चौथे आसमान पर रहने वाली रूहें- अतीत की किसी भी घटना के तमाम दृश्यों को हूबहू वर्तमान में लाकर पेश कर दिया करती हैं, मगर इसके लिए काफी मानसिक शक्ति की जरूरत पड़ती है। इसके अलावा हर वक्त जान का खतरा भी बना रहता है। जरा सी गलती होने पर चौथे आसमान की वे रूहें छोड़ती नहीं।

चिरागे हाजरात के जरिये अभी मैंने अतीत की जिन घटनाओं को देखा था, वे घटनाएं एक ऐसी लड़की के पूर्व जन्म से संबंधित थी, जो काफी लम्बे अर्से से ब्रह्म पिशाच की भयंकर बाधा से परेशान और पीड़ित थी। बड़े-बड़े ज्योतिषी और तांत्रिक भी उस बेचारी लड़की को इस ब्रह्म पिशाच के चंगुल से मुक्त न करा सके थे और न तो मुक्त करा सकी थी - दुनिया भर के देवी-देवताओं की तमाम मान-मनौतियाँ, और उनकी पूजा इत्यादि।

ब्रह्म पिशाच के जरिये लड़की को शारीरिक तकलीफ तो पहुँचती ही थी, उस लड़की की शादी में रूकावट पड़ गयी थी। पहले तो शादी कहीं तय नहीं हो पाती थी। अगर तय भी हो जाती तो तुरन्त कट भी जाती थीं। ऐसा एक दो बार नहीं बल्कि दर्जनों बार हुआ था।

उस ब्रहा पिशाच की आत्मा का कहना था कि वह लड़की उसकी प्रेमिका है और वह भी पिछले तीन जन्म की। वह कभी भी अपनी प्रेमिका की शादी किसी गैर आदमी से न होने देगा। बात अपनी जगह पर बिल्कुल ठीक थी। कोई भी प्रेमी चाहे वह इन्सान हो या शैतान- अपनी प्रेमिका को किसी की दुल्हन बनी हुई नहीं देख सकता। भला कौन इसे देख सकता है। कौन अपने सीने पर पत्थर रखकर बर्दाश्त कर सकता है ? कौन इस तरह अपनी तमाम आशाओं और कामनाओं की लाश को जलता हुई देख सकता है।

यह प्रेम कथा उस समय और मार्मिक एवं दयनीय हो गयी, जब मैंने चिरागे हाजरात की गुलाबी रोशनी में उस लड़की के पिछले जन्म की एक और घटना को देखा।

वह लड़की- जिसके जिस्म के भीतर सलीमा की रूह पनाह पा रही थीं, पिछले जन्म में भी एक गरीब ब्राह्मण परिवार में पैदा हुई थीं। उस वक्त उसका नाम था राधा।

अगर मेरी तरह आप सलीमा को देखे होते, तो राधा और सलीमा में कोई फर्क नजर न आता आपको। वही रूप, वही रंग और वही सौन्दर्य। कहीं कोई वैषम्य नहीं। मैं भी अवाक् रह गया था। सलीमा को राधा की शक्ल में देखकर। मुझे तो पहले विश्वास ही नहीं हुआ कि सलीमा की रूह ने जन्म लिया है राधा के रूप में।

पुनर्जन्मवाद को न मानने वाले मुसलमान की रूह क्या पुन: जन्म ले सकती है ? वह भी हिन्दू परिवार में ?

हाँ ! ले सकती है। इस तर्क का जवाब दिया मेरी बुद्धि ने। किसी अदम्य लालसा अथवा कामना को लेकर कोई भी आत्मा यदि मर जाती हैं तो उसकी पूर्ति के लिए निश्चित ही उसे कभी न कभी जन्म लेना पड़ेगा चाहे वह हिन्दू की आत्मा हो या मुसलमान की रूह।

दीप-शिखा की जलती हुई लौ एक बार कसमसाई और फिर एकबारगी फैल गयी। उसके फैले हुए हल्के नीले प्रकाश में मैंने राधा को पीपल के छांव तले बैठी हुई देखा। उसके हाथ में एक पत्र था - जिसे वह बार-बार पढ़ती थी और रख देती थी। पढ़ती थी और रख देती थी। लगता था कि उस पत्र ने राधा के कलेजे को झकझोर कर रख दिया था। वह पत्र उसके प्रेमी गोपी का था। भानु की आत्मा ने ही जन्म लिया था गोपी के रूप में। मगर न राधा ही जानती थी कि गोपी उसके पूर्व जन्म का प्रेमी भानु है न गोपी ही इस रहस्य को जानता था कि उसकी राधा उसके पूर्व जन्म की सलीमा है। कितनी विचित्र लीला थी प्रकृति के विधान की।

वह बेचैन होकर पत्र पढ़ने लगी, "बड़ी कठिनता से तुम्हारा पता पा सका हूँ, परन्तु फिर भी विश्वास नहीं होता कि यह पत्र तुमको मिलेगा। एक बार तुमसे मिलना चाहता हूँ। बहुत सारी बातें हैं। सात-साल की लम्बी कहानी में बहुत से उतार-चढ़ाव आये हैं। आज मैं एकदम एकाकी हूँ। आश्रय का भूखा और स्नेह का प्यासा। दारूण कष्टों से घिरा, अंधेरे में डूबा हुआ हूँ। पत्र मिले तो फौरन जवाब देना। इतनी दया अवश्य करना। मैं तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा बेसब्री से करूँगा।"

सारी रात उस पत्र के शब्द राधा के मन के आकाश पर सावन-भादो की घटना की तरह छाये रहे। दूसरे दिन कांपते हाथों से उसने लिखा, "तुम्हारा पत्र मिल गया है, मैं बनारस में ही हूँ। स्कूल में अध्यापिका हूँ पर तुमको इतने सालों के बाद मेरा पता जानने की जरूरत क्यों पड़ गयीं? कैसे याद आयी मेरी तुम्हें ? यहाँ आना चाहो तो आओ। मेरे घर का द्वार तुम्हारे लिए सदा खुला है। तुम्हारे कष्ट निवारण के लिए जो कुछ हो सकेगा करूँगी। सुनू भी तो क्या कष्ट है तुम्हे ? अपने को एकाकी क्यों लिखा है? यह विशेषण तो भगवान ने मुझे दिया है। पत्र लिखना कब आ रहे हो ? प्रतीक्षा करूंगी।"

राधा प्रतीक्षा करती रही। फिर एक पत्र आया। गोपी ने लिखा था - "तुम्हारा पत्र पाकर बहुत खुश हुआ। आधा कष्ट तो तुम्हारी लिखावट देखकर ही समाप्त हो गया। आधा तुम्हें देखकर समाप्त हो जायेगा। इतने सालों के बाद तुम्हारी सुधि आयी है, यह तुमने गलत लिखा है। ईश्वर साक्षी है, एक दिन भी तुमको भुला नहीं सका हूँ। परिस्थितियों ने मुझे तुमसे अलग कर दिया यह सही है पर हृदय में तुम्हें मैं कभी अलग नहीं कर सका हूँ। विश्वास करो राधा। एक पल के लिए भी तुम्हें मैं बिसार नहीं पाया हूँ। तुमको भूल जाना क्या मेरे लिए सम्भव हैं ? तुम्ही मेरी जिन्दगी थी और तुम्ही मेरी जिन्दगी रहोगी। इस धारणा को कोई मिटा नहीं सकता। तुम मुझे विश्वासघाती समझो या अधम, पर मेरे लिए जो तुम सात साल पहले थी, वही अब भी हो। जब वे दारूण दिन आये थे, तुम्ही अचानक मुझसे छिप गयी थी। मैंने तुम्हे कितना खोजा, पर तुम्हें फिर न देख सका। विवश होकर मैंने सिर पर कफन रख लिया। फिर क्या-क्या हुआ ? क्या-क्या सहा मैंने - तुम सुनोगी ? इन सालों में तुम पर क्या बीती, कुछ नहीं जान पाया। तुमने भी काफी व्यथा सही होगी यही लगता है। मेरा विश्वास है कि यही हुआ भी होगा, पर अब शायद हमारे डूबे हुए नक्षत्र फिर से उभर आये हैं। शायद हमारे कष्टों का अन्त हो जाये। बहुत जल्दी तुमसे मिलने आ रहा हूँ। तुम्हारे पत्रों के सहारे तब तक मन को सन्तोष दूंगा। पत्र तो दोगी न ?"

राधा ने अथाह अन्त सागर में तैरते हुए लिखा - "तुम्हारा पत्र पाकर आँसू नहीं रोक पा रही हूँ। कितना रूलाया है तुमने मुझे? मैं तुमसे बिछुड़ कर सालों रोती रही। फिर जैसे स्रोत ही सूख गया। आँखें सूनी रह गयी। सब सूना हो गया। सात सालों के बाद आज अचानक फिर उस सूखी नदी में बाढ़ आ गयी है। तुम क्या मुझे जिन्दगी भर रुलाते ही रहोगे? "विश्वासघाती" मैंने तुमको कभी नहीं कहा। "अधम" तुम कैसे हो सकते हो? तुमने सच ही लिखा है - परिस्थितियाँ आदमी को विवश कर देती है। इसे मैं भी मानती हूँ। छुट्टी कब तक मंजूर होगी? कब आओगे- लिखना।

उधर से पत्र फिर नहीं आया। "तार" आया, "सात तारीख की शाम को हवाई जहाज से आ रहा हूँ —"

राधा ने गुसलखाने में घुसकर जल्दी-जल्दी कपड़े उतारे। अपना ही शरीर देखने लगी- सामने शीशे में।

यह कोमल काया आज तक अछूती रही। यह नैवेद्य का प्रसून आज तक किसी देवता के चरणों में अर्पित न हुआ। ये बांहलताएं, ये सुकुमार अधर, ये स्निग्ध कपोल, ये...पूजा का फूल थाली में रखा-रखा कुम्हलाता रहा। रूपश्री मन्द पड़ गयी। उसने जाना ही नहीं। उसने कभी ध्यान ही नहीं दिया। आज लग रहा है, कालरथ के पहिये के नीचे कोई कली जैसे कुचल गयी।

राधा ने शीशे से नजर हटा ली। वह पानी की धार के नीचे बैठ गयीं।

राधा ऐरोड्रोम पर एक घंटा पहले ही पहुँच गयी। उसे एक एक पल भारी लग रहा था। अचानक वेटिंग रूम में खलबली मच गयीं। मालूम हुआ कि इण्डियन एयर लाइन्स के प्लेन

का एक्सीडेन्ट हो गया। उसी प्लेन से तो आ रहा था गोपी। राधा की आँखों के आमने एकबारगी अंधेरा छा गया। उसका तन-मन जड़ हो गया।

प्लेन में सफर करने वाले यात्रियों में कोई बचा नहीं था। गोपी भी नहीं बचा। दूसरे दिन उसकी अधजली लाश राधा को सौंप दी गयी।

फिर अन्तिम दृश्य मेरे सामने उभरा। बड़ा ही करूण और हृदय विदारक दृश्य था, जिसे देखकर मैं अपने आँसुओं को रोक न सका।

मैंने देखा- गोपी की अधजली लाश को सीने से लिपटाकर बेसुध पड़ी थी, राधा। उसके बाल बिखरे हुए थे।

मगर यह क्या ?

जब लोगों ने लाश से राधा को अलग करने की कोशिश की, तो देखा गया कि राधा भी गोपी की तरह इस संसार को हमेशा-हमेशा के लिए छोड़ कर चली गयी हैं।

कितनी भारी विडम्बना थी। कितना क्रूर अन्याय किया प्रकृति ने राधा के जीवन के साथ।

पिछले जन्म में दोनों न मिल सके थे। इस जन्म में भी दोनों एक न हो सके। गोपी की लाश के साथ ही राधा की लाश चिता पर रखी गयी और चिता धूं-धूंकर जलने लगी, तो उसकी लाल पीली लपटों के बीच मैंने एक अपूर्व दृश्य देखा- जो आश्चर्यजनक और कौतूहलपूर्ण था।

मैंने देखा- गोपी की आँखों में झांकती हुई राधा कह रही थीं, ”फिर छोड़कर मुझे चले गये न तुम?...मगर मैं तुम्हारा साथ नहीं छोड़ूँगी। तुम जहाँ रहोगे वहीं मैं भी रहूँगी। जहाँ जाओगे तुम वहाँ मैं भी जाऊँगी। मेरा तुम्हारा जनम-जनम का साथ है। हम दोनों को मौत भी अलग नहीं कर सकती।”

“हाँ ! राधा ! कोई भी शक्ति हमें अलग नहीं कर सकती।” थोड़ा रूककर आगे बोला गोपी - “मगर कभी परिस्थितियों ने हम दोनों को फिर अलग कर दिया तो क्या होगा?”

गोपी की छाती से अपना सिर टिकाकर राधा ने हौले से कहा - “होगा क्या ? मैं तुम्हारा इन्तजार करूँगी और तुम भी मेरा इन्तजार करना। करोगे न इन्तजार?

”नहीं राधा ऐसा कैसे हो सकता हैं ? मैं भला कैसे भूल सकता हूँ तुमको ? कैसे अपनी आत्मा की गहरायी से तुम्हारी छवि निकाल सकता हूँ ?”

चिता की लपटें एक बार हवा में लहरायी और फिर धीरे-धीरे कम होती गयी। अन्त में उसी के साथ खत्म हो गया अतीत का वह मार्मिक प्रसंग भी। मेरा मन विषण्ण हो उठा।

अब भानु और सलीमा के तीसरे जन्म की पीड़ा भरी और आँसुओं में डूबी हुई कथा थी।

सलीमा की आत्मा ने राधा की मृत्यु के बाद काशीपुर के एक ब्राह्मण परिवार में जन्म ले

लिया था, जिसका नाम था सरोज शर्मा। मगर भानु की आत्मा गोपी के शरीर को छोड़ने के बाद जन्म न ले सकी। दुर्घटना में अकाल मृत्यु हुई थी, इसलिये उसको मनुष्य का शरीर मिलने के बजाय ब्रह्म पिशाच की योनि मिली थी।

मानव योनि में जितनी आयु शेष रहती हैं, उसकी आठ गुनी आयु भोगनी पड़ती हैं ब्रह्म पिशाच की योनि में। मुझे इस बात का घोर आश्चर्य हुआ कि ब्रह्म पिशाच की योनि में चले जाने के बावजूद भी गोपी अपनी राधा को न भूल सका था और न उसका साथ ही छोड़ सका था।

गोपी की आत्मा सूक्ष्म शरीर में थी और राधा की आत्मा स्थूल शरीर में सरोज के रूप में। पर इससे कोई फर्क नहीं पड़ा। सरोज के जन्म लेते ही गोपी का सूक्ष्म शरीरधारी ब्रहा पिशाच उसके साथ हर समय रहने लगा। भला वह क्या जनता था कि उसका इस प्रकार संबंध बनाये रखने के फलस्वरूप सरोज को कितनी शारीरिक और मानसिक वेदना सहनी पड़ रही हैं। कितनी बाधाओं का सामना करना पड़ रहा हैं ? पहले इसे बीमारी समझी गयीं। बीमारी समझकर काफी इलाज कराया गया, मगर लाभ कुछ होता भी कैसे ? कोई रोग होता तब तो दवा काम करती। वहाँ तो बाधा थी और वह भी ब्रह्म बाधा। उसे कोई न समझ सका और न कोई बतला ही सका। सरोज का जीवन अभिशाप बन गया। वह अपने आप में घुटती रही, बर्बाद होती रही। उसे क्या मालूम था कि उसका जन्म-जन्म का प्रेमी ही उसके लिए अभिशाप बन गया हैं। उसी के कारण उसका भविष्य, दुर्भाग्य के अन्धकार में डूब चुका है और जीवन के सारे सपने टूटकर बिखर चुके हैं।

”कभी-कभी सरोज का चेहरा तमतमा उठता। आँखे भी लाल हो जाती और उस स्थिति में अपने आप बड़बड़ाने लग जाती। उसके सामने कोई उसकी शादी की चर्चा करता, तो उसका रूप और अधिक भयंकर हो उठता था। वह चीख-चीख कर कहने लगती -

“वह शादी कभी नहीं करेगी।”

सरोज का कमरा अलग था — वह हमेशा अपने कमरे को साफ और सजाकर रखती थी। किसी को अपने कमरे में आने न देती। जब कोई चला भी जाता, तो उसे कमरे के वातावरण में तरह-तरह के फूलों और इत्रों की सुगन्ध बिखरी हुई मिलती थी। परिवार के सभी लोग हैरान थे कि इन सब का कारण क्या हैं ? सरोज अपने कमरे में किसी को क्यों नहीं जाने देती ? इतनी ज्यादा सफाई क्यों रखती है और कमरे में इतनी सुगन्ध कहाँ से आती है ?

हर रात की तरह उस रात भी वातावरण में गहरी खामोशी छायी हुई थी। शायद तीसरा प्रहर था। कमरे का बन्द दरवाजा अपने आप फटाक से खुल गया और उसी के साथ हवा का एक सर्द झोंका आकर कमरे में बिखर गया। गहरी नींद में सो रही सरोज एकबारगी चौककर उठ बैठी। उसने अंधेरे में ही देखा कि उसके बिस्तर के करीब एक लम्बी-चौड़ी काठी का युवक उसकी ओर निहारते हुए मुस्करा रहा था। युवक हद से ज्यादा सुन्दर और आकर्षक था। उसके जिस्म का रंग बर्फ की तरह सफेद था। वह चूड़ीदार पायजामा और

केसरिया रंग का चुस्त कुर्ता पहने था। उसकी आँखें बड़ी-बड़ी और स्वप्निल थीं। काले घुंघराले बाल कन्धे तक झूल रहे थे। कानों में हीरे के बुन्दे थे, उंगलियों में नीलम, पुखराज और माणिक की अंगूठियाँ थीं। गले में मोतियों की माला भी पड़ी थी।

उस स्याह गहरी काली रात में, इस तरह अपने सामने एक अपरिचित युवक को देखकर सरोज चीखना चाही, मगर चीख न सकी और न तो किसी को पुकार कर बुला ही सकी।

आहिस्ते-आहिस्ते चलकर वह युवक, सरोज के करीब पहुँचा और धीरे से बोला - ”सलीमा पहचाना नहीं मैं भानु हूँ। तुम्हारा भानु...।”

सरोज संभल पाती इसके पहले ही उस युवक ने लपककर उसे अपने आगोश में ले लिया और फिर...। दूसरे दिन सवेरे सरोज ने रात की सारी घटनायें घर वालों को बतलायी तो किसी को उन पर विश्वास नहीं हुआ।

घटना की सत्यता जानने के लिए सरोज के छोटे भाई सुरेश ने उस रात उसके कमरे में सोने का निश्चय किया।

समय धीरे-धीरे गुजरने लगा और उसी के साथ रात भी गहराती गयी, मगर सुरेश की आँखों में नींद नहीं थीं। वह तो वास्तविकता को जानने के लिये व्याकुल था। तीसरे पहर थोड़ी सी झपकी लग गयी उसे और उसी अवस्था में सुरेश को ऐसा लगा जैसे कोई अदृश्य व्यक्ति उसकी छाती पर चढ़कर उसका गला दबा रहा है। वह पीड़ा से कराह उठा और उस अदृश्य व्यक्ति के पंजे से अपने को मुक्त करने की कोशिश करने लगा, पर उसे सफलता नहीं मिली। उसने चीखना भी चाहा, मगर अवरूद्ध कण्ठ से गों-गों के सिवा और कोई आवाज न निकल सकी। भय, पीड़ा और आतंक से उसका बुरा हाल हो रहा था। कौन था वह ? किसकी फौलाद जैसी उगलियाँ उसका गला दबा रही थीं? जब उसने ये सारी बातें घरवालों को बतलायी तो सभी लोगों का मन भय से, आतंक और संशय के मिले-जुले भाव से भर गया। सरोज पर किसी आत्मा का साया है, यह समझते देर न लगी। फिर उसी दिन से पूजा-पाठ, व्रत-उपवास और तंत्र-मंत्र झांड़-फूक का सिलसिला चल पड़ा। दिन के बाद महीने और महीने के बाद साल पर साल गुजरते गये। पैसा पानी की तरह बहता रहा। बड़े-बड़े, तांत्रिक-मांत्रिक, ओझा और मौलवी अपनी-अपनी शक्तियों की आजमाइश करते रहे, मगर सभी असफल रहे न कोई साया को हटा सका और न किसी प्रकार का लाभ ही पहुँचा सका।

उन्हीं दिनों सुरेश के हाथ नूतन कहानियाँ का कोई अंक लगा जिसमें प्रकाशित मेरी रचना को पढ़कर सुरेश की आँखों में चमक आ गयी और आशा का बुझा हुआ दीप फिर से जल उठा। वह अपने आपको फिर रोक न सका। दूसरे ही दिन आ पहुँचा मेरे यहाँ। वह सरोज को भी साथ ले आया था।

जब मैंने सुरेश को यह बतलाया कि अन्य योगियों और तांत्रिकों की तरह रोग-व्याधि का उपचार करना मेरा काम नहीं है, तो उसकी आँखों की चमक एकबारगी बुझ गयी। खिला हुआ चेहरा उदास हो गया। कुछ देर तक तो वह शून्य में निहारता रहा, फिर आहिस्ते से

बोला - “मगर शर्मा जी, मैं बड़ी आशा लेकर आया हूँ, आपके यहाँ। यदि मुझे निराश कर देंगे और मेरी सहायता नहीं करेंगे तो तत्र-मंत्र पर से मेरा विश्वास उठ जायेगा। मैं यहीं समझूंगा कि सब धोखा है, फरेब है। आडम्बर और पाखण्ड है।”

इतना कहने के बाद वह सिसक पड़ा। सरोज की भी स्थिति करूणा जनक हो उठी थीं।

मेरा कमरा मंत्र-पूत है। इसलिये कमरे के वातावरण में न समय का प्रभाव है और न किसी प्रकार की सूक्ष्मधारी शरीर आत्माएं ही प्रवेश कर पाती है। जब मैं सरोज के बारे में सोच रहा था, तभी मुझे ऐसा लगा कि कोई अदृश्य शक्ति सरोज के चारों ओर चक्कर काट रही है और उसकी आत्मा को प्रभावित भी कर रही है।

निश्चय ही वह ब्रहा पिशाच था। यह समझते देर न लगी मुझे। थोड़ी देर बाद सरोज चेतना शून्य हो गयी और उसका सिर एक ओर लटक गया। शरीर भी ठंडा हो गया। इस स्थिति को देखकर मैं अपने को रोक न सका और न चाहते हुए भी मुझे सहायता करनी पड़ गयी। जैसा कि बतला चुका हूँ, जब मैंने ”चिरागे हाजरात” में ब्रहा पिशाच और सरोज के पिछले जन्मों के तमाम घटनाओं और उनसे सबंधित करूण दृश्यों को देखा, तो एकबारगी मेरा मन द्रवित हो उठा।

मेरे एक तांत्रिक मित्र हैं। नाम है चारूचन्द्र बनर्जी। बड़े पहुँचे हुए सिद्ध तांत्रिक है। मैंने उन्हें सारी कहानी सुनायी और अन्त में ब्रहा पिशाच का आवाहन करने का आग्रह किया। इसके लिए उनको एक तांत्रिक अनुष्ठान करना पड़ा और उसके बाद जब उन्होंने आवाहन किया, तो एक विषम स्थिति उत्पन्न हो गयी। ब्रहा पिशाच ने बतलाया कि दुर्घटना में मृत्यु होने के कारण उसे ब्रह्म पिशाच की योनि मिली है। स्थूल शरीर और भौतिक जीवन में उसकी जितनी आयु शेष थी, उसकी आठ गुनी आयु उस योनि में भोगनी पड़ेगी। तब तक उसका सम्बन्ध सरोज से बना रहेगा। कोई भी किसी हालत में उसे छुड़ा नहीं सकता। बात अपनी जगह पर बिल्कुल सत्य थीं। प्रकृति के नियम के अनुसार ब्रहा पिशाच की बाधा तबतक बनी रहती हैं, जबतक ब्रह्म पिशाच की आयु तामसिक लोक में रहती हैं।

चारू बाबू का चेहरा गम्भीर हो गया। थोड़ी देर बाद कुछ सोचते हुए मुझसे बोले - “इस स्थिति में किसी भी तांत्रिक क्रिया के द्वारा सरोज को ब्रहा पिशाच के चंगुल से मुक्त नहीं कराया जा सकता। बस इसके लिए एक ही रास्ता है और वह यह कि ब्रहा पिशाच को तामसिक योनि से किसी भी प्रकार मुक्त कराकर सूक्ष्म शरीर में भेज दिया जाये। अभी उसे शेष आयु भोगनी है। उसे इस दशा में मानव जन्म तो नहीं मिल सकता, लेकिन जो आयु शेष है उसे वह सूक्ष्म शरीर में भोगेगा, उसके बाद ही वह कहीं जन्म ले सकेगा।

”इससे लाभ क्या होगा?” - मैंने प्रश्न जिया।

”लाभ यह होगा कि ब्रह्म पिशाच का संबंध तामसिक शरीर के कारण सरोज से है और जब वह उसे छोड़कर सूक्ष्म शरीर में चला जायेगा, तो अपने आप संबंध टूट जायेगा।”

”ठीक है।” मैंने स्वीकारोक्ति भरे स्वर में सिर हिलते हुए कहा - ”आपको जो उचित प्रतीत

हो करे।”

काश ! मुझे इस बात की जरा सी भी भनक मिली होती कि मैं चारू बाबू को यह आज्ञा देकर अपने सिर पर बहुत बड़ा झंझट मोल ले रहा हूँ तो कदापि हाँ में हाँ न मिलाता। मगर जो होना था - वह हो गया। तीन जन्मों से चली आ रही प्रेम कहानी खत्म हो गयी। ब्रह्म पिशाच तामसिक योनि से हमेशा के लिए मुक्त होकर सूक्ष्म शरीर में बाकी आयु भोगने के लिए चला गया और सरोज भी उसके चंगुल से मुक्त हो गयी।

आज सरोज अपने पारिवारिक जीवन में खुश है।

अध्याय ६
पिशाच सिद्धि

अपनी लम्बी आयु के दौरान मैंने सृष्टि के गूढ़ रहस्यों का पता लगाने के लिए कितनी ही बार खतरा उठाया है। कितनी ही असम्भव और अलौकिक घटनाओं से मैं अभिभूत और चमत्कृत हुआ हूँ । लेकिन यहाँ मैं पाठकों में सस्ते कौतूहल की भावना जगाने के लिए यूँ ही किसी अद्‌भुत सनसनीखेज घटना का वर्णन करने नहीं जा रहा हूँ। इस समय मैं जो सत्य कथा लिख रहा हूँ, मेरे जीवन की सबसे विलक्षण घटना है और जिसकी विलक्षण अनुभूति संभवतः अन्तिम सांस तक मेरे साथ जीवित रहेगी ।

लगभग पच्चीस वर्ष पहले की बात है उन दिनों मैं तंत्र-मंत्र पर गहन शोधकार्य करने में जुटा हुआ था । तंत्र-मंत्र सम्बन्धी एक से एक दुर्लभ प्राचीन पांडुलिपियों तथा मंत्रों की खोज और संकलन के साथ-साथ उच्चकोटि के सिद्ध महात्माओं और समर्थ तंत्र-साधकों से मिलने की भी पूरी चेष्टा किया करता था । इस युग में योग और तंत्र की साधना और विलक्षण शक्तियों पर भी शायद किसी को विश्वास आता हो, लेकिन मैं पूरी निष्ठा के साथ यही मानता था कि जीवन और जगत के गूढ़तम रहस्यों से परिचित होने का एकमात्र मार्ग साधना ही हैं।

इस उद्देश्य के पीछे मैं पागल था और तो और गूढ़ ज्ञान प्राप्त करने के लिए मैंने विश्व प्रसिद्ध तांत्रिकों के रहस्यमय देश तिब्बत की यात्रा भी की थीं । दुर्गम हिम-प्रदेश की मरणान्तक पीड़ा देने वाली यात्रा का मुझे फल भी मिला, लेकिन ज्ञान ही ज्ञान और मेरा उद्देश्य था तंत्र विद्याओं में निहित सत्य को पूरी गहराई के साथ स्वयं अनुभव करना ।

मैं भटकता रहा। लालसा बढ़ती ही रही । नशा गहरा होता गया । उन्हीं दिनों संयोग से मेरी भेंट एक महान तंत्र साधक श्री भवतारण तर्क पंचानन से हुई । वह वाराणसी में रहते थे - श्मशान काली के घोर उपासक और कितनी ही सिद्धियों से सम्पन्न । एक दिन चर्चा चल ही रही थी कि उन्होंने असम के दुर्गम पहाड़ी इलाके में ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर रहने वाली एक तांत्रिक सन्यासिनी का जिक्र किया । उन्होंने बताया कि सन्यासिनी वैसे तो पगली के वेश में रहती है, लेकिन सचमुच अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त कर चुकी है वह ।

उन्होंने मुझे सावधान किया- पहले तो दुर्गम प्रदेश में पहुँचकर उसे खोजना ही मुश्किल है, दूसरे इतना श्रम करना इसलिए भी व्यर्थ है, क्योंकि वह किसी को अपने पास फटकने तक नहीं देती ।

लेकिन यह सब सुनकर भी मैं क्या समझता ? मैं तो अपने ही धुन में मस्त था । स्वप्न साकार होने की आशा ने सारी बाधाओं को लांघ लिया । कारण चाहे कुछ भी रहा हो । दुर्गम पथ की कठिनाइयाँ मुझे वैसी विकट नहीं लगी । एक दिन मैंने अपने आपको तर्क पंचानन महाशय द्वारा बताए गए स्थान पर खड़ा पाया । जिस स्थान पर श्मशान था - वहाँ ब्रह्मपुत्र का घाट बड़ा ही चौड़ा था । समुद्र की भांति उत्तुंग तरंगों से आन्दोलित

महानद की प्रचंड धारा हाहाकार करती हुई मानों समूचे विश्व को निगल जाने के लिए पागल हो रही थी। घना जंगली इलाका। घाटियों और पहाड़ियों का लम्बा सिलसिला। जब मैं पहुँचा तब संध्या अंधेरे दानव की विराट काया के नीचे तड़फड़ा कर अवश हो चुकी थीं। मौत का सा सन्नाटा छाया था। धीरे-धीरे पूरब के आकाश पर घटाटोप बादल उमड़ने लगे और भीषण निःश्वास जैसी हवा हाहाकार करती हुई झाड़ियों और झुरमुटों को झिझोड़ने लगी।

श्मशान पाकड़, पीपल आदि घने छतनार पेड़ों से घिरा हुआ था। उन्हीं के बीच था कालभैरव का प्राचीन जीर्ण-शीर्ण मन्दिर — कितनी ही चिताओं पर अधजली लाशें सुलग रही थीं। एक और चिता अब भी धूं-धूंकर जल रही थी।

श्मशान की उस निस्तब्ध विभीषिका से सिर पटकती हवा का भयावना चीत्कार मुझे क्लान्त, अवश करके अवसाद से भरे दे रहा था। सहसा आकाश में एक कोने से दूसरे कोने तक भीषण कौंध लपलपा उठी। इसके साथ ही तूफानी विलाप सा करती हुई भीषण वर्षा होने लगी। मैं सिर छिपाने के लिए मन्दिर की ओर भागा। धरती रह-रहकर बिजली की प्रचंड कड़कड़ाहट से कांप-कांप उठती। एक बार फिर बिजली कौंधी और मन्दिर की टूटी-फूटी सीढ़ी पर फटी पुरानी गंदी सी कथरी लपेटे पड़ी एक विचित्र काया दिखाई पड़ी-पथराया हुआ सपाट चेहरा, भावशून्य आँखें, गन्दा चीकट जटा जूट, नंग-धड़ंग देह। मैं पथराया सा खड़ा रहा। मुझे देखते ही वह सहसा क्रोध में चीख पड़ी - "भाग, भाग यहाँ से। तू यहाँ कैसे चला आया?"

पहचानते देर नहीं लगी। मैं हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाया, "माँ मुझ पर दया करो। मुझे अपना शिष्य बना लो माँ —"

पगली चीख-चीख कर अन्धाधुंध गालियाँ बकती रही, "भाग यहाँ से...फिर कभी आया...तो लौटकर नहीं जाने पाएगा...भाग...भाग।"

मन मारकर मैं लौट पड़ा। श्मशान से कुछ ही दूर पर एक छोटा सा गांव था। मुश्किल से पन्द्रह-बीस झोपड़े। वहीं शरण मिली। गांव के चौधरी को जब यह मालूम हुआ कि मैं उस पगली से मिलने के लिए ही वाराणसी से इतनी दूर आया हूँ तो आश्चर्य और आशंका से उसकी आँखें कपाल पर चढ़ गई। बोला, "उसके पास फिर मत जाना बाबू। बहुत बड़ी तांत्रिक है। इसके चक्कर में पड़ने का मतलब है सर्वनाश।"

चौधरी से ही उस पगली की कथा मालूम हुई। वह बंगाल के किसी स्टेट की राजकुमारी थी। अनिन्द्य सुन्दरी, सहसा किसी सिद्ध कापालिक की आँखों में गड़ गई। कापालिक राजकुमारी पर आसक्त हो गया और एक दिन उसे वश में करके अपने साथ उड़ा ले गया। जाने दोनों आकाश में जा छिपे थे कि पाताल में कुछ पता नहीं। कई वर्षो बाद सुनाई पड़ा कि राजकुमारी हिमालय के किसी दूरवर्ती तांत्रिक मठ में उसी कापालिक के साथ भैरवी के रूप में रहती है। एक दिन सहसा ही राजकुमारी पगली के भेष में इस श्मशान में घूमती दिखाई पड़ी। तब से यहीं पर है। न किसी से बोलती है। न कुछ मांगती जांचती हैं। दिन

रात बस, श्मशान में पड़ी रहती है।

लेकिन मैं चौधरी की सद्भावना से प्रभावित होते हुए भी उसकी बात कैसे मान सकता था दूसरे ही दिन फिर पगली से मिलने पहुँच गया। इस बार पहले से भी क्रूर स्वागत मिला और तो और उसने पीठ पर कस कर ऐसी लात जमा दी कि मैं बिलबिला उठा। चुपचाप लौट आया। करता भी क्या ? नींद नहीं आ रही थीं। काफी रात तक सोच में डूबा रहा। आखिर क्या करूँ ? लौटने की तो बात नहीं उठती...

सहसा देखा, वह मेरे सिरहाने खड़ी है, लेकिन पगली के वेश में नहीं, एक अपरूपा रमणी के वेश में। मन्द मुस्कान के साथ रतनारी आँखों से मेरी ओर देखती हुई कह रही है, "ज्यादा जोर से लगी क्या रे ? कल फिर आना।"

सपने से मन में आशा का संचार हुआ। सवेरा होते ही दौड़ा-दौड़ा श्मशान जा पहुँचा। लेकिन बाप रे ! कैसा भयावना रूप था। पगली मुझे देखते ही क्रोध से चीख पड़ी और एक चिता से जलती हुई लकड़ी खीचकर मुझ पर झपटी।

लेकिन मैं भागा नहीं अडिग खड़ा रहा। मैं भी करो या मरो पर तुल गया था। बोला, "जब भागना ही था तो सपने में बुलाने क्यों आई थीं ? तुमने आने को कहा, तभी तो मैं आया।"

वह जोर से खिलखिला कर हंसी और मुड़कर पास ही पड़े किसी मरे हुए जंगली पक्षी को उठा लिया। घिनौने ढंग से नोच-नोचकर उसका मांस चबाने लगी। अंगुली के आमने पत्थर की ओर इशारा कर दिया।

जुगुप्सा से मेरा रोम-रोम सिहर रहा था, लेकिन विवश होकर बैठना ही पड़ा। चबर-चबर सारा मुर्दा मांस उदरस्थ करने के बाद तृप्ति भरी डकार लेकर वह बोली, "बार-बार आकर मुझे क्यों तंग कर रहे हो ? बोल, तेरे किये क्या होगा ? मैं जानती हूँ तू किस लिये यहाँ आया हैं। कुछ भी नहीं होगा। ब्राह्मण है। संसार में अभी तेरा भाग बागी है।..."

सहसा ही उसने फिर रौद्र रूप धारण कर लिया और अश्लील गालियाँ बकती हुई चीख पड़ी, "भाग-भाग यहाँ से जानवर कहीं का। मसान घाट पर मरने आता है। दूर हो ! चला जा मेरी आँखों के सामने से।"

मैं क्रोध से जल उठा। लेकिन अपने स्थान पर अडिग बैठा रहा। मुझे एक विचित्र सी अनुभूति हो रही थी कि वह ऊपर से मुझे भगाने के लिये भयावना स्वांग भले ही भरती हो, भीतर ही भीतर किसी अज्ञात शक्ति से मुझे अपनी ओर खींचती जा रही है।

उस रात फिर वह सपने में आई- एक अनिंद्य सुन्दरी नवयौवना राजकुमारी के रूप में। मन्द हँसी के साथ बोली, "रूठ गया ? छिः भले मानस गुस्सा नहीं करते। मैं तो कितने वर्षो से तेरी प्रतीक्षा कर रही हूँ। तू आ गया तो शान्ति मिली। कल आओगे न? जरूर आना।"

सपने का क्या भरोसा ? लेकिन फिर भी गया। वही बात निकली। देखते ही फिर वही पुराना राग। वह गुर्राती हुई झपटी, "देखती हूँ बड़ा दुःसाहसी है तू। ऐसे नहीं मानेगा।

ठहर बताती हूँ —”

मैं तो जान हथेली पर रखकर आया ही था, तो भी उसका रूप इतना भयावना होता था कि धीरज टूटने लगता। किसी तरह साहस बांधकर मैं कहा, ”आखिर तुम इतना नाच क्यों नचा रही हो? आता हूँ तो अपमानित करके भगा देती हो। फिर सपने में आकर दुलार के साथ आने के लिए भी कहती हो। तुम्हारे किस रूप को सच्चा मानूँ?”

सहसा अद्‌भुत सा परिवर्तन दीख पड़ा। उसके मुख मंडल पर कौतुकभरी मधुर हँसी छलक आयी। पागलपन अथवा आक्रोश का कोई चिन्ह तक शेष न था। अब बड़ी सरल और मीठी लग रही थी वह। बड़े कोमल किन्तु चुनौती भरे स्वर में बोली, ”कर सकेगा साधना ? है साहस ?”

”है ! तुम जो भी कहोगी करूँगा।”

”अच्छा तो सुन, आज रात को ही आकर तू मेरी हत्या कर दे। गला घोंटकर मारना होगा। फिर मेरे शव पर ही बैठकर साधना करनी पड़ेगी। बोल करेगा ?”

मैं जड़वत खड़ा रहा। इतनी भयावती शर्त की तो कल्पना भी नहीं की थी। धीमें से कहा, ”सब कुछ कर सकता हूँ, लेकिन किसी की हत्या मुझसे नहीं की जाएगी —”

सुनते ही पगली की जबान बिल्कुल बेलगाम हो उठी। एक से एक घिनौनी और अश्लील गालियों की बौछार।

मैं भी जैसे अभ्यस्त हो उठा था। चुप बैठा सुनता रहा। गालियाँ देते-देते जब वह थक गई तो बोली, ”फिर यहाँ मरने क्यों आया था। भाग जा। ”

मैं लौट आया।

लेकिन मैंने भी ठान लिया था कि जब तक इस सन्यासिनी से कुछ प्राप्त नहीं कर लूँगा, लौटूँगा नहीं। कई दिन तक यही क्रम चलता रहा- सपनों में आकर उसका बुलाना, मेरा फिर मिलने जाना और अपमानित होकर लौट आना। आखिर जीत मेरी रही। एक दिन उसका पाषाण हृदय भी पसीज ही गया।

उस रोज संध्या बेला में पगली पीपल के पेड़ के नीचे शान्त प्रसन्न मुद्रा में बैठी थी। मैं पहुँचा तो गालियाँ नहीं दी, निकट ही बैठाकर मधुर स्वर में बातें करने लगी। आज पहली बार मुझे पता चला कि मैं उस दिन उसकी हत्या करके शव-साधना करने को तैयार नहीं हुआ था, इससे वह बड़ी प्रसन्न थी। उसने बताया कि इस प्रकार की तंत्र साधनाएं बड़ी निम्न कोटि की होती हैं। इनसे मनुष्य को कुछ तामसिक शक्तियाँ भले ही मिल जाती हों, और कुछ नहीं मिल पाता। मैंने विभिन्न शक्तियों के बारे में जिज्ञासा प्रकट की, तब सन्यासिनी ने मुझे विस्तार से उनका विलक्षण परिचय दिया।

हमारे इस लोक से अलग एक और लोक है - वासना लोक। वह इस संसार से परे होते हुए भी दूध-पानी की तरह इसी में घुला-मिला है। वासना लोक में तीन तरह के जीव रहते हैं।

एक तो वे जो न कभी मनुष्य देहधारी थे न कभी भविष्य में होंगे। इन्हीं को बेताल, यक्ष, गन्धर्व, पिशाच आदि कहा जाता है। यही लोग वासना लोक के स्थायी जीव हैं। इनकी शक्ति अपरिमित होती है। इनके लिए कुछ भी असम्भव नहीं होता, इनकी इच्छा शक्ति प्रबल होती है। इच्छा होने पर ये स्थूल मानव शरीर धारण करके अपनी कोई भी कामना लालसा पूरी कर सकते हैं। ये जीव मनुष्यों के सच्चे हितैषी भी होते हैं और कट्टर शत्रु भी।

दूसरी तरह के जीव वो हैं जो मृत्यु लोक के मानव शरीर छोड़कर अथवा मर-कट जाते हैं। ऐसे जीवों को ही भूत-प्रेत, जिन्न-चुडैल आदि कहा जाता है। वास्तव में मनुष्य की मृत्यु हो जाती है, पर उसकी कामना, लालसा अथवा वासना नहीं मरती। उनकी इसी कामना आदि को मंत्रों से बांधकर इन्हें वश में कर लिया जाता है, फिर उनसे मन चाहे काम कराए जाते हैं। इनकी शक्ति अपेक्षाकृत सीमित होती है। फिर भी मनुष्य से तो वह कहीं अधिक शक्तिशाली होते हैं। वैसे इन लोगों को वश में करके खेलने से बड़ा खतरा भी रहता है। जरा सी असावधानी होते ही यह घात कर बैठते हैं और स्वयं साधक अथवा तांत्रिक को भी मार डालते हैं।

तीसरे प्रकार के जीवों में से कुछ तो वो है जो सोते समय स्वप्न में वासना लोक में पहुँच जाते हैं और जगने पर लौट आते हैं। जो लोग आत्महत्या अथवा हत्या के कारण मर कर वासना लोक में पहुँचते हैं उनकी स्थिति बड़ी हीन और दयनीय होती है। वे पागलों की तरह चीखते-चिल्लाते हुए इधर-उधर भटकते रहते हैं।

एक ओर श्मशान का भयंकर वातावरण। निविड़ अन्धकार सांय-सांय कर रहा था। रह-रहकर पीपल की डाल पर बैठा हुआ कोई मांसखोर पक्षी चोंच रगड़कर चीख उठा। दूसरी ओर काल भैरव के मंदिर में पंख फड़फड़ाते हुए चमगादड़ों का कर्कश चीत्कार। मेरे रोंगटे भरभराकर खड़े हो गए थे और सामने बैठी पगली एक से एक रहस्यमय डरावने जीवों के बारे में बोलती जा रही थी ...

इनके अलावा जीवों का एक वर्ग और होता है - वासना लोक में। जिन्हें अपदेवता कहते हैं। कहते हैं, ये लोग किसी अन्य लोक से वासना लोक में प्रवेश कर जाते हैं। तंत्रशास्त्र में इन्हीं को हाकिनी, डाकिनी, शाकिनी आदि कहा जाता है। बड़े ही भयानक जीव होते हैं। बुद्धि और करूणा तो उनमें लेश मात्र भी नहीं होता। पशुओं की भांति उनके पास मन होता है। इनका अधिकांश कार्य उसी से प्रेरित होता है। जिन्हें तंत्र साधना में घोर दुःसाहसी गति-मति प्राप्ति होती है वे ही हाकिनी-डाकिनी विद्या से इन अपदेवतातों को वश में कर पाते हैं, किन्तु इनसे पग-पग पर घोर संकट की आशंका बनी रहती हैं...

”इसीलिए मैं तुझे बार-बार मना करती आ रही हूँ। पर तू कुछ समझता ही नहीं। उलटे मुझ पर क्रोध करता है —”

लेकिन मुझ पर तो कुछ और ही धुन सवार थी। मैं उसे फिर टालमटोल का मौका नहीं देना चाहता था। पूछ बैठा, “इनमें से पहली तरह के जीवों को कैसे वश में किया जा सकता है ?”

”दिव्यौध विद्या से । लेकिन इसकी साधना बड़ी ही कठिन है ।” पगली ने चेतावनी सी दी, ”सबके वश की बात नहीं है । तंत्र विज्ञान की बड़ी ऊँची विद्या है । प्रबल साहसी और समर्थ कापालिक ही इसकी साधना कर सकता है —”

मैं न जाने किस धुन में पूछ बैठा, ”तुम्हारे कापालिक गुरू ने क्या तुम्हें यही विद्या दे रखी है ?”

न जाने कहाँ क्या गलती हो गई । पगली झंझावात की तरह गर्जन करने लगी, ”तू कैसे जानता है...बोल कैसे जानता है...बोल नहीं तो मार डालूँगी ।”

उसका प्रचंड रूप देखकर मेरा रोम-रोम कांप उठा । और सिर पर पांव रखकर मैं भाग निकला ।

इस प्रकार नाव जैसे किनारे पहुँचकर डूब गई थी । पछतावा होने लगा । नाहक ही ऐसी बात क्यों पूछ बैठा ? कितनी मुश्किल से तो पसीजी थी वह । लेकिन बहुत चाहने पर भी उससे फिर मिलने की हिम्मत नही पड़ रही थी । इस बीच रात को कभी वह सपने में भी नहीं आई । तब शायद निराशा अत्यधिक बढ़ जाने के कारण फिर से साहस जुट गया । और मैं जान हथेली पर रखकर एक रोज फिर श्मशान पहुँच गया ।

वह काल भैरव के मन्दिर की सीढ़ी पर बड़ी गम्भीर मुद्रा में बैठी थी । मुझे देखकर न तड़की न भड़की । कुछ देर गहरे निगाह से घूरती रही, फिर इशारे से अपने पास बुला लिया ।

मैं डरा-डरा सा निकट पहुँचा, तो वह गंभीर स्वर में बोली, ”तू काल की गति को जानना चाहता है ? जीवन और जगत के गूढ़ रहस्यों को समझने के लिये मेरे पास आया है —”

मैंने खामोशी से हामी भर दी ।

”लेकिन तू शायद जानता नहीं । यह सब जानने के बाद जीवन फिर जीवन जैसा नहीं रह जाता । इस चक्कर में मत पड़ मेरी बात मान ले। लौट जा —”

“ऐसे नहीं लौटूँगा । कुछ भी हो जाए।”

”तब ठीक है । लेकिन इसके लिए तुझे पिशाच सिद्ध करना पड़ेगा । इसके बिना तुझे यह सब नहीं मिल सकता है ।”

”ठीक है । मैं करूँगा । कैसे क्या करना होगा ?”

”शव साधना ।”

“शव साधना।” मैं चौंक पड़ा ।

लेकिन पगली सन्यासिनी सचमुच मुझ पर कृपालु हो गई थी । उसने मुझे आश्वासन दिया कि मुझे किसी की हत्या-वत्या नहीं करनी पड़ेगी । साधना के लिए शव स्वयं ही आ जाएगा । इसके अलावा उसने पूरी तरह आश्वासन दिया कि चिंता करने की बात नहीं मैं स्वयं सब

कुछ करा दूँगी। उसने कुछ आवश्यक सामग्री के साथ मुझे अमावस्या की रात में अकेले ही श्मशान घाट में पहुँचने का आदेश दिया।

उस समय तो मैं आश्वस्त था। लेकिन जैसे-जैसे समय बीतने लगा आशंका बढ़ने लगी। क्या सचमुच सन्यासिनी वचन पूरा करेगी ? कहीं उसने मुझे लम्बे समय के लिए बहका कर गायब हो जाने की तो नहीं सोची।

अमावस्या आ ही गयी। सन्यासिनी के निर्देशानुसार दो बोतल शराब, मुर्ग का मांस, भुना हुआ चना इत्यादि लेकर मैं पहुँचा, तो पगली जैसे मेरा इन्तजार ही कर रही थी, लेकिन मैं घबराया, न जाने वह क्यों कुछ विचलित सी प्रतीत हो रही थी।

लेकिन मेरी आशंका निर्मूल सिद्ध हुई। उसने संकेत करते हुए कहा, "सामग्री इधर रख दो। शव आ गया है जाकर उसे उठा ला —"

मैं उसके इशारे पर एकदम तट पर खड़े पीपल के पास पहुँचा। जड़ें पानी के भीतर काफी दूर तक धंस गई थीं। उन्हीं के बीच किसी षोडशी की निर्वसन लाश अटकी हुई थी। मैं जड़े पकड़कर पानी में उतर गया और केश पकड़कर शव को खींचता हुआ किनारे ले आया। पगली के संकेत पर मैंने लाश उठाकर मन्दिर की सीढ़ी पर लिटा दी। शव में जरा भी विकृति नहीं आयी थी। शायद उसे मरे अधिक समय नहीं हुआ था। उसके चेहरे पर आँख पड़ते ही सहसा मेरी चीख निकल गई। यह तो वही है। वहीं रतनारी आँखें, जवाकुसुम जैसे कपोल, मनमोहक मुखड़ा। कोई अन्तर नहीं। यह वही सपने में आने वाली सुन्दरी है।

पगली ने मुझे झिड़क कर चुप करा दिया और मुझे साधना की विधि बताने लगी। उसने चेतावनी दी, "डरना मत डरे कि मरे। सावधान चाहे कुछ भी हो जाए शव पर से उठना मत।"

मैं विवश होकर उसके संकेतों पर काम करने लगा था। शराब की बोतल, मांस, चना आदि निकट रखकर मैं सन्यासिनी के संकेत पर आसन जमाकर तरूणी के शव पर स्थिर बैठ गया, और उसी के द्वारा बताए हुए मंत्र का जाप करने लगा। श्मशान भूमि गाढ़ी रात में डूब गयी थी। दिशाएँ तक लुप्त और तो और स्वयं पगली भी अंतर्ध्यान हो चुकी थी। एकाएक मरघट में कुत्तों और सियारों के रोने चिल्लाने का भीषण स्वर गूंजने लगा। लेकिन मैं शव पर अडिग बैठा जप करता रहा।

रात गहराने लगी। अकस्मात् नदी की ओर से दल की दल कितनी ही युवतियाँ मेरी ओर आने लगी। सब की सब निर्वसन थीं। वे मुझे घेरकर खड़ी हो गई और अपलक मेरी ओर ताकती रही, लेकिन सन्यासिनी के आदेशानुसार मैं निर्भीक बैठा एकाग्रचित्त मंत्रोच्चार करता रहा। अन्ततः धीरे-धीरे स्त्रियाँ फिर नदी की ओर लौट गयीं।

सहसा एक तीव्र कड़कड़ाहट के साथ कुछ कांप उठा और दूसरे ही पल श्मशानभूमि में भयानक नरकंकालों की भीड़ तांडव सी करती दिखाई पड़ी। मेरा साहस डिगने लगा। मैं उठकर भागने को ही था, कि एक रूपवती षोडशीबाला राह रोककर खड़ी मुस्कराती दिख

पड़ी। वह दृश्य देखकर मेरी नाड़ियों में बहता रक्त बर्फ की भांति जम सा गया। मैं जिस युवती के शव पर बैठा साधना कर रहा था, मानों वही सजीव होकर सामने आ खड़ी हुई थी। सम्मोहित करने वाली अद्भुत आसुरी छवि मादकता से तरंगित उद्दाम यौवन।

आतंक से प्रस्तरीभूत मैं अपलक उसकी ओर निहारता रह गया।

सहसा युवती पागल बना देने वाली हँसी-हँस कर बोली, "मैं टहाविद्या...श्मशान भैरवी हूँ चौंसठ योगिनियों में श्रेष्ठतम। डरो मत तुम्हारी इस महाडामरी साधना से दिव्यौध पथ में हड़कम्प मच गया हैं। इसी कारण मुझे भागकर तुम्हारे पास आना पड़ा है। बन्द करो, रोक दो साधना। शव पर से हट जाओ —"

लेकिन मैं उसी आसन में अडिग होकर अविचल भाव से साधना करता रहा। सहसा वह युवती एक दिव्य प्रकाश पुंज में परिवर्तित हो गयीं। नर कंकालों का हाहाकार और तालियों के साथ भीषण नृत्य फिर आरम्भ हो गया। दिव्य ज्योति के रूप में वह युवती धीरे-धीरे आकाश की ओर बढ़ चली। सहसा एक साथ ढेर सारे सियारों की चीखें गूंजने लगी। चारों ओर सड़ते हुए मुर्दे की भयानक गंध व्याप्त हो गयीं। आकाश का एक भाग प्रचंड गड़गड़ाहट के साथ फट सा गया। फिर वहाँ दहकती हुई आग जैसे लाल बादल घुमड़ने लगे। आकाश में असंख्य गिद्ध चील और कौए मंडरा रहे थे। नरकंकालों का तांडव और मांस भोजी पशुओं का चीत्कार...

दहकते हुए बादलों के बीच से एक विकट रूपवाली अद्भुत स्त्री नीचे उतरती जान पड़ी। उसका भीषण रूप देखकर आतंक से मेरे अंग-अंग शून्य हो चले। अंगारों जैसी दहकती हुई निष्ठुर क्रूर आँखों से मुझे झुलसाती हुई वह पिशाचिनी मानो बड़ी निर्ममता के साथ मेरी हत्या कर देने के लिये मुझ पर झपटी। फिर भी मैं बलपूर्वक मुट्ठियाँ भींचकर स्थिर रहा।

एकाएक तरूणी की लाश ने जोर से चीखकर मुँह फाड़ दिया। मेरे बदन में बिजली के झटके से लग रहे थे। फिर भी निरन्तर मंत्रोच्चारण करते हुये मैंने शराब की बोतल उठाकर शव के मुँह में उड़ेल दी। दूसरे ही क्षण पिशाचिनी उतरकर मेरे सामने आ खड़ी हुई। निकट से उसकी आकृति और भी भयानक लगी। अनुपात से कहीं बड़ा सिर, बड़ी-बड़ी गोल आँखें, बाहर की ओर निकले हुए विशाल दाँत, काला भुजंग शरीर साक्षात यमदूत सी लग रही थीं। उसके निकट आते ही युवती का शव चीख पड़ा, "मेरा उद्धार करो…हट जा मेरे ऊपर से...हट जा —"

मैं शराब की दूसरी बोतल उठाकर उसके मुँह में उड़ेल पाता इसके पहले ही शव के दोनों हाथ उठे। उसके नुकीले पंजे गर्दन में धंसने लगे। सांस की गति रूकने लगी। मैं चेतना खो बैठा।

लेकिन उसी समय मुझे एक विलक्षण दृश्य दिखाई पड़ा। तंत्र विद्या की सिद्धि वहीं भयावनी पगली सन्यासिनी अकस्मात मेरे सामने आ खड़ी हुई। अपरूपा राजकन्या के वेश में। तन पर लाल रेशमी साड़ी, बहुमूल्य रत्न-जड़ित आभूषण, मांग में सिन्दूर दप्-दप् कर रहा था। हाथों में मेहंदी रची थी। नवपरिणीता वधू-सी छवि, कमनीय देहराशि।

मैं कातर स्वर में बोल पड़ा, "कहाँ गई थी तू ?"

आतुर हँसी हँसकर वह बोली, "जाऊँगी कहाँ ? तुम्हारे पास ही तो थी। भला तुमको छोड़कर अब जाऊँगी भी कहाँ ?"

मैं अवाक रहा।

वह अवसाद भरे कण्ठ से बोली, "छप्पन वर्ष बीत गए, मैं गुरु-दर्शन की लालसा से तड़पती हुई श्मशान में भटकती रही। लेकिन दर्शन नहीं ही मिला। अब सोचा उस कापालिक से मिली भयंकर तामसिक तंत्र-शक्ति को तुझे देकर अपने को मुक्त कर लूं पर यह भी न हुआ। छलने चली थीं, स्वयं छली गई। जन्म व्यर्थ गया। अपनी आत्मा के लिये कुछ भी न कर सकी...

मर्मभेदी चीत्कार के साथ वह फूट-फूट कर रोने लगी।

चेतना लौटी तो मैंने अपने आपको चौधरी की झोंपड़ी में एक खाट पर पड़ा पाया। गांव वालों से ही मालूम हुआ कि उन लोगों ने मुझे श्मशान में बड़ी विचित्र स्थिति में पाया था - पगली की लाश से लिपटा हुआ। लाश के दोनों पंजे मेरी गर्दन में लिपटे हुए थे। बड़ी कठिनाई से मेरा उद्धार किया गया।

कौन छला गया, यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन एक बात का उल्लेख कर देना आवश्यक है - इस घटना को घटित हुए पच्चीस वर्ष से अधिक समय व्यतीत हो चुका हैं, लेकिन पगली की आत्मा उस भयावती रात से लेकर आज तक मेरे साथ लगी है।

अध्याय ७
पीर सुलेमान की चौकी

दैवी राज्य से मनुष्य का संबंध जोड़ने की प्रक्रिया में भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत जितने साधनों का आविष्कार हुआ उनमें 'पीठ' का स्थान सर्वोपरि है। पीठों के निर्माण और उनके द्वारा विभिन्न दैवी शक्तियों के आकर्षण की परम्परा विशेषकर तंत्र के विभिन्न सम्प्रदायों में रही है। अघोर और शाक्त सम्प्रदाय में तो पीठ को अत्यधिक महत्व दिया गया है। इन दोनों सम्प्रदायों की जितनी भी रहस्यमयी साधनायें हैं वे सब पीठ पर निर्भर हैं।

'पीठ' का मतलब है 'शक्ति केन्द्र'। स्थूल जगत से सूक्ष्म जगत का संबंध जोड़ने वाला एक अदृश्य सूत्र। 'पीठ' का एक विज्ञान है। जो लोग पीठ विज्ञान के रहस्यों से परिचित है वही दैवी राज्य से सम्पर्क स्थापित करके फायदा उठा सकते हैं और तांत्रिक साधना में भी सफलता पा सकते हैं।

इस्लाम धर्म और संस्कृति की जितनी भी उपासना साधना है वह सब भी 'पीठ' पर ही निर्भर है। उस क्षेत्र में 'पीठ' को चौकी कहते हैं। मगर इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि तांत्रिक 'पीठ' का बहुत व्यापक, गम्भीर और गूढ़ अर्थ है। जबकि 'चौकी' को एक विशेष मानवीय संवेदना में बांधा गया है। सात आसमानों को ध्यान में रखते हुए चौकी को भी सात भागों में बांटा गया है। हिन्दू धर्म के सात लोक इस्लाम धर्म के सात आसमान हैं। प्रत्येक चौकी एक-एक आसमान से सम्बन्ध रखती है। औलिया की चौकी चौथे आसमान से, फकीरों की चौकी पांचवें आसमान से और पीरों की चौकी छठें आसमान से सबंध जोड़ती है। सातवाँ आसमान पैगम्बर का है। एक, दो और तीन चौकी और उनसे सम्बंधित आसमान जिन्न-जिन्नातों के हैं।

जिन्न-जिन्नातों की चौकी तो उनकी कब्र होती है। मनुष्य की वासना और उसका संस्कार ये दोनों चीजें मनुष्य का पीछा कभी नहीं छोड़ती। मरने के बाद जब शरीर का बंधन टूट जाता है। तब वे संस्कार और तमाम वासनायें विराट रूप धारण करके आत्मा को काफी परेशान करती है। हिन्दू प्रेतात्माएँ तो उसी के अनुसार कहीं न कहीं जन्म ले लेती हैं। मगर मुस्लिम प्रेतात्माएँ कयामत की रात की प्रतीक्षा में अनन्त काल तक अपनी वासनाओं और संस्कारों का बोझा ढोती रहती हैं। ऐसी प्रेतात्माओं को रूह कहते हैं।

जिन रूहों में अदम्य वासना, कामना और जिन्दगी के प्रति लालसा भरी रहती हैं अथवा जिनकी अकाल मौत हुई है जो जिन्दगी में महत्वपूर्ण काम अधूरे छोड़कर मरे हैं वे जिन्न होते है।

साधारण रूहों की हालत एक पागल सी होती है। रूहानी दुनिया के बजाय वे जिस्मानी दुनिया में ही मच्छरों की तरह भिनभिनाती रहती हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे 'झुण्ड' बनाकर रहती है और हमेशा इंसान को गुमराह करने की कोशिश करती रहती हैं। उसमें बुरी से बुरी आदतें डाल देती हैं। जिनके वशीभूत होकर इन्सान अपना

विवेक खो बैठता है और एक पशु की सी जिन्दगी बिताने लगता है। जिन्नों की हालत इनसे कुछ अलग तरह की होती है। वे उसी इन्सान से अधिक सम्बन्ध रखने के इच्छुक होते हैं जिससे उनकी प्रबल वासना मिलती-जुलती है। वे रूहानी दुनिया की दूसरी सतह यानी आसमान में रहते हैं। पहला आसमान रूहों का है और दूसरा है जिन्नों का। रूहों और जिन्नों में वही अन्तर है जो एक मूर्ख और जाहिल इंसान एवं एक पढ़े-लिखे मगर साधारण इन्सान के बीच होता है।

जैसे रूहों और जिन्नों में थोड़ा सा भेद है वैसे ही जिन्न-जिन्नात में भी फर्क समझना चाहिए। जिन्नात काफी शक्तिशाली होते हैं। उनकी वासनायें अति भयंकर-प्रबल होती हैं। वे अदम्य इच्छाशक्ति के मालिक होते हैं। वे अपनी प्रबल वासना के अनुसार इच्छाशक्ति के बल पर विभिन्न रूप धारण कर सकते हैं। इतना ही नहीं वे किसी भी पदार्थ अथवा वस्तु की सृष्टि कर सकते है। तीसरे आसमान में रहते हुए भी वे जिस्मानी दुनिया से बराबर सम्बन्ध बनाए रखते है।

जो कहानी मैं आपको सुनाने जा रहा हूँ वह छठे आसमान से सम्बंधित पीरों की है। इस्लाम धर्म में पीरों का वही स्थान है जो हमारे यहाँ अत्यन्त उच्चकोटि के योगियों, सिद्ध पुरुषों महात्माओं और सन्तों का है। जिसे खुदा का एहसास हो चुका है और खुदा के नजदीक है वही पीर है।

पीरों की कब्र के ऊपर जो मजार बनाई जाती है वही 'चौकी' होती है — चौकी की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि पीर का जिस्म जिस दिन और जिस समय कब्र में दफन किया गया होता है, हर साल में उसी दिन और उसी समय छठे आसमान से उतर कर पीर की आत्मा अपने मजार में अवश्य जाती है। पीरों में किसी भी प्रकार भेदभाव नहीं रहता। वे सभी जाति और सभी धर्म के लोगों की प्रार्थना सुनते हैं, यह दुआ करते व देते हैं। यदि वे किसी पर प्रसन्न हो जायें तब तो पूछना ही क्या। किसी प्रकार का दुख, अभाव रह ही नहीं सकता। कोई ऐसी समस्या नहीं जो हल न हो सके। कोई ऐसा कष्ट नहीं है तुरन्त दूर न हो जाए। बस पीर की कृपा दृष्टि भर होनी चाहिए। अरबी भाषा में लिखित प्राचीन इस्लामी तंत्र ग्रन्थों में सातों आसमानों में संबंधित सातों तरह की चौकियों को मंत्र शक्ति के जरिए बनाने और उनकी सहायता से सातों आसमानों के प्राणियों से सम्पर्क स्थापित करने की अनेक विधियों और अनेक क्रियाओं का उल्लेख मिलता है। एक बार कोई चौकी बन गई तो वह पूरे एक साल काम आती है। यहाँ मैं एक बात और बतला दूँ कि चौकी वही बना सकता है और रूहानी दुनिया के लोग से वही मिल सकता है जिसमें प्रबल प्राणशक्ति होगी और दृढ़ मनोबल होगा अन्यथा मर जाने या पागल हो जाने का डर बना रहता है।

यदि साधना में सफलता मिल गई तो निश्चित ही मानवीय शक्ति में एक ऐसी शक्ति घुल मिल जाती है कि जिसके माध्यम से व्यक्ति एक ऐसी अव्यक्त, अगोचर केवल अनुभव की जाने वाली दुनिया के सम्पर्क में आ जाता है।

जब ये सारी बातें मुझे मालूम हुई तो मैं उल्लास से भर उठा और अरबी तंत्र-मंत्र की प्राचीन पुस्तकों और पाण्डुलिपियों की खोज में चारों ओर भटकने लगा। इसी सिलसिले में

मेरी भेंट एक दिन हसन नियाज़ साहब से हो गई । वह मेरे मित्र थे और उन दिनों अलीगढ़ विश्वविद्यालय में अरबी भाषा और साहित्य के प्राध्यापक थे।

नियाज साहब के पिता अपने जमाने के मशहूर लेखक और अरबी एवं फारसी साहित्य के अच्छे विद्वान थे। उनकी अपनी लाइब्रेरी थी। जिसमें बेशुमार पुस्तकें थीं । वहाँ अरबी तंत्र-मंत्र की पुस्तकों एवं पाण्डुलिपियों की भी कमी नहीं थी । अपने मन की बात बतलाकर जब मैंने नियाज़ साहब से कहा कि वह मुझे अपनी लाइब्रेरी की पुस्तकों को देखने का मौका दें तो वह तुरन्त तैयार हो गये । जिस मकान में लाइब्रेरी थी वह अलीगढ़ शहर के बाहर बड़े सुनसान जगह पर था। लम्बा चौड़ा हवेलीनुमा वह मकान काफी पुराना भी था । नियाज़ साहब के पिता के इंतकाल के बाद एक लम्बे अरसे से उसमें कोई नहीं रहता था और वह खाली ही पड़ी थी ।

एक हफ्ते के भीतर ही मैं उस मकान में पहुँच गया । जिस कमरे में लाइब्रेरी थी, वह काफी लम्बा-चौड़ा था । दीवारों से लगी हुई करीब तीन दर्जन अलमारियों में ठसाठस पुस्तकें भरी हुई थीं । अलमारियों पुस्तकों और मेज कुर्सियों के अलावा फर्श पर धूल की मोटी तह जमी हुई थी । लाइब्रेरी के कमरे के सामने खुली छत थी । उसके बाद एक और कमरा था उसी में मैंने अपने रहने का इंतजाम कर लिया । कमरे में तीन बड़ी-खिड़कियाँ थी जो पूरब की ओर खुलती थीं । खिड़की के बाहर मकान से बिल्कुल लगा हुआ काफी बड़ा एक मैदान था जिसमें इमली, जामुन, बेर के अलावा खजूर के भी कई पेड़ थे । उन्हीं खजूरों के नीचे-तीन चार कब्रें भी बनी हुई थी । उसके इर्द-गिर्द जूही और रातरानी के पेड़ लगे थे । जिनकी कोमल डालियाँ कब्र के ऊपर छायी हुई थी । लेकिन जिसने मुझे विशेष रूप से आकर्षित किया । वह था रोजाना शाम के वक्त वहाँ जलने वाला चिराग । उस संगमरमरी कब्र पर वह चिराग रोज कौन जला जाता था ?

एक दिन खिड़की के पास बैठा हुआ मैं कोई पुस्तक पढ़ रहा था, उसी समय सहसा मेरी नजरें कब्र की ओर घूम गई, देखा तो उन्नीस-बीस साल की एक युवती हाथ में जलता हुआ चिराग लिये धीरे-धीरे कदम उठाती हुई संगमरमरी कब्र की ओर बढ़ रही थी । चिराग की हल्की पीली रोशनी में उस युवती का गोरा चेहरा चमक रहा था । निश्चय ही वह अत्यन्त सुन्दर युवती थी । मगर कौन थी ? कहाँ रहती थी ? क्यों वह रोजाना उस कब्र पर चिराग जलाने आती थी ? ये तमाम प्रश्न एक-एक कर मेरे मस्तिष्क में उभरने लगे ।

युवती ने आहिस्ते उस चिराग को कब्र के सिरहाने रख दिया । फिर कुछ देर तक वहीं खड़ी उदास नजरों से कब्र की ओर निहारती रही । उसके बाद हौले-हौले कदम उठाती हुई झुरमुटों के भीतर से न जाने कहाँ चली गई ।

फरवरी का महीना था । कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी । उस दिन सवेरे से ही पानी बरस रहा था । मैंने सोचा ऐसे मौसम में यह युवती चिराग रखने नही आयेगी मगर यह मेरा भ्रम था । वह अपने ठीक वक्त पर आई चिराग रखा और पानी में भीगती हुई काफी देर तक उदास नजरों से कब्र की ओर देखती रही । फिर उसके जाते ही हवा का एक तीव्र झोंका आकर पूरे कमरे में बिखर गया । उसी के साथ चारों ओर रातरानी की सुगन्ध भी फैल गई ।

उस वक्त मैं उस युवती के बारे में ही सोच रहा था । कौन है वह ? कोई अशरीरी आत्मा तो नहीं है ?

ये दोनों विकट प्रश्न मेरे मस्तिष्क में बुरी तरह छा गए थे । जिसकी वजह से पूरी रात सो नहीं सका । आखिर भोर के समय थोड़ी सी झपकी लगी फिर जब आँख खुली तो एकदम स्तब्ध रह गया मैं । मेरे बिस्तर के सिरहाने ताजे खिले रातरानी के ढेर सारे फूल रखे हुए थे। आश्चर्य से सन्न बैठा मैं उन फूलों को देख रहा था । कौन आया था मेरे कमरे में ? दरवाजे तो भीतर से बन्द थे .... फिर .... मेरा मन उद्भ्रांत सा हो गया । कुछ समझ में नहीं आ रहा था । उसी वक्त मुझे ऐसा लगा कि कोई आहिस्ते से बन्द दरवाजा खोलकर कमरे में आया है और मेरे पलंग के नजदीक खड़ा हो गया है ।

सिर घुमाकर देखा तो स्तब्ध रह गया आश्चर्य से आँखें फैल गई मेरी । मेरे सामने मुगलकालीन वेशभूषा में खड़ी कब्र पर चिराग जलाने वाली युवती मुस्करा रही थी । वह बिल्कुल शहजादी सी लग रही थी । मैं बड़ी देर तक अपलक अवाक् देखता ही रह गया उसकी ओर । किसी सद्ययौवना युवती में इतना सौन्दर्य समा सकता है, कभी इसकी कल्पना भी नहीं की थी मैंने । जैसा स्फटिक होता है बस वैसा ही दूध जैसा उसके शरीर का रंग था । पतले-पतले गुलाबी होंठ, बड़ी-बड़ी स्याह आँखों में गजब का सम्मोहन भरा हुआ था । बाल काले और घुंघराले थे । उन्मत्त कर देने वाला यौवन भी अद्‌भुत था जिसे देखकर किसी का भी मन बेकाबू हो सकता था । गोरी-गोरी कलाइयों में काले रंग की कांच की चूड़ियाँ पड़ी थीं और दाहिने हाथ की उंगली में हीरे की कीमती अंगूठी भी फंसी थी ।

अस्फुट स्वर में मैंने पूछा - ”आप कौन है ?” मेरा प्रश्न सुनकर युवती का फूल जैसा चेहरा न जाने क्यों एकबारगी भावहीन हो गया । मुस्कराते हुए होंठ खामोश सूख गए और रसीली आँखो की चमक बुझ गई । धीरे से बोली - ”मेरा नाम नाजिमा है । मैदान में उस पार जो लाल कोठी है, उसी में रहती हूँ।” थोड़ा रूककर उसने फिर कहा - ”आप पहले इंसान हैं जिसके करीब मैं आई हूँ। ” .

”बड़ी खुशी की बात है ।” मैंने कहा - ”बताइए क्या काम है मुझसे ?”

नाजिमा का चेहरा गुलाब की तरह फिर खिल उठा । आहिस्ते से बोली - ”आप रूहानी दुनिया के बारे में जानते हैं न ?”

”हाँ-हाँ, पर आपको कैसे मालूम ?”

”मुझे सब कुछ मालूम है । ”नाजिमा ने कहा - ”यही तो मैं आपको बतलाने के लिए बेचैन थी । इस लायब्रेरी की चौड़ी आलमारी में एक बहुत पुरानी किताब है, हाथ की लिखी हुई । उसमें पीर-फकीरों और औलिया की चौकी बनाने का तरीका बहुत समझा कर लिखा गया है । आप उसी किताब के सहारे पीर सुलेमान की चौकी बनाइए । खुदा चाहेगा तो आपको जरूर सफलता मिलेगी ।”

इसके बाद नाजिमा एक पल के लिए भी नहीं रूकी । वह एक झटके से घूमी और तुरन्त

कमरे से बाहर निकल गई। मैं आश्चर्य से खड़ा जाती हुई नाजिमा को देखता रह गया।

खोजने पर चौथी अलमारी में नाजिमा की बतलाई हुई वह पुरानी किताब मिल गई। सचमुच वह चार सौ साल पुरानी पाण्डुलिपि थी। कागज काफी मोटे होने के बावजूद गल गया था। कहीं-कहीं अक्षर भी मिट गए थे। चमड़े की मजबूत जिल्द में बंधी थी वह पाण्डुलिपि। उसका शीर्षक भी काफी आकर्षक था - "रूहानी दुनिया की सैर" उसमें कुल मिलाकर तीन सौ पृष्ठ थे। कुल पृष्ठों पर तो चमकीले सुनहरे रंग बिरंगे चित्र भी बने हुए थे, जो अपने आप में बहुत मूल्यवान और विलक्षण थे।

विधि पढ़कर अचानक मेरी आँखों में चमक आ गई। मैंने एकबारगी निश्चय कर लिया कि पीर सुलेमान की चौकी बनाकर ही दम लूँगा और इसके लिये नियाज़ साहब के उस हवेलीनुमा स्थान से अच्छा दूसरा एकान्त स्थान भला मुझे कहाँ मिलता ?"

काश ! जब मैं यह निश्चय कर रहा था। उस वक्त जरा सी भी इस बात का पता चल गया होगा कि मेरे जरिये एक ऐसी परिस्थिति का निर्माण होने जा रहा है, जिससे मैं जिन्दगी भर छुटकारा नहीं पा सकूँगा तो सच मानिए मैं सपने में भी पीर सुलेमान की चौकी बनाने की बात न सोचता।

उस दिन से प्राय: रोज ही नाजिमा मेरे कमरे में आने लगी। मगर वह कभी खाली हाथ न आती, कभी उसके साथ रातरानी के फूलों का ढेर होता तो कभी बढ़िया मिठाइयाँ। जिस समय यह कमरे में प्रवेश करती त्यों ही वातावरण में हिना और मुस्कम्बर की भीनी-भीनी खुशबू भर उठती। कभी-कभी वह अपने हाथों से बनाकर खाना भी ले आती।

नाजिमा के दिल में मेरे लिए इतनी प्रीति और अपनापन क्यों था यह मेरी समझ में नहीं आता था। कभी-कभी सोचता - "क्या नाजिमा मुझसे प्रेम करने लगी है ? क्या वह मुझे अपना बनाना चाहती है ? मगर नहीं, व्यवहार में मुझे कहीं भी कामना या वासना की झलक नहीं दिखलाई पड़ी थी। उसके प्रेम में, स्नेहमय अपनत्व में एक स्वर्गीय सौन्दर्य था - निष्काम भावना थी —"

अभी तक मेरी समझ में यह नहीं आया था कि 'रूहानी दुनिया की सैर' की पाण्डुलिपि के बारे में आखिर नाजिमा को कैसे मालूम था ? वह कैसे जानती थी कि वह पाण्डुलिपि कहाँ किस आलमारी में हैं ?

फिर एक दिन मुझे एक ऐसी चीज की जरूरत पड़ गई जिसे लेने के लिए शहर जाना जरूरी हो गया था, मगर कपड़े पहनकर मैं जैसे ही बाहर निकला नाजिमा मिल गई और उसके हाथ में वही चीज थी, जिसकी मुझे जरूरत थी।

इसी तरह कई बार हुआ। मुझे जब कभी भी किसी चीज की जरूरत पड़ती नाजिमा न जाने कैसे जान जाती और उसके जरिए मेरी वह आवश्यकता पूरी हो जाती। मैं हैरान था। आखिर नाजिमा कैसे जान जाती थी मेरे मन की बात ? फिर कहाँ से और कैसे लाकर देती थी वह चीज ?

एक दिन तो मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं रही। वह रोज की तरह शाम को आई फिर एक बंद लिफाफा मेरी ओर बढ़ाती हुई बोली - "इसे मेरे जाने के बाद खोलियेगा।" नाजिमा के चले जाने के बाद जब मैंने लिफाफा खोलकर देखा तो सन्न रह गया। भीतर सौ-सौ के बीस नोट थे। देखकर मेरा सारा शरीर एकदम झनझना उठा, मस्तिष्क शून्य सा हो गया जैसे। हे भगवान ! नाजिमा आखिर है क्या बला ? उस समय मुझे रुपयों की सख्त जरूरत थी मगर मेरी इस जरूरत को नाजिमा कैसे जान गई ? उस रोज सारी रात मुझे नींद नहीं आई बस नाजिमा के बारे में ही सोचता-विचारता रहा। अंत में निश्चय किया कि कल नाजिमा के आने पर उससे इसका राज जरूर पूछूंगा।

मगर क्या नाजिमा दूसरे रोज आई ? नहीं।

उस दिन के बाद वह मुझे कभी नहीं दिखलाई पड़ी। आखिर एक दिन मुझसे रहा नहीं गया तो मैं लाल बंगले की ओर चल पड़ा। दरवाजे पर एक बुढ़िया बैठी थी। पूछने पर उसने एक बार मेरी ओर उदास नजरों से देखा फिर अपने कमजोर हाथों से मैदान की ओर इशारा करती हुई धीरे स्वर में बोली - "नाजिमा वहाँ है .... चले जाओ वहीं वह सो रही है —"

बुढ़िया की बात मेरी समझ में नहीं आई, किन्तु मेरे कदम अपने आप मैदान की ओर बढ़ चले और संगमरमरी कब्र के सामने पहुँच कर रूक गए। उसके बाद मेरे मुंह से एकाएक चीख निकल गई - "नहीं ऐसा नहीं हो सकता।"

मगर मेरे चिल्लाने से क्या होता था ? सत्य एकदम सत्य था और बिलकुल मेरे सामने था। कब्र के ऊपर लाल पत्थर पर उर्दू में साफ-साफ लिखा था "नाजिमा ! मेरी प्यारी नाजिमा मैं तुम्हारा इन्तज़ार करूँगा जाकिर।"

सारा शरीर जैसे बर्फ हो गया मेरा। सोचने विचारने की शक्ति जैसे गँवा बैठा मैं। पूरे बीस दिन मैं एक प्रेतनी के सम्पर्क में था ? हाँ ! वह प्रेतनी ही थी .... तभी तो मेरे मन की बात तुरन्त जान जाती और बिना कहे सारी जरूरते पूरा करा कर देती थी।

विस्मय और आतंक के कारण मुझे लगातार कई दिनों तक नींद नहीं आई। हर समय नाजिमा के ही बारे में सोचता रहता। रह-रहकर उसका अपरूप सौन्दर्य मेरे सामने थिरकने लगता था। इसी तरह एक सप्ताह बीत गया।

नाजिमा कौन थी ? जाकिर कौन था ? उन दोनों का आपसी संबंध क्या था ? ...... ये दोनों विकट प्रश्न बराबर मेरे मस्तिष्क में चक्कर काटते रहे।

आखिर एक दिन इनका उत्तर मिल ही गया मुझको। रूहानी दुनिया की सैर की पाण्डुलिपि ने ही इस जटिल समस्या को हल कर दिया।

उस महत्वपूर्ण पाण्डुलिपि का लेखक 'जाकिर' ही था। पाण्डुलिपि के आखिरी पृष्ठ पर सुनहरे अक्षरों में उसका नाम लिखा था, वह बहुत ही आश्चर्यजनक, कौतूहलपूर्ण और अविश्वसनीय सा था।

जाकिर की प्रेमिका थी नाजिमा। जाकिर अपने समय का एक बहुत बड़ा तिलिस्मी था, साथ ही प्रेतविद्या में भी वह माहिर था। रूहानी दुनिया के बारे में वह हरदम अधिक-से-अधिक जानकारी हासिल करने की कोशिश करता रहता था। वह विभिन्न तरीकों से कई जिन्न-जिन्नातों से एक साथ सम्पर्क स्थापित कर लेता था। इसमें काफी खतरा था, मगर जाकिर ऐसे खतरों से खेलने में माहिर था।

एक बार संयोग से एक बहुत बड़ा जिन्न जाकिर के चंगुल में फंस गया। उसका नाम माकूल अली था। जाकिर उसकी मदद से नाजिमा की रूह को रूहानी दुनिया में भेजने लगा। नाजिमा जब वहाँ से वापस लौटकर आती तो जाकिर को रूहानी दुनिया का आँखों देखा हाल और अपने विचित्र अनुभव बताती। बाद में जाकिर ने उसी के आधार पर रूहानी दुनिया की सैर नामक पुस्तक लिखी थी।

कहने की जरूरत नहीं कि पाण्डुलिपि के इस विवरण ने अदृश्य, अगोचर और मानवीय इन्द्रियों की सीमा से परे की दुनिया के प्रति मेरे विश्वास की नींव को और अधिक मजबूत कर दिया। दूसरे दिन जुमेरात को मैंने पीर सुलेमान की चौकी बनाने का दृढ़ संकल्प कर लिया। लिफाफे में नोट ज्यों के त्यों रखे थे। मैंने उनमें से दो नोट निकाले और जरूरी सामान लाकर रख दिए। यही से एक ऐसी कहानी का जन्म होता है जिस पर शायद ही किसी को विश्वास हो। मगर सत्य-सत्य होता है और कभी-कभी वह इतना आश्चर्यजनक होता है कि एक बार मनुष्य को अविश्वसनीय और काल्पनिक सा ही लगता है।

सांझ की स्याह चादर फैल गई थी चारो तरफ। हालनुमा कमरे को साफ करके मैंने चावल के पांच कूरे लगाये। फिर उन पर पांच रंग के तेलों के अलग-अलग चिराग जलाकर उन पर पांच रंग के अलग-अलग फूलों की मालायें पहना दीं। इसके बाद पांच तरह की मिठाइयाँ रखकर धूप-लोहबान भी सुलगा दिया। दूसरे ही क्षण सारा कमरा सुगन्ध से भर गया। इसके बाद जो जरूरी काम थे उन्हें पूरा करके मैं पाण्डुलिपि में दिए गए अरबी मंत्र को आंखें बंद करके पढ़ने लगा चुपचाप।

धीरे-धीरे एक घंटा बीत गया। चिराग बराबर जलते रहे। एक बार मैंने उनकी तरफ देखा और फिर मंत्र पढ़ने लगा। अचानक एक इतनी भयानक और डरावनी आवाज सुनाई पड़ी कि मेरा कलेजा कांप गया। कोई प्राण त्यागता हुआ व्यक्ति जैसे पीड़ा से कातर स्वर में कराह रहा हो। यह आवाज मैदान के कब्र की ओर से आ रही थी। यह भयानक आवाज धीरे-धीरे बढ़ती ही जा रही थी। साथ ही मेरा भय बढ़ता जा रहा था। सहसा मेरी नजर बायीं ओर घूम गई। देखा तो वहाँ एक घिनौना सा बदसूरत व्यक्ति बैठा था उसकी काली स्याह देह चमड़ी गल गई थी। नीचे का जबड़ा बाहर की ओर लटका हुआ था। आँखे कोटर में धंसी हुई थीं और सिर मुड़ा हुआ था। हाथ पैर की उंगलियाँ आधी-आधी थी। अब कुल मिलाकर वह बड़ा वीभत्स और भयानक व्यक्ति था। मैंने घृणा के मारे उसकी ओर से मुंह फेर लिया और जल्दी-जल्दी मंत्र पढ़ने लगा।

अब वह भयानक कब्रिस्तानी आवाज वातावरण की गहराई में डूबने लगी थी। धीरे-धीरे और उसी के बाद नया वातावरण उपस्थित हो गया। चावल पर जल रहे पांचों चिरागों

की रोशनी के रंग लाल, पीले, हरे, सुनहले और नीले हो गए। फिर वे एक में मिलकर कुछ अस्पष्ट सा आकार बनाने लगे। मैं बहुत ही सतर्क था उस समय और हर परिस्थिति का सामना करने के लिए तैयार था।

वह आकार धीरे-धीरे एक पालकी शक्ल में बदल गया। जैतून की लकड़ी की बनी वह पालकी बहुत ही खूबसूरत थी। जिस पर सोने का पर्त चढ़ा हुआ था और बारीक मीनाकारी की गई थी। दोनों ओर मखमल की कीमती चादरें झूल रही थीं। उन पर भी सोने के बारीक तार से तरह-तरह के फूल कढ़े हुए थे। पालकी के चारों तरफ मोतियों और हीरे जवाहरात की झालर लगी थी।

कुछ क्षण बाद धीरे से पालकी का पर्दा हटा और उसमें से एक व्यक्ति ने सिर निकाल कर बाहर झांका। वह बहुत ही सुन्दर था। होंठ पतले और लाल थे, नाक नुकीली और आंखें बड़ी-बड़ी थीं। गोरे रंग का वह व्यक्ति सिर पर कलंगीदार टोपी पहने था।

उस व्यक्ति ने एकबार मेरी ओर देखा फिर मुस्करा पड़ा। उसकी मुस्कराहट मुझे बहुत अच्छी लगी। फिर उसने इशारा करके मुझे अपने नजदीक बुलाया। मैं अपनी जगह से हटना नहीं चाहता था। मगर न जाने किस अज्ञात प्रेरणा के वशीभूत होकर मैं उसकी ओर बढ़ गया। दूसरे ही क्षण उसने मुझे अपनी पालकी में बैठा लिया। मगर उसके पास बैठते ही मेरा मन-प्राण डूबने लगा जैसे। ऐसा लगा मानो चेतना कभी भी लुप्त हो सकती है, पर ऐसा हुआ नहीं।

दूसरे ही क्षण वह दृश्य मेरे सामने से हट गया और इसके साथ ही लगा जैसे वह पालकी तीव्र गति से हवा में उड़ रही हो।

वह व्यक्ति मेरे सामने बैठा हुआ अभी भी मुस्करा रहा था। मैंने हिम्मत संजोकर पूछा - ”आप कौन हैं? मुझे कहाँ ले जा रहे हैं?”

मेरा प्रश्न सुनकर वह व्यक्ति धीरे से बोला - ”जिसकी चाह तुमको थी मैं वही हूँ और तुम जहाँ जाना चाहते थे हम तुम्हें वहीं ले जा रहे हैं।”

इतना कहकर वह चुप हो गया। मैंने बाहर झांककर देखा गहरा अन्धकार फैला था चारों तरफ। मुझे लगा जैसे किसी बहुत ही वीरान घाटी के बीच से गुजर रहा होऊँ। थोड़ी देर बाद मुझे उस घाटी में सैकड़ों-हजारों आदमियों के साथ रोने और चीखने चिल्लाने की आवाजें सुनाई पड़ने लगीं। ऐसा लगा मानों सैकड़ों आदमियों को एक साथ कठोर यातनायें दी जा रही हों। उनका सामूहिक आर्तनाद सुनकर मेरा रोम-रोम सिहर उठा।

उस व्यक्ति ने हौले से कहा - ”उन आवाजों की ओर ध्यान देने की जरूरत नहीं है। वे हैवान से बदतर उन इंसानों की तमाम रूहें हैं जिन्होंने अपनी जिस्मानी जिन्दगी में कभी कोई अच्छा काम नहीं किया है। तुम्हारे मजहब में जिसे नरक कहते है वह यही है। मगर उसे बनाने वाला खुदा नहीं इंसान है। उसके अच्छे-बुरे विचार ही स्वर्ग और नरक हैं। इसके अलावा और कुछ नहीं है।” यह सुनकर मेरी सारी देह सन्न हो गई। मुझे अपने आप पर

शक होने लगा कि मैं जिन्दा हूँ या मर चुका हूँ। मैंने अपनी आँखे घुमाकर अपने शरीर की ओर देखा फिर सामने बैठे उस व्यक्ति की ओर ताकने लगा।

वह मुस्कराकर बोला - "तुम जिन्दा हो, मगर जो कुछ देख रहे हो या आगे जो कुछ देखो-सुनोगे वह रूहानी जिस्म से देख सुन रहे हो या देखो-सुनोगे।"

यह सुनकर मैं और हैरान हो गया। सचमुच उस समय मुझे एक विचित्र अनुभूति हो रही थी। थोड़ी देर बाद मैं एक ऐसे स्थान पर पहुँच गया जहाँ बेहद खामोशी थी। बाद में मालूम हुआ कि वह स्थान दुनिया का ऐसा हिस्सा है जहाँ लोग अपने मजहब और ईमान के रास्ते चलकर आते और रहते हैं।

यहीं उस व्यक्ति से मेरा साथ छूट गया। वह कहाँ चला गया और पालकी कहाँ गायब हो गई कुछ पता ही नहीं चला। अपने आपको मैं उस विलक्षण वातावरण में एकदम अकेला और निस्सहाय अनुभव कर रहा था। उस समय मुझे स्थूल और सूक्ष्म शरीर के जरिये जिस्मानी और रूहानी दुनिया का एक साथ अनुभव हो रहा था। वह सब कुछ अत्यन्त विचित्र और वर्णनातीत था।

सारी धरती हरे-भरे घासों से ढकी थी। क्षितिज में जहाँ धरती को आकाश चूम रहा था। वहीं काफी दूर तक हल्की सिन्दूरी आभा फैली हुई थी और उसके ठीक नीचे शानदार मकानों और हरे-भरे पेड़-पौधों की लम्बी कतारें छनकर आ रहे रूपहले प्रकाश से चमक रही थीं। उस नैसर्गिक दृश्य को आज भी भूल नहीं पाया हूँ। इन पंक्तियों को लिखते समय वह सारा दृश्य मेरे मानस पटल पर एक बार मूर्तिमान हो आ रहा है।

"क्या मैं कोई गहरा स्वप्न देख रहा था ?"

"नहीं .... नहीं वह स्वप्न नहीं बल्कि एक हकीकत थी। इस दुनिया का दूसरा पहलू था और जीते जागते इंसानों का असली रूप था। वहाँ मुझे पहली बार यह अनुभव हुआ कि मनुष्य अपने आपमें कितना क्षुद्र, अज्ञानी और सीमित था। जिस दुनिया को वह सत्य समझता है वह दुनिया और वहाँ का जीवन इस नैसर्गिक सौन्दर्य से भरपूर दुनिया की दृष्टि में एक स्वप्न से ज्यादा और कुछ नहीं है। वह यह नहीं जानता कि जिन्दगी खत्म होने के बाद वह एक ऐसी दुनिया से जाग उठेगा। जहाँ उसे यह जिन्दगी और दुनिया झूठी लगने लगेगी। उसी तरह जैसे हम और आप सपना देखने के बाद जाग जाते हैं और उस सपने को झूठा समझते हैं।

मैने कुछ ऐसे लोगों को भी देखा है, जो बुद्धि, ज्ञान और विद्या में काफी ऊँचे स्तर पर पहुँच गए थे और उस समय एवं क्षण का इंतजार कर रहे थे जब इस भौतिक जगत में हजारों-लाखों लोगों से अलग 'व्यक्तित्व' लेकर जन्म लेंगे तथा ज्ञान का प्रकाश फैलायेंगे।

मैं कब तक उस अजीबो गरीब दुनिया का चक्कर काटता रहा। यह तो नहीं बतला सकता, मगर बाद में मुझे अनुभव हुआ कि मैं जिस वातावरण में और स्थिति में हूँ वह पानी में पड़ रही छाया की तरह हिलती हुई धीरे-धीरे गायब हो रही है। उसके साथ मैं भी एक विचित्र

प्रकार का भारीपन अनुभव करता जा रहा था। फिर एक झटका सा लगा और मेरे सामने घना कुहरा सा छा गया। जब यह कुहरा हल्का हुआ तो मैंने स्वयं को अपने कमरे में पाया।

पांचों चिराग पहले की तरह ही जल रहे थे। वातावरण में राल, लोहबान और अगरबत्ती की मिली-जुली गंध बिखरी हुई थी। मैं जाने कब तक संज्ञाशून्य सा जड़वत बैठा रहा। सहसा उसी समय फिर मुझे कब्रिस्तान से आने वाली भयानक आवाज सुनाई पड़ी। थोड़ी देर बाद अचानक कमरे का बन्द दरवाजा फटाक से खुल गया और हांफती हुई नाजिमा मेरे सामने आ खड़ी हुई।

एक प्रेतात्मा को सशरीर अपने सामने देखकर मेरी दशा कैसी हो गई होगी यह आप सहज ही अनुमान लगा सकते हैं। जीभ तालु से चिपक गई। न कुछ पूछा गया और न कुछ कहा गया। बस आँखें फाड़े लगभग दो सौ वर्ष पुरानी उस अतृप्त प्रेतात्मा की ओर ताकता ही रह गया। ऐसी आत्मा की ओर जो अपने मजहब के मुताबिक कयामत की रात कही भी जन्म नहीं ले सकती थी।

अचानक निस्तब्ध वातावरण में रूदन भरा स्वर फैल गया। नाजिमा सिसक-सिसक कर रो रही थी। फिर वह दौड़कर सहसा मुझसे एकदम लिपट गई।

“क्या चाहती हो तुम ?” मैं जोर से चीख पड़ा।

“माकूल अली से मुक्ति….बस….मैं माकूल अली से मुक्ति चाहती हूँ। वह हर रात मुझे मारता-पीटता है ..... मुझे उसके चंगुल से छुड़ा लो ..... वह बड़ा जालिम है .... उफ्।”

नाजिमा की आखिरी बातें जैसे हवा में डूब गई।

मैंने अपने आपको किसी तरह उससे छुड़ाया और कमरे से बाहर भागा। फिर उसी बदहवास हालत में मैं कब तक दौड़ता रहा कुछ मालूम नहीं।

बाद में जब मैंने सारी कहानी नियाज साहब को बतलाई तो वे बोले - ”मियां ! वह बड़ी जालिम लड़की की बेपनाह रूह है। उसने मेरे वालिद को भी काफी तंग किया था। मजबूर होकर उन्होंने उसकी कब्र पक्की बनवा दी थी मगर उसने मेरे वालिद को फिर भी नहीं छोड़ा। उसी के डर से न मैं उस मकान में रहने का साहस करता हूँ और न तो कोई किराएदार ही वहाँ रहने को तैयार होता है।

नाजिमा की प्रेतात्मा को माकूल अली के चंगुल से मुक्ति मिली कि नहीं यह तो मैं नहीं बतला सकता, मगर आज भी उसके अदृश्य बंधन में बंधा हूँ मैं।

अध्याय ८
संन्यासिनी

मेरे जीवन में बहुत-सी स्त्रियाँ आई। कुछ घर गृहस्थी के रूप में, कुछ बुद्धिजीवी विदुषी के रूप में, कुछ साधिका अथवा योगिनी के रूप में और कुछ तांत्रिक संन्यासिनी के रूप में भी, लेकिन इस समय जिस स्त्री की कहानी आप पढ़ रहे हैं वह इन सबमें कोई नहीं है।

एक सप्ताह पूर्व की बात है। मैं नित्य की भांति चुपचाप बैठा था श्मशान की सीढ़ियों पर — सांझ की स्याह कालिमा धीरे-धीरे धरती पर फैल रही थी। आकाश में बादल घिरे हुए थे। हवा रह-रहकर सारे शरीर में सिहरन पैदा कर रही थी। श्मशान में किसी युवक की लाश धूं-धूं कर जल रही थी।

चिता की लाल-पीली लपटों की रोशनी में मेरी निगाह किसी संन्यासिनी युवती पर पड़ी। स्थिर दृष्टि से अपलक देख रही थी वह चिता की तरफ। उसके गम्भीर चेहरे पर उस समय कौन-सा भाव था ? मैं समझ न सका उसे। कुछ देर बाद वह पलटी और सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर आने लगी। जब वह मेरे करीब आई तो मुझसे रहा न गया। न जाने किस प्रेरणा से वशीभूत होकर पूछ ही बैठा मैं ”क्या आप काशी की ही रहनेवाली हैं ?”

अचानक मेरा प्रश्न सुनकर वह संन्यासिनी चौंक पड़ी। सीढ़ियों पर उठ रहे पैर ठमक कर रूक गये। उसने पलटकर मेरी ओर एक बार गहरी नजरों से देखा, फिर हाँफते हुए कहा, “नहीं ! मैं बाहर से आई हूँ। यहीं ऊपर एक आश्रम में रहने की व्यवस्था हो गयी है कुछ दिनों के लिए।” संन्यासिनी की भाषा प्राज्जल और गंभीर थी — निश्चय ही वह कोई विदुषी महिला थी। थोड़ा रूक कर उभर आये सांसो को नियंत्रित कर वह आगे बोली, ”आपका परिचय ?”

मैंने अपना संक्षिप्त में परिचय दे दिया। जिसे सुनकर एक बार फिर उसने मेरी ओर गहरी नजरों से देखा और हाथ में लिए झोले को बगल में दबाती हुई वह कहने लगी, ”कैसा योगा-योग है। मैं तो कभी कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि आपसे इस प्रकार इतने सहज ढंग से भेंट हो जाएगी। कहाँ रहते हैं आप ?”

“पास ही में, 5 मिनट का रास्ता है। आपको आपत्ति न हो तो, चलिए अपना स्थान दिखला दूँ आपको। मुझे भारी प्रसन्नता होगी” अनुरोध भरे स्वर में कहा मैंने।

“संन्यासिनी को आपत्ति क्या ? कौन-कौन है परिवार में ?”

”सभी लोग हैं, मगर मैं अपने आप में अकेला हूँ।”

मेरी बात पर पहले तो वह हँसी, बाद में उसने पूछा, ”क्यों ?”

“क्यों ? इसका उत्तर तो मेरे पास जरूर है, लेकिन बताने में काफी समय लगेगा। इसलिए आप अपना परिचय बताएँ, तो ज्यादा अच्छा होगा।”

“मेरा नाम तो योग भारती है, लेकिन मुझे पाखी के नाम से भी जाना जाता था —”

”आपने संन्यास क्यों लिया ?

”शर्माजी ! यह एक लम्बी कहानी है।” कहकर वह अपनी पुरानी यादों में जैसे डूब गयी।

काफी देर बाद वह लम्बी सांस लेकर भर्राये स्वर में कहने लगी, “मेरा नाम पाखी है। यह तो आपको मालूम ही हो गया है। मैं पश्चिम बंगाल के एक कस्बे की रहनेवाली हूँ। किसी कारण वश उस कस्बे का नाम नहीं बतलाऊँगी आपको। परिवार में सभी लोग थे - माँ-बाप, भाई, बहन सभी। मेरा परिवार मध्यवर्गीय था। खाने-पीने की कोई कमी नहीं थी। मैं अपने भाई-बहनों में सबसे बड़ी थी। मेरे माता-पिता मुझको उच्च शिक्षा दिलाना चाहते थे। मैंने शांति निकेतन में रहकर उच्च शिक्षा भी प्राप्त की। लेकिन तभी कस्बे में कालरा फैला। मेरे माता-पिता और भाई-बहन काल के ग्रास बन गये। जब मैं बोलपुर से अपने गांव पहुंची तो वहाँ कब्रिस्तान की खामोशी के सिवाए और कुछ नहीं मिला मुझे। अब मैं वहाँ रहकर क्या करती। इसलिए मैं उस समय अपनी एक सहेली के यहाँ चली जाना चाहती थी। मेरी सहेली का नाम था बूको चटर्जी। वह वारासात में रहती थी। सोचा वहाँ रहकर नौकरी खोजूँगी। इसके सिवाय मैं कर ही क्या सकती थी। उस समय मेरी आयु 24-25 साल से ज्यादा न थी, मगर मेरा मस्तिष्क परिपक्व था। किसी भी बात को मैं काफी गहराई से सोचने-समझने की कोशिश करती थी। खैर मैं गांव से पैदल चलकर लगभग 5 मील दूर स्टेशन पर पहुँची और लालगोला सियालदह पैंसेजर में बैठ गयी। जब गाड़ी धुवालिया स्टेशन पर रूकी तो उस समय रात के नौ बजे थे। मेरे बगल में एक महिला बैठी थी। कपड़े लत्ते और चेहरे-मोहरे से वह संभ्रांत लग रही थी। उस महिला से मैंने पूछा, ”यह गाड़ी कितने बजे सियालदह पहुँचेगी ?”

”सियालदह ?” महिला चौंकती हुई बोली, ”आप कहाँ तक जायेंगी ?”

”वारासात जाना है मुझे।”

”इस रात में आपको जाने की क्या सूझी ? क्या घर में कोई मर्द नहीं था।” स्त्री ने कहा, फिर आपको तो आज वारासात के लिए सियालदह से बस या ट्रेन कुछ भी नहीं मिलेगी।”

“रात सियालदह स्टेशन पर गुजार लूंगी।” मैंने कहा।

”लगता है घर से नाराज होकर जा रही हो क्या ?” उस महिला ने पूछा।

यह सुनकर डिब्बे में बैठे अन्य यात्री भी उत्सुक होकर मेरी ओर देखने लगे। मैंने अपने पास बैठी महिला को अपनी कथा सुना दी। अन्त में वारासात में रहकर नौकरी करने की भी चर्चा की। मेरी करूण कथा सुनकर उस महिला के नेत्र सजल हो उठे। बातचीत के सिलसिले में उस महिला ने अपना नाम श्यामली बनर्जी बताया था। श्यामली बनर्जी ने कहा, ”देखो पाखी ! जवान और बेसहारा लड़की के लिए शहर बड़े खतरनाक होते हैं। फिर तुम तो बहुत सुन्दर भी हो। रात का समय है। मैं नैहारी स्टेशन पर उतर जाऊँगी —”

फिर वह अपने पास बैठे एक अधेड़ भद्र पुरुष से मेरा परिचय कराती हुई बोली, ”ये महाशय मेरे खास परिचित हैं। नाम है रामनाथ चौधरी दमदम में रहते है। बड़े ही सज्जन पुरुष हैं। आज रात तुम इन्हीं के मकान में ठहर जाओ। कल सवेरे तुम्हें ये गाड़ी में बैठा देंगे। तुम आराम से वारासात पहुँच जाओगी।”

मैं उस बुढ़िया के कथानुसार उस रात चौधरी के यहाँ रूकी। सवेरा हुआ मैं चलने की तैयारी करने लगी। तभी हाथ में चाय का प्याला लिए चौधरी महाशय की मौसी आ गयी और मुझे देखकर हँसकर कहने लगी, ”कहाँ जा रही हो बेटी ? अब तो हमेशा के लिए यहीं रहना है तुमको मेरे पास —”

मैं चौंक पड़ी। बोली - ”क्या मतलब मैं समझी नहीं —”

”समझ जाओगी। सब समझ जाओगी —” व्यंग भरे स्वर में वह बोली, “मैं चकला घर चलाती हूँ। तुम जैसे फूल खरीदना और खरीदकर ग्राहकों को सूंघने के लिए देना मेरा पेशा है समझ गयी। श्यामली भी यही काम करती है। चौधरी तो दलाल था। अपनी दलाली का 5 सौ रुपये मुझसे लेकर चला गया। खैर, अब तुम आराम करो बेटी और फिर मैं जैसा कहूँ वैसा करो —”

”जरा आप ही सोचिए शर्माजी — कैसी हुई होगी यह सब सुनकर मेरी मानसिक स्थिति ? बड़ा आघात लगा था हृदय को। क्या से क्या हो गया था। क्या सोचा था और क्या हो गया था ? आवाक् और स्तब्ध खड़ी रही न जाने कब तक। फिर सोचने लगी, हो सकता है, मेरे भाग्य में वेश्या होना ही लिखा हो। मगर शांति निकेतन की मेधावी छात्रा को वेश्या भी होना होगा, इसकी कल्पना मैंने कभी नहीं की थी —”

लाल मुकुर टीटागढ़ और बैरकपुर के बीच एक बदनाम बस्ती है। जहाँ सुन्दर शरीर, यौवन और सौन्दर्य का सौदा होता है। जिस्म फरोशी के गर्म माहौल में जहाँ कच्ची कलियां झुलस जाती हैं और खिले हुए फूल मुरझा जाते हैं।

एक सजे-धजे कमरे में बिस्तर पर मैं सिर झुकाए बैठी थी। एकाएक आहट मिली तो मैंने एक नजर सामने की तरफ डाली एक अधेड़ उम्र का व्यक्ति दरवाजे के अन्दर प्रवेश कर चुका था। बात यह थी कि मुझमें चंचलता थी ही नहीं और नयी आनेवाली लड़कियों की तरह रो भी नहीं रही थी मैं। एकदम गुमसुम और उदास मुझे देखकर वह अनुभवी व्यक्ति समझ गया, ”मैं जरूर किसी भले घर से बहका कर लाई गयी हूँ —”

वह जैसे ही मेरे पास पहुंचा। मैं हड़बड़ा कर उठी और बिस्तर से हटकर एक ओर खड़ी हो गयी। मेरा सारा शरीर कांप रहा था और मेरे गालों पर मोटे-मोटे आंसू ढुलक पड़े थे।

मुझे देखते-ही-देखते उसने शराब की एक छोटी बोतल निकाली और पास ही रखी तिपाई पर से गिलास उठाकर उसमें शराब पीने लगा। क्षण भर में पूरी बोतल खाली कर दिया उसने। अब मैं समझ गई कि आगे क्या क्या होगा ? इसलिए मैं झुककर उसके पैरों से लिपटकर रोती हुई बोली, “मुझे बचा लीजिए बाबा ! मैं तो आपकी बेटी की तरह हूँ।

शांति निकेतन की छात्रा रही हूँ। एम० ए० किया है मैंने । अपनी भूल से मैं इस गंदी जगह आ गयी हूँ । मुझे बचा लीजिए बाबा । वर्ना मैं ...... ।”

शायद उसके लिए बाबा शब्द-सम्बोधन एकदम अप्रत्याशित था । इस संबोधन ने उन्हें भीतर तक हिला दिया । वह बेचैन हो उठे । एक रोती, प्रार्थना करती, असहाय युवती के प्रति अनायास ही उनके हृदय में ममता उमड़ पड़ी । संभवत: पहली बार अपने लम्बे विलासी जीवन नें उन्हें लज्जा महसूस हुई । अचानक पवित्रता की भावना से ओत-प्रोत हो उठे वह ।

”तुमने मुझे बाबा कहा, ”मेरा हाथ थामकर वे मुझे अपने पास बैठाते हुए बोले, ”जीवन में पहली बार किसी ने मुझे बाबा कहा है । मेरा नाम रामबाबू है । मेरे घर में दो बेटे, उनकी बहुएँ और मेरी लड़की है । कोई भी मुझे बाबा या पिता नहीं बुलाता है । यहां तक कि मेरी पत्नी भी मुझसे घृणा करती है ।”

रामबाबू का गला भर आया । उन्होंने अपनी गीली आँखें पोछते हुए पुनः कहा “मैं पढ़ा-लिखा हूँ बेटी । मुझे किसी चीज की कमी नहीं है । अपनी बुद्धि बल से व्यवसाय किया । काफी धन भी कमाया। जायदाद बनाया । अपने दो पुत्रों को विदेशों में उच्च शिक्षा दिलाई —”

”ईश्वर की कृपा से सब कुछ मेरे पास है, लेकिन पत्नी से मेरी नहीं बैठती । इसलिए मैं इस नरक में आने को मजबूर हो गया । मेरी पत्नी ने कभी भी प्यार-स्नेह अपनत्व और सलाह से मुझे रास्ते पर लाने की कोशिश नहीं की । बच्चे भी अपनी माँ की तरह मुझसे घृणा करने लगे और दूर रहने लगे । अपने परिवार की अवहेलना और घृणा के कारण मैं और बहकता गया ।”

“नदिया जिले में मेरी खेती बाड़ी और कई मकान हैं यहाँ भी मेरा अपना काफी लम्बा-चौड़ा व्यवसाय है । परिवार के लोग नदिया में रहते हैं । मेरे दोनों बेटे अच्छे पद पर नौकरी करते हैं ।”

“मैं स्वयं बहुत दुखी रहता हूँ। तुम यहाँ कैसे आ पहुँची? मुझे बताओ बेटी, मैं तुम्हारे लिए कुछ सोचूँ।”

मैंने अब राम बाबू की तरफ गौर से देखा तो उनके विश्वास में आकर मैंने अपनी आपबीती सुना डाली ।

रामबाबू ने वेश्यालय की मालकिन को 4 हजार रुपये देकर मुझे मुक्त करा दिया । वह मुझे अपने घर ले आये । अपने काफी लम्बे चौड़े मकान में वे नौकरों के साथ अकले रहते थे । मेरे आने पर उन्होंने एक नौकरानी का भी इन्तजाम कर दिया । मैं उनकी भांजी के रूप में वहाँ रहने लगी । अब कभी मैं कलकत्ते जाकर नौकरी की इच्छा प्रकट करती तो रामबाबू बच्चों की तरह रोने लगते थे । वास्तव में मैं उन्हें पिता की तरह मानती थी उनका हर तरह से ख्याल रखती थी । रामबाबू को अपने बच्चों से प्यार नहीं मिला था और अब मैंने उनके इस

अभाव की पूर्ति कर दी थी। उन्होंने मेरे कहने पर शराब पीना कम कर दिया था। अय्याशी से तो बिल्कुल विरक्त हो गये थे, फिर भी लोगों को उनके सादे आचरण पर विश्वास नहीं हुआ। इसलिए लोग मुझको उनकी रखैल ही समझते थे।

जब यह खबर नदिया पहुँची तो उनके घरवालों को बहुत बुरा लगा। रामबाबू कभी-कभी समय निकालकर नदिया चले जाते थे। जब मेरे आने के बाद वह नदिया पहुँचे तो उनके परिवार वालों ने मेरे साथ उनके अवैध संबंध की चर्चा करते हुए भविष्य में नदिया आने के लिए मना कर दिया। घर वालों के इस आरोप से रामबाबू तिलमिला उठे और उसी दिन पुन: वहाँ पैर न रखने की प्रतिज्ञा करके वापस लौट आये।

उन्होंने यह बात मुझको नहीं बताई, क्योंकि उन्हें भय था कि कहीं मुझे पता चल गया तो मैं रूष्ट होकर कहीं चली जाऊँगी। लेकिन इस बात का पता मुझे काफी दिनों बाद चला। उस समय लग गया होता तो सचमुच मैं कहीं न कहीं चली जाती। खैर रामबाबू ने मेरी सुख-सुविधा और सुरक्षा के लिए मिथ्या आरोप का वह जहर अकेले ही पी लिया था।

एक दिन रामबाबू ने मेरे सामने अपनी इच्छा प्रकट की, कि वह किसी सुयोग्य लड़के से उसका विवाह कर घर जमाई रखना चाहते हैं। मैंने उनके इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। मेरे मन में घोर विरक्ति भर गयी थी अकारण संसार समाज के प्रति, हो सकता है इसका कारण अब तक के कटु अनुभव रहे हों। पूरे १५ वर्ष तक मैं रामबाबू के सान्निध्य में रही। उन्होंने मुझे पिता का भरपूर स्नेह प्यार और दुलार दिया। मैंने भी एक योग्य पुत्री की तरह उनके प्रति कर्तव्य का पालन किया। एक दिन अचानक उनको दिल का दौरा पड़ा। मैंने उन्हें तुरन्त कलकत्ता नर्सिंग होम में दाखिल करवाया। रामबाबू ने अपनी अस्वस्थता की सूचना अपने घरवालों को देने की कोई जरूरत नहीं समझी। मेरे आग्रह करने पर भी वह टाल गये। मैंने ही उनकी सेवा की।

रामबाबू का अपनी पत्नी और बच्चों से कोई संबंध नहीं रह गया था।

रामबाबू यह समझ गये थे कि वे अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकेंगे इसीलिए मेरे भविष्य की चिंता उन्हें अधिक सता रही थी। वे मेरी आर्थिक व सामाजिक सुरक्षा का प्रबन्ध करने के लिए बेचैन हो उठे।

धीरे-धीरे समय बीतता गया। रामबाबू मेरी सेवा से काफी प्रसन्न थे। एक दिन उन्होंने मुझे एक लिफाफा देते हुए कहा, ”बेटी मैंने यहाँ की अपनी सारी सम्पत्ति तुम्हारे नाम कर दी है। व्यवसाय मेरे न रहने पर मेरा विश्वस्त नौकर संभाल लेगा। तुम्हें कोई कठिनाई नहीं उठानी पड़ेगी। मैं इससे बढ़कर तुम्हें कुछ नहीं दे सकता हूँ। जब कभी तुम्हें कोई परेशानी हो, मेरे मित्र वकील दुलालचन्द्र से मिल लेना वे तुम्हारी मदद करेंगे। यदि तुम जीवन साथी की कमी महसूस करो तो इसके लिए भी तुम दुलाल चन्द्र से ही मिलना। ये तुम्हारे लिए योग्य साथी दूंढ देंगे। मैंने उन्हें समझा दिया है —”

मैंने इसकी कभी कल्पना भी नहीं की थी। मैं राम बाबू की महानता से चकित रह गयी। मैंने इसका विरोध करना चाहा, लेकिन रामबाबू के क्रोध के भय से खामोश रही। इसके

ठीक दो महीने बाद रामबाबू की मृत्यु हो गयी। उनकी मृत्यु के समय मेरे सिवाए वहाँ कोई न था। उस समय मेरी वेदना, मेरी पीड़ा और मेरे दुख की कोई सीमा न थी। मैं असहाय-सी उनके सौम्य मुख की ओर देखती रही। उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर उनके परिवार का एक भी व्यक्ति नहीं आया। मुझे ही रामबाबू की अंत्येष्टि एवं क्रिया करनी पड़ी। लेकिन जब उनके परिवार वालों को यह पता चला कि मृत्यु के पूर्व रामबाबू ने अपनी निजी संपत्ति मेरे नाम कर दी है, तो उनके बड़े लड़के ने अदालत में लिखित आवेदन-पत्र दिया कि पाखी चक्रवती नामक एक वेश्या ने जबरन उनके पिता रामबाबू के सम्पत्ति अपने नाम करवा कर हड़प लिया है।

मेरे पास पुलिस मामले की जांच के लिए आई। मुझको उपरोक्त आरोप की जानकारी मिली तो मेरे दुःख की सीमा न रही। मैंने पुलिस अधिकारी को अपनी व्यथा-कथा सुनाते हुए कहा, ”रामबाबू मेरे पिता के समान थे। उन्होंने मेरे लिए वही किया, जो एक पिता अपनी पुत्री के लिए करता है। मुझे उनकी संपत्ति का कोई लालच नहीं है। उन्होंने बिना मुझसे पूछे, मेरे नाम संपत्ति लिख दी है। उनका दिल न टूटे इसलिए मैंने विरोध नहीं किया था। मैंने निश्चय किया था यह सारी सम्पत्ति उनके घरवालों को लौटा दूँगी। पर उनके घरवालों ने मुझसे न मिलकर हमारे पवित्र रिश्ते पर गंदा आरोप लगाया है। अब मैं वास्तविकता और सत्यता को सामने लाने के लिए मुकदमा लड़ने को तैयार हूँ।” मुकदमा पूरे दो साल तक चला। रामबाबू के मित्र दुलालचन्द्र ने मेरी सहायता की। मुझे वेश्या सिद्ध करने के लिए सोमनाथ ने कोई कसर बाकी नहीं रखा। श्यामली से लेकर चकलाघर की मालकिन तक की गवाही दिलवाई उन्होंने अदालत में।

अन्त में मुकदमा का फैसला मेरे पक्ष में हुआ। फैसले के समय दुलालचन्द भी मौजूद थे। मुकदमा जीतने के बाद मेरी खुशी का ठिकाना न रहा। मुझे सम्पत्ति पाने की नहीं, बल्कि अपने उपर लगे कलंक के धुल जाने की खुशी थी। मैंने रामबाबू की सारी सम्पत्ति सोमनाथ और उनके छोटे-भाई विपिन कुमार के नाम तुरन्त उसी समय लिख दी।

रामबाबू के परिवारवालों की गलतफहमी दूर हो गयी। मेरा मन रो उठा भी। भीतर न जाने कैसी रिक्तता भर गयी थी। मेरे सामने समाज का घिनौना रूप और परिवार का स्वार्थ भरा लोलुप रूप प्रकट हो चुका था। मैं दूसरे ही दिन बिना किसी को कुछ बताए हरिद्वार के लिए चल पड़ी। यहाँ मुझे कुछ शांति मिली। एक दिन जब मैं ऋषिकेश में गंगा किनारे बैठी थी, तो उसी समय एक साधु से मेरा परिचय हो गया। उस साधु का नाम था दिव्य भारती। वे मुझे अपने आश्रम में ले गये। मेरे आग्रह पर उन्होंने मुझे संन्यास की दीक्षा दी। मैं छः साल उनके आश्रम में रही और योग और वेदान्त का गहरा अध्ययन और चिन्तन किया मैंने। जो थोड़ा बहुत मन में आकर्षण था, वह भी समाप्त हो गया।

इतना सब सुनाने के बाद संन्यासिनी हांफने लगी और उसी के साथ सांसें भी तेज चलने लगी। खांसते हुए उसने एक गिलास पानी मांगा। पानी पीकर उसने एक-एक शब्द पर जोर देकर कहा, ”शायद अब मेरा अन्तिम समय आ गया है। मेरी इच्छा थी कि मैं जीवन के अन्तिम क्षणों में काशी में रहूँ और मेरा शरीर गंगा तट पर छूटे। शायद बाबा विश्वनाथ

ने मेरी प्रार्थना सुन ली। इतना कहकर संन्यासिनी ने एक बार मेरी ओर भरपूर निगाहों से देखा और अंधेरी गलियों में कहाँ गुम हो गई, काफी दिनों तक मैं भटकता रहा कि उस सन्यासिनी से दोबारा मुलाकात हो पर ऐसा हो न सका।

अध्याय ९
नाग सिद्धि

सन् १७७९ में भारतीय पुरातत्व अनुसन्धान विभाग की स्थापना ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा हुई थी। उस समय विभाग का सबसे महत्वपूर्ण कार्य था भारतीय शिल्प और मूर्ति-कला की गुमनाम विभूतियों को खोजना तथा अजन्ता, एलोरा खजुराहो एवं वाद्य के प्राचीन मन्दिरों तथा दुर्लभ मूर्तियों की अनुकृतियाँ तैयार करना। इन कार्यो के प्रमुख अधिकारी थे - मि. जैकसन —

मि. जैकसन ने भारतीय पुरातत्व अनुसन्धान की जो मौलिक परम्परा स्थापित की, वह सन् १९४५ तक निर्बाध गति से चलती रही। उसके बाद व्यापक परिवर्तन हुआ विभाग में। अंग्रेज अधिकारियों के साथ-साथ कई भारतीय अधिकारी भी शामिल हो गये उसमें। विभाग का विस्तार हुआ और कार्य प्रणाली में भी भारी हेर-फेर किया गया। उस समय जिन भारतीय अधिकारियों की नियुक्ति की गई, उनमें एक थे - मि. जगदीश चन्द्र लाहा।

लाहा साहब पुरातत्व विषय में विदेश से उच्च शिक्षा प्राप्त कर लौटे थे। वह आकर्षक व्यक्तित्व के धनी और सुदर्शन पुरुष थे, लेकिन थे बड़े ही सरल स्वभाव के। कम-से-कम बोलना और अधिक-से-अधिक काम करना एक विशेष गुण था उनका।

शायद १९४९-५० की बात है। उन दिनों लाहा साहब पश्चिम बंगाल के सरहदी इलाके में पुरातत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्मारकों तथा मंदिरों का विवरण तैयार कर रहे थे। मैं लाहा साहब के सहयोगी के रूप में वहाँ था।

जिस इलाके में वह कार्य हो रहा था, वह राय चौधरी विपिन बिहारी घोषाल की जमींदारी के अन्तर्गत था। राय चौधरी साहब साहित्य, कला, संगीत के अलावा विभिन्न प्रकार के व्यंजनों और सुस्वादु भोजन के भी प्रेमी थे। कलाकारों, संगीतकारों और विद्वानों का सम्मान करना और उन्हें आमंत्रित कर नये-नये सुस्वादु भोजन कराना उनका प्रिय शौक था। इसमें उन्हें अकल्पनीय आनन्द का अनुभव होता था।

राय चौधरी साहब का मुख्य रसोइया था रंजन चौबे। गठीले शरीर का युवक था वह। आयु तीस-बत्तीस से ज्यादा नहीं थी। वह उत्तरी भारत के किसी गांव का रहने वाला था और अनेक तरह के व्यंजन बनाने में उसे महारत हासिल थी। उसका कहना भी कि पूरे देश में उसके जैसा भोजन बनाने वाला कोई दूसरा नहीं है। बात सच ही थी। जिस-जिस व्यक्ति ने रंजन चौबे के हाथ का बना स्वादिष्ट और रूचिकर भोजन किया था, उनके लिए वह एक अविस्मरणीय अनुभव बन गया।

रंजन चौबे को शाकाहारी भोजन के अलावा जो विशिष्ट व्यंजन बनाने में सिद्धहस्तता थी वह था गोश्त — राय चौधरी साहब काफी लम्बे अर्से से गोश्त खा रहे थे, लेकिन जो लज्जत और जो स्वाद उन्हें रंजन चौबे द्वारा बनाए गये गोश्त में मिला था, वह उनके लिए अकल्पनीय था।

मि. लाहा के साथ मैं भी राय चौधरी साहब का अतिथि था, इसलिए प्राय: नित्य ही रात्रिकालीन भोजन में हम लोगों को शामिल होना पड़ता था। मैं गोश्त तो नहीं खाता था, मगर जैसा शाकाहारी भोजन वहाँ मुझे मिलता था, वैसा आज तक कहीं नहीं मिला सचमुच रंजन के हाँथ में पाक शास्त्र की विशेष कला थी। मि. लाहा गोश्त खाते थे। एक दिन उन्होंने मुझसे हंसकर कहा, मि. शर्मा, रंजन चौबे के हाथ का बना गोश्त तुमको अवश्य रखना चाहिए। जिन्दगी भर याद रखोगे।"

राय चौधरी साहब की विशाल हवेली में दुर्गा पूजा का उत्सव बड़े धूमधाम से मनाया जाता था। राय चौधरी साहब को विशेष प्रसन्नता उस समय हुई, जब उस वर्ष विजयादशमी के अवसर पर अपनी हवेली में होने वाली शानदार दुर्गा पूजा के भोज में उन्होंने रंजन चौबे द्वारा तैयार किये गये पच्चीस प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन अपने मेहमानों को खिलाये और उनके अतिथियों ने जी भरकर प्रशंसा की। सबसे ज्यादा प्रशंसा की गयी मांसाहारी व्यंजनों की। इससे राय चौधरी साहब के मन में रंजन चौबे की इज्जत और बढ़ गई थी।

रंजन चौबे प्रतिदिन बड़े सवेरे ही उठकर स्वयं मांस खरीदने बाजार जाता था। फिर कई घण्टे बाद वापस लौटता था। जब वह मांस बनाने लगता, तब किचन में किसी और को नहीं घुसने देता था। उस समय रसोई का सारा काम खुद ही संभालता था।

रंजन चौबे के पहले राय चौधरी साहब के यहाँ का मुख्य रसोइया गंगाराम था। रंजन चौबे ने उसे निकलवा दिया था, इसलिए वह चिढ़ा हुआ था। चौबे के खिलाफ उसका कोई उपाय काम नहीं कर पा रहा था। फिर भी वह मौके की तलाश में था।

दीवाली नजदीक थी। राय चौधरी साहब की हवेली की रंगाई-पुताई हो रही थी। एक रोज सायंकाल राय चौधरी साहब अपने कुछ घनिष्ठ परिचितों के साथ दीवानखाने में बैठे हुए थे। मि. लाहा के साथ मैं भी वहीं उपस्थित था। उसी समय अचानक गंगाराम आ पहुँचा। उसके हाथ में एक पोटली थी। उसने आदर से झुककर राय चौधरी साहब को सलाम किया, फिर चुपचाप एक ओर खड़ा हो गया।

गंगाराम को अचानक आया देखकर राय चौधरी साहब ने पूछा, "क्या बात है कैसे आये ?"

"आज्ञा मिले तो अन्नदाता की सेवा में एक प्रार्थना करने के लिए आया हूँ।" गंगाराम विनम्र स्वर में कहा, "लेकिन सरकार जो कुछ भी कहूँगा, रंजन चौबे के सामने कहूँगा। इसलिए प्रार्थना है कि चौबे को भी यहाँ बुला लिया जाये, तभी सारी बातें साफ होंगी —"

राय चौधरी साहब को कौतूहल हुआ। उनके आदेश पर तुरन्त ही रंजन चौबे को भी बुला लिया गया। इसके बाद उन्होंने पूछा, "अब बोलो गंगाराम, तुम क्या कहना चाहते हो ?"

हे अन्नदाता ! आप चौबे जी से पूछें - यह आपके लिए किसका मांस पकाया करते हैं ? कहकर गंगाराम विजेता की दृष्टि से रंजन चौबे की ओर देखने लगा।

रंजन चौबे का चेहरा स्याह पड़ गया। उसने कहा - "सरकार ! पकाता तो मांस ही हूँ। अब

किसका मांस पकाता हूँ और कैसे पकाता हूँ यह जानने के लिए गंगाराम को क्यों बेचैनी हो रही है, जबकि वह अब आपकी सेवा में भी नहीं है। फिर अपनी कला इसे क्यों बताऊँ, सरकार !" राय चौधरी साहब को बात युक्ति संगत लगी। उन्होंने गंगाराम से पूछा, "क्यों गंगाराम, अब तुम क्या चाहते हो ?"

"मै सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूँ कि हुजूर के साथ विश्वासघात किया जा रहा है। बकरे के मांस की जगह सरकार को यह चीज खिलाई जा रही है... ।" बात पूरी करते-करते गंगाराम ने साथ में लाई हुई पोटली खोलकर सामने रख दी।

राय चौधरी साहब और वहाँ उपस्थित सभी लोगों की आँखें विस्मय और आश्चर्य से फटी रह गई। सामने एक भयानक काले सांप का फन और उतरी हुई खाल के साथ उसका मांस पड़ा था।

राय चौधरी क्रोध से तमतमा उठे। वह लगभग कांपते हुए रंजन चौबे की ओर उन्मुख होकर एकदम गरज पड़े, "नमकहराम ! गोश्त की जगह तू काला विषैला नाग खिलाता है...दगाबाज... ।"

"यह सब झूठ है, अन्नदाता ?" रंजन चौबे दबी जबान से बोला, "मेरे आने के बाद गंगाराम को नौकरी से हटा दिया गया, इसलिए यह मुझसे दुश्मनी रखता है। सरकार, जरा आप ही सोचिए, सांप कोई ऐसा जीव तो नहीं कि गये और तुरन्त पकड़ लाए। फिर रोज-रोज सांप का मिलना भी तो मुश्किल है।"

मि. लाहा ने भी रंजन के हाथ का बना मांस खाया था - एक बार नहीं कई बार। गंगाराम की बात सुनकर उनका चेहरा स्याह पड़ गया था। सांप के फन की ओर देखते वह हकलाकर बोले, "गंगाराम जरूर झूठ बोल रहा है... सांप खाकर भला कोई जिन्दा कैसे रह सकता है ?"

"झूठा मैं नहीं साहब रंजन चौबे है।" मि. लाहा की ओर ताककर वह दृढ़ता से बोला, "आप खुद इससे पूछें - नदी के उस पार जो झाड़ियाँ है, वहाँ जाकर इसने होठों-ही-होठों में कोई मंत्र बुदबुदाते हुए तीन बार "आओ, आओ, आओ" नहीं कहा था?"

राय चौधरी साहब फिर भड़क उठे। उन्होंने क्रोध से कांपते हुए पिस्तौल निकाल ली। कड़ककर रंजन चौबे से बोले, "बोलो चौबे क्या यह सच है ? तुम गोश्त लाने बाजार नहीं, बल्कि नदी के उस पार मंत्र पढ़ने गये थे ?"

इस बार रंजन चौबे खामोश रह गया। उसने सकपकाकर सिर झुका लिया।

उसको चुप देखकर गंगाराम की हिम्मत बढ़ी। वह अदब से बताने लगा, "सरकार मैं आज सवेरे झाड़ी के पीछे छिप कर रंजन चौबे का सारा तमाशा देख रहा था। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि इसके तीसरी बार "आओ" कहने पर यही काला भुजंग नाग आकर इसके सामने रूक गया और इसने इस जहरीले नाग को ऐसे पकड़ लिया मानो वह रस्सी हो। इसके बाद इसने चाकू से इसका फन काटकर खाल उतारी। फिर कुछ मांस लेने के बाद

फन और बाकी मांस पानी में फेंककर यह लौट आया। इसके चले आने के बाद मैंने पानी में से दोनों चीजें निकाली और अन्नदाता के चरणों में हाजिर हो गया। अगर मेरी बात गलत हो सरकार, तो मुझे इसी वक्त सूली पर चढ़ा दें , मैं तैयार हूँ।”

अब तक रंजन चौबे का चेहरा काला पड़ गया था। उसका सारा शरीर पत्ते की तरह कांप रहा था और माथे पर पसीना चुहचुहा आया था।

राय चौधरी साहब का चेहरा क्रोध-से लाल हो उठा था, फिर भी भरसक अपने को संयत करके बोले, ”देखो चौबे, मैं कलाकारों की इज्जत करता हूँ और उनसे मुझे बड़ी हमदर्दी है। मुझे लगता है कि तुम सर्प विद्या के माहिर कोई नायाब फनकार हो। अगर तुम सारा मामला सच-सच बता दोगे तो तुम्हें न सिर्फ जिन्दा छोड़ दिया जाएगा, बल्कि भरपूर इनाम भी दिया जाएगा। लेकिन झूठ बोलोगे तो सोच लो - इस पिस्तौल की सारी गोलियाँ तुम्हारे बदन को छलनी कर देंगी।”

रंजन चौबे रोने लगा।

राय चौधरी साहब ने कोमल स्वर में कहा, ”रोने से कोई लाभ नहीं, चौबे। जो कहना हो, निर्भय होकर कहो। डरने की कोई जरूरत नहीं। मैं तुमको विश्वास दिलाता हूँ कि तुम्हें कुछ न होगा —”

”सरकार...अन्नदाता...।” रंजन चौबे कातर स्वर में कहने लगा, ”मेरे माता-पिता कौन हैं - यह मैं नहीं जानता। जब मैंने होश संभाला तो अपने को एक कापालिक के संरक्षण में पाया। वह मयूराक्षी नदी के किनारे एकान्त स्थान में कुटिया बनाकर रहता था। उसी ने मुझे पाल पोसकर बड़ा किया। तंत्र-मंत्र की कई चमत्कारी विद्याएं सिखाई और मुझसे कई प्रकार की कठोर साधनाएं भी कराई। फिर वह अपने साथ हिमालय ले गया। वहाँ एक गुफा में उस कापालिक के गुरू रहते थे। उनकी उम्र दो सौ साल थी। कापालिक के आदेश पर मैंने उसके गुरू की बहुत सेवा की। अन्त में प्रसन्न होकर उसने मुझे ”नागमणि विद्या” की सिद्धि दी, अन्नदाता। उस सिद्धि के बल पर दूर-दूर से सांप आकर मेरे पास इकट्ठे हो सकते हैं। मैं चाहूँ तो अपनी उस सिद्धि के बल पर ”नागराज” को भी तुरन्त बुला सकता हूँ। इतना ही नहीं, दाता सर्प दंश से मरे हुए व्यक्ति को मैं एक महीने के बाद भी जीवित कर सकता हूँ।”

राय चौधरी साहब कुछ देर तक सोचते रहे, फिर गम्भीर स्वर में बोले, ”अगर तुम्हारी ये सब बातें सच है तो कल हम तुम्हारी यह कला अवश्य देखेंगे, चौबे।”

दूसरे दिन रंजन चौबे के बताए अनुसार नदी के किनारे घनी झाड़ियों के पास बड़ा-सा फर्श बिछाया गया। फर्श के बीच में चांदी की एक बड़ी-सी चौकी पर सोने के कटोरे में दूध भरकर रख दिया गया। कुछ फासले पर राज परिवार और राज कर्मचारियों के साथ राय चौधरी साहब खड़े थे। उनके निकट ही मि. लाहा के साथ मैं भी खड़ा होकर तमाशा देख रहा था। ”नाग विद्या” से सम्बन्धित तंत्र-मंत्र की कई पुस्तक मैंने पढ़ी थी और उसके विषय में बहुत कुछ सुना भी था, लेकिन ”नागसिद्धि” का चमत्कार इस प्रकार कभी देखने

को भी मिल जायेगा - मैंने इसकी कल्पना तक नहीं की थी।

मैंने देखा - रंजन चौबे, धीरे-धीरे जाकर चांदी की चौकी के पास खड़ा हो गया और कोई मंत्र बुदबुदाने लगा। कुछ देर बाद मंत्रोच्चारण के साथ-साथ वह चारों ओर काली उड़द के दाने फेकता हुआ जोर-जोर से "आओ-आओ-आओ" का उच्चारण भी करने लगा। फिर सबकी आँखों के सामने एक भयानक इन्द्रजाल-सा घटित हो गया। सबने विस्मय से फटी-फटी आँखो से देखा- रंजन चौबे द्वारा चारों ओर उड़द के दाने फेंककर 'आओ-आओ-आओ' का उच्चारण करते ही, चारों दिशाओं से नाना प्रकार के सैकड़ों नाग आकर फर्श पर इकट्ठे हो गये। वे भिन्न-भिन्न प्रकार और भिन्न-भिन्न रंगों के थे। कुछ तो काफी बड़े थे और कुछ जहरीले भी। मैंने देखा - काले रंग के एक भयंकर सर्प के फन पर बालों की लम्बी-लम्बी लटें भी थी।

सबसे अन्त में सुनहरे रंग का एक अति सम्मोहक नाग आया। उसकी लम्बाई लगभग एक हाथ की थी। फन छोटा था। आँखे माणिक की तरह चमक रही थीं और उसके सारे शरीर से तेज फूट रहा था। वह बार-बार अपनी जीभ को लपलपा रहा था। उसे देखते ही सब साँपों ने अपने-अपने फन झुका लिए। उन सर्पों के बीच से रास्ता बनाता हुआ वह तेजस्वी सर्प चाँदी की चौकी पर दूध से भरे सोने के कटोरे के पास पहुँचा और दूध पीने लगा।

राय चौधरी साहब को लगा कि रंजन चौबे उनसे जिस नागराज की चर्चा कर रहा था, सुनहरे रंग का वही तेजस्वी और भव्य नागराज उनके सामने दूध पी रहा है। उन्होंने उसे और पास से देखना चाहा, अतः रंजन चौबे की ओर देखकर बोले, "उस सुनहरे सर्प को पकड़कर मेरे पास तो ले आओ, चौबे।"

रंजन चौबे हाथ जोड़कर गिड़गिड़ा उठा, "यह असम्भव है, अन्नदाता। नागराज हिमालय के निवासी हैं। इनकी उम्र कम-से-कम दो हजार वर्ष है। उनको छेड़ने पर मेरे प्राण नहीं बचेंगे —"

तुम सांपों के फनकार हो, चौबे ! तुम्हें नागमणि विद्या सिद्ध है। राय चौधरी साहब बोले, तुम सांपों पर अपना हुक्म चला सकते हो। जाओ, उस सांप को पकड़ लाओ। तुमको कुछ नहीं होगा।

रंजन चौबे कुछ क्षण स्तब्ध खड़ा रहा, फिर जोर से सांस लेकर उसने कहा, ठीक है अन्नदाता, लेकिन अगर नागराज को पकड़ने में मेरी मृत्यु हो जाये तो आपसे निवेदन है कि मेरे शव को जलवाया न जाए, बल्कि उसे काले बैल की खाल में रखकर टाँके लगवा दिया जाए और तुरन्त मेरी बहन रमा को बुलवा दें। वह भी कापालिक गुरू की शिष्या है और मेरे साथ हिमालय में भी रही है। वह बहुत बड़ी तांत्रिक है। इस समय आसाम के जोरहाट बाजार में रहती है वह।

राय चौधरी साहब हंसने लगे। बोले, तुम व्यर्थ ही डर रहे हो चौबे। तुम्हें कुछ भी न होगा।

रंजन चौबे का चेहरा भय से विवर्ण हो गया था। उसे अपनी मौत सामने खड़ी नजर आ रही थी, मगर वह विवश था।

अब तक सुनहरे रंग का वह तेजस्वी सर्प कटोरे का दूध पी चुका था और सोने का वह कटोरा उसके महाविष से स्याह पड़ गया था। इसके बाद जैसे ही नागराज वापस लौटने के लिए मुड़ा, उसी समय रंजन चौबे ने उसे पकड़ने के लिए उसकी तरफ हाथ बढ़ाया। लेकिन पलक झपकते नागराज ने क्रोध से फुफकारकर रंजन चौबे के हाथ में डंस लिया। और साँपों के बीच से रास्ता बनाता हुआ आनन-फानन में गायब हो गया। उसके जाते ही वहाँ इकट्ठे अन्य सब सर्प भी जैसे अदृश्य में विलीन हो गये।

रंजन चौबे का शरीर निष्प्राण हो गया। नागराज का महाविष उसके सारे शरीर में फैल गया था, जिससे देह काली पड़ गई थी। उसकी इस भयानक मृत्यु से वहाँ उपस्थित सभी लोगों का चेहरा फक पड़ गया था।

रंजन चौबे की इस आकस्मिक मृत्यु से राय चौधरी साहब भी सहसा स्तब्ध और भौचक्के रह गये थे। उन्हें इस घटना से गहरा मानसिक आघात लगा था। उन्होंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि सांपों का वह नायाब फनकार इस तरह सांप के ही जहर का शिकार हो जाएगा।

लेकिन अब क्या हो सकता था ?

राय चौधरी साहब के आदेश से रंजन चौबे की लाश बड़ी सावधानी से हवेली में लाई गयी, फिर उसको जलाने के बजाय रंजन चौबे को दिये गये वचन के अनुसार उसका शव काले बैल की खाल में रखकर उस पर टाँके लगा दिये गये।

उसी दिन मुझे और स्टेट के एक विश्वसनीय कर्मचारी को रंजन चौबे की बहन रमा को बुलाने के लिए जोरहाट भेज दिया गया। मुझे भी रमाबाई से मिलने की बड़ी उत्सुकता थी।

पूरे तीस घण्टे की उबाऊ यात्रा के बाद हम जोरहाट पहुँचे। उस समय जोरहाट आसाम का एक मामूली कस्बा था। आठ-दस हजार से ज्यादा आबादी नहीं थी वहाँ की। मर्दो के बजाय औरतों की संख्या ही अधिक थी। उस जमाने में जोरहाट और उसके आसपास का इलाका जादू-टोना और तंत्र-मंत्र जानने वाली औरतों का गढ़ समझा जाता था। इसलिए उधर जाने से लोग कतराते थे।

जब मैं जोरहाट पहुँचा, उस समय सांझ का स्याह कालिमा बिखर चुकी थी। रमा का मकान खोजने में अधिक परेशानी नहीं हुई। बाजार के बाहर बहुत बड़ा-सा कच्चा तालाब था। उसी के दूसरी ओर आठ-दस कच्चे खपरैल के घर थे। काली-शंकर का एक छोटा-सा मन्दिर भी था। उसी मन्दिर के बगल वाला घर रमा का था।

रमा अकेले ही रहती थी वहाँ। उसकी उम्र पच्चीस-छब्बीस से ज्यादा नहीं थी। मंझोले कद का खूब गठा हुआ शरीर। लालिमा लिए गोरा रंग। साधारणत: सुन्दर और आकर्षक युवती थी वह। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में एक अजीब-सा तेज और गहरा सम्मोहन भी था

।

जब उसे बतलाया गया कि उसके भाई की मृत्यु हो गई है तो एकबारगी स्तब्ध रह गयी वह । फिर उसकी आँखों से आँसू झरने लगे और वह सिसक-सिसककर रोने लगी । लेकिन किसी तरह उसे धैर्य बंधाकर मैंने बताया कि रंजन चौबे की लाश को जलाया नहीं गया है, बल्कि उसकी अन्तिम इच्छा के अनुसार काले बैल की खाल में रखकर टाँके लगा दिये गये है । यह सुनते ही वह हमारे साथ चलने के लिए तैयार हो गई ।

तीसरे दिन रमा को साथ लेकर मैं वापस लौटा तो राय चौधरी साहब बेसब्री से प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने उसके भाई रंजन चौबे की अकाल मृत्यु पर शोक व्यक्त करते हुए कहा ”जो होना था, सो हो गया । जितने रूपये चाहो, मुआवजे के रूप में देने को मैं तैयार हूँ —”

रमा ने सम्मोहन-भरी आँखों से राय चौधरी साहब की ओर देखकर कहा, “मुझे रूपये नहीं चाहिए, राय राजा । आपने मेरे भाई के उस चमत्कार को देखा, जिस पर आपको विश्वास नहीं था, लेकिन अब मैं आपको वह चमत्कार दिखाऊँगी जो आपको एकदम सपने जैसा लगेगा ।”

राय चौधरी साहब कुछ समझे नहीं ।

“आप तीन बड़े कड़ाहों में काली गाय का शुद्ध दूध मंगवा दे,” रमा बाई ने सोचते हुए कहा, “और मेरे भाई की लाश को भी बैल के पेट से निकलवा दें ।”

रमा की आज्ञा का तुरन्त पालन हुआ ।

दोपहर का समय था । रमाबाई का चमत्कार देखने के लिए हवेली के सामने हजारों लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई थी । राय चौधरी साहब, उनके परिवार के लोग और राज-कर्मचारियों के अलावा कई अफसर भी वहाँ उपस्थित थे।

सब आँखें फाड़े ताक रहे थे - रमा ने दूध से भरे एक कड़ाहे में किसी जड़ी का पीला-सा चूर्ण डाला, फिर रंजन चौबे की लाश भी उसी में डलवा दी । कड़ाहे का सारा दूध तुरन्त विष के प्रभाव से नीला हो गया ।

दूसरे और तीसरे कड़ाहे में भी रमा ने यही क्रिया की, लेकिन तीसरे कड़ाहे का दूध नीला नहीं पड़ा । उसमें से रंजन चौबे की लाश निकाली गई तो सबने देखा कि उस पर छाई महाविष की कालिमा मिट चुकी थी और अब ऐसा लगता था कि मानो रंजन चौबे गहरी नींद सो रहा हो ।

इसके बाद रमा अपने भाई के सिरहाने बैठ गई और कोई मंत्र पढ़ने लगी । साथ-साथ रहकर वह शव को हिलाती-डुलाती भी जा रही थी । अचानक आकाश में जोर से बादल गरजने जैसे आवाज हुई और उस भयंकर आवाज के साथ ही रंजन चौबे अंगड़ाई लेकर सहसा उठकर बैठ गया ।

देखने वाले एकदम-स्तब्ध रह गये । राय चौधरी साहब भी एकाएक कुछ नहीं बोल सके ।

अद्भुत चमत्कार था वह। बड़ा अविश्वसनीय, किन्तु एकदम सत्य। एक नहीं हजारों लोग खड़े देख रहे थे - दस दिन पूर्व सर्पदंश से मरा व्यक्ति जी उठा। इससे पहले ऐसी घटना न किसी ने देखी थी, न सुनी थी। उपस्थित लोग काफी देर तक जड़वत अवाक खड़े रहे।

मैं पहले ही रमा पर मुग्ध था। फिर उसका यह अलौकिक चमत्कार देखकर तो एक प्रकार से उसका मुरीद ही हो गया। असम्भव इस प्रकार सम्भव कैसे हो गया, यह प्रश्न बार-बार मेरे मन-मस्तिष्क में चक्कर काटने लगा। मैं यह भी जानने को उत्सुक था कि मरने के बाद रंजन चौबे दस दिनों तक किस स्थिति में रहा था ?

राय चौधरी साहब ने उस रोज हवेली में एक विशेष समारोह का आयोजन किया और उसी समारोह में रंजन चौबे तथा उसकी बहन रमा का सम्मान करके पुरस्कार भी दिया। उन्होंने तो दोनों से यह भी आग्रह किया कि उन्ही के इलाके में बस ही जाएं, लेकिन दोनों ने उनका आग्रह अस्वीकार कर दिया।

वहाँ उपस्थित अंग्रेज अफसरों में राय चौधरी साहब तो एक मित्र थे- पैट्रिक ट्रेसी। इस चमत्कार का सबसे ज्यादा प्रभाव उन्हीं पर पड़ा था। उन्होंने लन्दन से प्रकाशित होने वाले एक प्रमुख अंग्रेजी समाचार-पत्र “सैटरडे मार्निंग स्टार” में आँखों देखी इन तमाम घटनाओं को प्रकाशित कराया तो वहाँ तहलका मच गया था। बाद में मि. ट्रेसी रंजन चौबे और रमा से उनकी अलौकिक शक्ति का रहस्य जानने के लिए मिले तो वे दोनों केवल हंसकर रह गये थे।

मेरे साथ भी उन दोनों ने ऐसा ही व्यवहार किया। रमा कुछ भी बतलाने को तैयार नहीं हुई, मगर मैं कहाँ मानने वाला था। मैंने तुरन्त ही रंजन चौबे और रमा के कापालिक गुरू की खोज शुरू कर दी और पूरे चार साल के अथक परिश्रम के बाद वह कापालिक मुझे मिल भी गया। उसका नाम था भैरवानन्द। उन दिनों वह कापालिक अरूणाचल प्रदेश की एक घाटी में रह रहा था।

भैरवानन्द कापालिक ने जो कुछ बतलाया उसे सुनकर एकबारगी स्तब्ध रह गया मैं। उसके कथनानुसार रंजन चौबे और रमा पिछले जन्म में नाग और नागिन थे। दोनों इच्छाधारी थे। जब जैसे इच्छा हो, पलक झपकते वे मनचाहा रूप धारण कर सकते थे। यह इच्छासिद्धि केवल उन्हीं नाग-नागिनों को प्राप्त होती है जिनकी उम्र एक हजार वर्ष से ज्यादा हो जाती है।

एक बार उन दोनों को न जाने क्यों मानव-रूप धारण करने की इच्छा हो आई और यह इच्छा उत्पन्न होते ही वे दोनों मयूराक्षी के तट पर बालक और बालिका के रूप में प्रकट होकर खेलने लगे। वहीं एक दिन अचानक भैरवानंद कापलिक की नजर उन पर पड़ गई। वह तुरन्त उनका रहस्य समझ गया। इसके बाद उसने उसी क्षण अपने मंत्र-बल से उन दोनों की इच्छा-शक्ति को समाप्त कर दिया, ताकि वे अपने को पुन: नाग-नागिन के रूप में परिवर्तित न कर सके।

कापालिक ने ऐसा क्यों किया यह तो उसने नहीं बतलाया, लेकिन इतना अवश्य कहा कि वे

दोनों भाई-बहन अब उसके मंत्र-बल की सीमा के बाहर हो चुके है तथा सम्भव है वे फिर कहीं नाग-नागिन के रूप में विचरण कर रहे हो ।

खैर ! इन बातों में कितनी सत्यता थी यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन मेरी जिज्ञासा ज्यों की त्यों रह गई । उसका समाधान न हो सका । जब मैंने मि. लाहा को ये सारी रहस्यमय बातें बताई तो वह सुनकर दंग रह गये थे । फिर जोर से सांस लेकर कहने लगे, ''मि. शर्मा, जो कुछ भी हो, रंजन चौबे के हाथो का बना खाना खासतौर से मांसाहारी व्यंजन का स्वाद मैं जिन्दगी-भर नहीं भूल सकूँगा । निश्चय ही उसका स्वाद अद्वितीय था... अलौकिक था —''

अध्याय १०
जब श्मशान से शव गायब हो गया

काली रात का घुप्प अंधेरा। बंग भूमि का श्मशान घाट। एकाएक मेरी निगाह बगल की तरफ पड़ी, तो देखा वहाँ दस-बारह लोग मृत शरीर को लेकर आये थे। उसे जमीन पर रखकर वे लकड़ियों की चिता बनाने लगे। तभी बड़े जोरों की बरसात शुरू हो गई। बरसात से बचने के लिए शव के साथ आये लोग वहीं नजदीक में एक शेड के नीचे जाकर खड़े हो गये। बारिश बन्द होने के बाद सभी लोग चिता के पास लौट आये। परन्तु एक आश्चर्यजनक घटना हो गई। वहीं पड़ी लाश अदृश्य हो गयी थी। यह अजीब और डरावनी घटना देखकर शव के साथ आये सभी लोग भय कंपित होकर शहर की ओर भूत-भूत चिल्लाते हुए भागने लगे।

यह घटना अगस्त १९३१ की है।

पूर्व बंगाल में नारायणगंज तहसील अन्तर्गत कोमिल्ला गांव के निवासी विपिन चन्द्र भट्टाचार्य एक बड़े जमींदार थे। उनके पास काफी जमीन-जायदाद थी, विपिन बाबू बहुत ही सात्विक तथा उदार प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उनके पास जो भी मदद मांगने आता, वह झोली भरकर ही लौटता। विपिन बाबू समारोह मनाने के काफी शौकिन थे। प्रतिवर्ष उनके यहाँ काली पूजा का समारोह धूमधाम से बड़े पैमाने पर मनाया जाता था। साथ में उसी दिन गरीब लोगों को अपार धन दान दिया जाता। इसलिए दानवीर तथा उदार हृदय के जमींदार विपिन बाबू को गांव के लोग बहुत चाहते थे।

विपिन बाबू की पत्नी रेणुका देवी शीलवान, मिलनसार और चरित्र सम्पन्न थी। उनके मुँह से कभी क्रोधमय शब्द नहीं निकलता था। उनकी दया भावना को देखकर गांव के लोग माता जी कहते थे।

लेकिन सुख और शान्ति के साथ विपिन बाबू अपना जीवन जरूर व्यतीत कर रहे थे, परन्तु उनके सुख में एक बड़ी कमी थी। कमी का कारण था परिवार में कोई सन्तान न होना। इसके लिए उन्होंने यज्ञ-प्राग, पूजा एवं मनौती आदि कितने उपाय किये, लेकिन वे सफल नहीं हुए। विपिन बाबू की ढलती उम्र के ख्याल से सन्तान होने की सम्भावना और कम होने लगी। जिससे उनकी उदासी बढ़ती ही रही। तभी एक दिन संयोग से एक कापालिक उनके घर आया। बंगाल के शैव योगियों को कापालिक कहते हैं। वे काली माता के उपासक होते हैं। अपने को देह-दण्ड देने वाले ये कापालिक अमावस्या की रात में श्मशान में जाकर मंत्रों की साधना से सिद्धियाँ प्राप्त कर लेते हैं।

विपिन चन्द्र ने उस कापालिक का स्वागत किया। सन्तान के अभाव में उनकी उदासी देखकर कापालिक ने अपने झोले से एक फल निकालकर विपिन चन्द्र को दिया और कहा - “काली माता की कृपा का यह एक मंगित फल है। रेणुका देवी अगर इसे खा लेगी, तो सन्तान की प्राप्ति अवश्य होगी।”

विपिन चन्द्र ने कापालिक का धन्यवाद देते हुए उसका यथोचित सम्मान किया फिर उसके चले जाने के बाद रेणुका देवी ने बड़ी श्रद्धा से वह फल खाया।

आश्चर्य की बात है। ठीक नौ महीने बाद उन्होंने एक सुन्दर तथा स्वस्थ बालक को जन्म दिया। पुत्र के जन्म के अवसर पर खुशियों में मिठाई और गरीबों को कपड़े बांटे गये। उस दिन का समारोह अपूर्व था। पूरे गांव को मिष्ठान भोजन प्राप्त हुआ। संयोगवश, उस दिन कापालिक भी उपस्थित था। उसका सम्मान 'न भूतो न भविष्यति' जैसा रहा। उस जातक की हस्तरेखायें तथा ज्योतिष देखकर कापालिक व्यथित हुआ। विपिन चन्द्र भी व्यथित हुए, फिर एक वार्तालाप के दौरान विपिन चन्द्र से कापालिक ने कहा - "इस बालक के भाग्य में मातृ सुख नहीं लिखा है। सोलहवें साल में इस पर बड़े भारी संकट आने की सम्भावना है, लेकिन आप इसके लिए चिंता मत करिए। उस संकट से मैं इसे मुक्त करूँगा।" इतना कहकर वह कापालिक बड़ी तेजी से चलता बना।

लड़के का नाम सुरेन्द्र रखा गया। कापालिक के कथनानुसार पुत्र-जन्म के बाद थोड़े ही दिनों में रेणुका देवी बीमार हुई, और उनकी ईहलीला समाप्त हो गई। रेणुका देवी की मृत्यु से विपिन बाबू शोकाकुल हो उठे। कई दिन तक उन्होंने न अन्न खाया और न पानी पिया।

विपिन बाबू को दूसरी शादी करने की जरा भी चाहत नहीं थी, लेकिन पुत्र की देखभाल ठीक हो, इसीलिए दूसरी शादी करने को वे तैयार हो गये। परिणामस्वरूप सुमित्रा नाम की लड़की से विपिन बाबू की दूसरी शादी हो गयी।

सुमित्रा और रेणुका के स्वभाव में किसी प्रकार की समानता नहीं थी। सुमित्रा देवी का स्वभाव उदण्ड और क्रोधी था। उसने घर का सारा कारोबार अपने हाथों में ले लिया। छोटे सुरेन्द्र से वह बहुत नफरत करती थी। जिससे विपिन बाबू बहुत दुखी थे। बेटे की दयनीय हालत देखकर उन्होंने उसे एक विश्वासपात्र तथा दयाशील दाई के हवाले कर दिया।

शैशव काल के बाद सुरेन्द्र बालपन की किलकारियों में गूंजने लगा। उसकी बाल लीलाओं से विपिन बाबू जितना हर्षित होते थे, उतनी ही सुमित्रा देवी क्रुद्ध होती थी। धीरे-धीरे सुरेन्द्र जब चार साल का हुआ, तो एक दिन सुमित्रा ने उसके भोजन में कांच पीसकर उसका चूर्ण मिला दिया। सौभाग्य से उस दिन सुरेन्द्र ने कुछ कारणवश भोजन नहीं किया।

उम्र के साथ-साथ सुरेन्द्र जब आठ वर्ष का हुआ, तब सुमित्रा ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम सरसचन्द्र रखा गया। अब तो सुमित्रा सुरेन्द्र से ज्यादा नफरत करने लगी, क्योंकि वह चाहती थी कि सब सम्पत्ति का स्वामी उसका एकलौता बेटा ही बनाया जाय। सुरेन्द्र की चिंता से विपिन बाबू की तबीयत दिन-ब-दिन बिगड़ती गयी आखिरकार उसी चिंता में उनका एक दिन स्वर्गवास भी हो गया। उस समय सुरेन्द्र पन्द्रहवी वर्षगाठ में पहुँचा था।

वसीयत में विपिन बाबू ने सुरेन्द्र को जमीन-जायदाद का मालिक बनाया था और

सरसवन्द्र का मासिक वेतन निश्चित किया था। मृत्यु के पूर्व विपिन बाबू सुरेन्द्र से मिलना चाहते थे, लेकिन कम्बख्त सुमित्रा ने उनकी आखिरी तमन्ना को भी नहीं पूरा होने दिया। अपने पिता की मृत्यु से सुरेन्द्र असीम दुख में डूब गया। पिता का अन्तिम दर्शन भी उसे अप्राप्य रहा। उसको लगा कि वह अब पूर्णत: अनाथ हो गया है। उसकी दाई ने उसे हर प्रकार की सांत्वना दी, लेकिन उसे तसल्ली नहीं हुई।

इधर विपिन बाबू के वकील सुमित्रा देवी से मिले और उन्होंने वसीयतनामा पढ़कर सुनाया। मजमून सुनकर सुमित्रा देवी क्रोध से पागल हो उठी। पहले तो उसने काफी धन रिश्वत के रूप में देकर वकील साहब को वसीयत जला देने का दबाव डाला, लेकिन वकील साहब किसी भी कीमत पर नहीं तैयार हुए। काफी मिन्नत करने के बाद उन्होंने असली वसीयत अपने पास रख ली, और उसकी एक नकल लेकर एक दिन वे सुमित्रा के पास पुन: पहुँचे। सुमित्रा देवी के कथनानुसार उन्होंने वसीयत को आग लगा दी। खुशी से सुमित्रा देवी ने वकील साहब को दस हजार रूपये पुरस्कार स्वरूप भेंट किया।

जमीन-जायदाद का पूरा कारोबार सुमित्रा देवी ने अपने हाथों में ले लिया। सुरेन्द्र पर वह अपनी हुकूमत चलाने लगी। उसकी संरक्षित दाई को उसी क्षण हटा दिया गया। सुरेन्द्र से बिछुड़ते समय दाई को बहुत दुख हुआ, परन्तु कर ही क्या सकती थी ? सुमित्रा देवी ने अपने चचेरे भाई रमेश को प्रबन्धक के रूप में नियुक्त किया। वह सुमित्रा देवी से कई गुना ज्यादा दुष्ट था।

दोनों ने मिलकर सुरेन्द्र पर अपना कपट जाल फैलाना प्रारम्भ किया। पहले तो सुरेन्द्र के साथ प्रेम व्यवहार का दिखावा किया गया, लेकिन बाद में उसे पूरी तरह से समाप्त करने की योजना बन गयी। आखिर वह भयानक दिन आ ही गया। उस दिन सुरेन्द्र के भोजन में जालिम सुमित्रा ने जहर मिला दिया। भोजन करते ही सुरेन्द्र वेदनादि से व्याकुल हो उठा। जमीन पर लेट कर वह आक्रन्द करने लगा और कुछ देर में वह अपनी सुधबुध भूल गया।

रात का समय था, डॉक्टर बुलाया गया। दस हजार की रिश्वत देकर सुमित्रा देवी ने डॉक्टर को भी अपने वश में कर लिया। विवश होकर डॉक्टर ने बता दिया, कि सुरेन्द्र की मृत्यु कालरा से हो गई। बड़ी जल्दी में सुरेन्द्र के मृत शरीर को श्मशान ले जाने का प्रबन्ध किया गया। दस-बारह नौकर उसे श्मशान घाट उठा कर ले गये।

श्मशान घाट की घटना पाठकगण पहले ही पढ़ चुके हैं। वास्तव में सुरेन्द्र जिन्दा था। उसके शरीर से प्राण का अन्त नहीं हुआ था। बरसात का पानी पाते ही शायद वह होश में आ गया, और भागते हुए जोर-जोर से पुकारने लगा - "बचाओ, बचाओ।"

आवाज सुनकर सभी लोग भाग खड़े हुए थे। तभी वहाँ संयोग से वही कापालिक मंत्र साधना करके श्मशान में आया। वह सुरेन्द्र को देखते ही उसके निकट गया। फिर बन्धनों से मुक्त कर सुरेन्द्र को वह अपने साथ कापालिक सीधा हिमालय की ओर ले गया। जहर से पीड़ित सुरेन्द्र की मृत्यु नहीं हुई थी, लेकिन उसके दिमाग पर उसका भारी असर हुआ, और उसकी स्मृति ही चल बसी।

सुरेन्द्र को साथ लेकर कापालिक पवित्र स्थानों की यात्रा करता रहा। नियमित रूप से कसरत और पौष्टिक खुराक देने से सुरेन्द्र बहुत जल्द तन्दुरूस्त ही नहीं, बल्कि ताकतवर भी हो गया। हट्टे-कट्टे और सुदृढ़ सुरेन्द्र को कापालिक ने कुश्ती लड़ना सिखाया। उसने मंत्र साधना कर ली। परिणामत: उसे सिद्धियाँ भी प्राप्त हुई। इस तरह सुरेन्द्र के बलवान होने के बाद कापालिक उसे ”भीम भवानी” नाम से पुकारने लगा।

भीम भवानी सुरेन्द्र को साथ लेकर एक दिन कापालिक सुन्दर वन में आया। घूमते-घूमते वे एक गांव में पहुँचे। वहाँ एक क्रूर नरभक्षी बाघ ने पूरी बस्ती में अपना आतंक मचा रखा था। कई लोगों को वह मौत के घाट उतार चुका था। भीम भवानी ने उसे मारने का निश्चय किया।

रात को गांव के बाहर एक बकरी बांधीं गई। आधी रात बीत जाने पर बाघ बाहर आया। भीम भवानी हाथ में एक तेज भाला लिए हुए कई गाँव वालों के साथ छिपकर बैठा था। बाघ, बकरी की ओर आ ही रहा था, कि भीम भवानी ने अपनी पूरी ताकत लगाकर बाघ को लक्ष्य करके भाला उसकी ओर फेंका। भाले की गति इतनी तेज थी कि भाला बाघ का पेट फाड़कर दूसरी ओर से बाहर निकल आया। बाघ उसी क्षण जमीन पर गिर गया। उसे मृत समझकर भीम भवानी और अन्य लोग बाघ के समीप आये।

जख्मी बाघ अपने पास शिकारी को आया देखकर तुरन्त खड़ा हो गया और भीम भवानी पर झपटा। सचेत भीम भवानी ने बाघ का जबड़ा अपने हाथों से पूरी ताकत लगाकर खोल दिया। कुछ देर बाद बाघ का जबड़ा फट गया और वहीं मरकर ढेर हो गया।

भीम भवानी का यह अपूर्व साहस देखकर गांव वाले आश्चर्यचकित रह गये। गाँव वालों ने उसके सम्मान में एक बड़ा समारोह किया, और उसे “बंगाल का बाघ” नाम से पुकार कर उसका गौरव बढ़ाया। उसके बाद भीम भवानी और कापालिक वाराणसी आये। उस समय वाराणसी में कार्लेकर ग्रैण्ड सर्कस लगा था। कार्लेकर ग्रैण्ड सर्कस में तब चेस्टलीन नामक रूप का एक सैडो था। वह विशालकाय हट्टा-कट्टा पहलवान था। पाँच-सौ पौण्ड का वजन वह हाथ में उंगली से उठाता था। भीम भवानी और कापालिक ने शहर में जाहिर तौर पर लगाये एक पत्रक को देखा जिसमें लिखा था ”रूसी सैडो को कुश्ती में हराने वाले वीर को एक हजार रूपये का इनाम दिया जायेगा।”

पोस्टर पढ़कर भीम भवानी के शरीर में खून दौड़ गया। दूसरे दिन भीम भवानी प्रो. शंकर राव कार्लेकर से मिला। सैडो के साथ सामना करने का अपना निश्चय उससे व्यक्त किया। कुश्ती का दिन निश्चित किया गया और शहर में घोषणा भी की गयी। दंगल के दिन कुश्ती देखने के लिए दर्शक काफी मात्रा में सर्कस के मैदान में इकट्ठा थे। यहाँ तक कि हजारों लोगों को जगह की कमी के कारण निराश होकर लौटना पड़ा।

सर्कस के सब खेल हो जाने के बाद भीम भवानी और सैडो की कुश्ती शुरू हुई दोनों पहलवान कपड़े उतारकर आमने-सामने आये। भीम भवानी का शरीर ठोस और मजबूत था।

कुश्ती के प्रारम्भ होते ही चेस्टलीन और भीम भवानी को अपनी शक्ति लगाकर एक दूसरे को नीचे दबाया, लेकिन भीम भवानी ने एक अजीब दाँव की सहायता से सैडो को धड़ाम से जमीन पर गिरा दिया, और भीम भवानी उसके सीने पर सवार हो गया। दर्शकों ने करतल ध्वनि से अपनी खुशियाँ जाहिर की। प्रो. शंकर राव ने भीम भवानी को एक हजार रूपये की थैली भेंट देकर उसका सम्मान किया। पुन: दूसरे दिन जब श्री राव से भीम भवानी मिला तो प्रो. शंकर राव ने भीम भवानी को प्रति मास एक हजार रूपये वेतन पर अपने सर्कस में शामिल कर लिया। कापालिक उसके साथ ही रहा। भीम भवानी ने कार्लेकर ग्रैंड सर्कस में लगभग तीन साल काम किया। उस अवधि के भीतर उसने कई मशहूर पहलवानों को कुश्ती में पराभूत किया। कार्लेकर ग्रैंड सर्कस जब बंगाल के कचरापाड़ा गाँव में था, तब एक अद्‌भुत घटना हुई। बरसात के दिन थे। हवा जोर से चल रही थी। तम्बू के पास प्रो. शंकर राव भीम भवानी से बातें करते हुए खड़े थे। तूफान के कारण तम्बू के एक लम्बे खम्भे का तार टूटा और लोहे का खम्भा पास ही खड़े भीम भवानी के सिर पर आ गिरा। चोट काफी आ गयी थी, इसलिए वह जमीन पर गिर पड़ा। फौरन उसे अस्पताल पहुँचाया गया। उसके सर पर जोर से आघात हुआ था। फिलहाल शल्य क्रिया आदि उपायों से वह जल्दी ठीक हो गया। उसी समय एक विस्मयकारी घटना हुई। सर पर हुए आघात से भीम भवानी की पूर्व स्मृतियाँ जागृत हो गई। उसने कापालिक से पूछा - ”हम कोमिल्ला गांव कब जायेंगे ?

प्रश्न सुनते ही कापालिक की खुशी का ठिकाना न रहा। कापालिक ने प्रो. शंकर राव को पूरा हाल बताया, फिर उसकी अनुमति लेकर दोनों साथ-साथ कोमिल्ला गांव पहुँच गये।

अब तक कोमिल्ला में कई परिवर्तन हुए थे। सुमित्रा देवी का बेटा चल बसा था। सुमित्रा देवी के निष्ठुर व्यवहार से लोग असन्तुष्ट थे। कापालिक सीधा विपिन बाबू के वकील के पास पहुँचा और उसने सुरेन्द्र के बारे में पूरा विवरण दिया। उनको विश्वास दिलाया कि सुरेन्द्र जिन्दा है। जब वकील को भी विश्वास हो गया, तो उन्होंने सुरेन्द्र की हथेली पर सर्पाकृति देखी, जो उसके जन्म के अवसर पर रेखांकित की गयी थी, तो वह चकित रह गये। फिर उन्होंने भीम का बड़ा सम्मान किया।

कुछ देर बाद नागरिको की एक आम सभा बुलायी गयी। उसमें सुमित्रा देवी के बुरे व्यवहार का बयान किया गया। उस कपट जाल से सुरेन्द्र की रिहाई कैसे हुई, यह बताकर विपिन बाबू की वसीयत उसी सभा में पढ़ी गयी। यह सब देखकर सुमित्रा अपने चचेरे भाई रमेश के साथ चली गई। सुरेन्द्र के सम्मान में लोगों ने एक बड़ा जुलूस निकाला। उसे समारोह के साथ जमींदार की गद्दी पर बैठा दिया। कापालिक जो प्रति पालक था उसके साथ गुरू के नाते रहने लगा।

दोनों ने अपनी रियासत को कई प्रकार से सुख और सन्तोष दिया।

अध्याय ११
अभिशप्त खजाना

उस आदमी का हुलिया बड़ा विचित्र था। तमाम गन्दगी से भरे रूखे-सूखे बाल। महीनों से बढ़ी हुई दाढ़ी-मूँछ। गन्दे और बड़े-बड़े नाखून — पूरा जिस्म मैल से काला पड़ा था। शायद कई महीने बीत गये होंगे उसे नहाए। गन्दे कुर्ते-पायजामें में जगह-जगह पैबन्द लगे थे। उम्र बहुत ज्यादा नहीं, लेकिन पचास से कम भी न थी। उसकी हरकत भी पागलों जैसी थी।

वह धीरे-धीरे मेरे चेम्बर में आया और सामने रखी कुर्सी पर निढाल-सा बैठ गया। लगा जैसे काफी थका हुआ हो।

कहिए ? मैंने अपेक्षा के भाव से पूछा, "कैसे आना हुआ ?"

पागल जैसे उस व्यक्ति ने एक बार गहरी नजर से मेरी ओर देखा, फिर धीरे-धीरे कहने लगा, "मेरा नाम मनोहरलाल है। मध्य प्रदेश से चलकर यहाँ आया हूँ। पहले मेरे पास सब कुछ था। किसी चीज की कमी नहीं थी। अच्छी-खासी दौलत थी। पूर्ण समर्पिता सुन्दर पत्नी थी। चार लड़के और चार लड़कियाँ थी। महलनुमा आलीशान मकान था। जमीन-जायदाद भी थी...मगर अब कुछ भी नहीं है...मेरा सब कुछ समाप्त हो गया...न धन… दौलत है न पत्नी बची, न बच्चे रहे...जमीन जायदाद भी नहीं रह गई। केवल मैं बचा हूँ और बची है उन सबकी स्मृतियाँ, जिन्हें अपने सीने से लगाये आज पाँच साल से भटक रहा हूँ इधर-उधर।"

उसने रूक-रूक कर एक लम्बी ठंडी सांस ली, फिर आँखों की कोरे छलक आई। आँसू पोछता हुआ भरे गले से कहने लगा, शायद आप यह जानने के लिए उत्सुक होंगे कि मैं आपके पास क्यों और किस लिए आया हूँ। बात दरअसल यह है कि मैंने आपके बारे में बहुत सुना है। पत्र पत्रिकाओं में बहुत सारी कथा-कहानियाँ और अन्य रचनाएँ भी पढ़ी हैं मैंने। तंत्र-मंत्र पर आपने गहरी खोज की है। खतरनाक और जानलेवा तांत्रिक साधनायें भी की है आपने। मुझे पूरा विश्वास है कि मेरी समस्या आप ही की सहायता से हल होगी...मेरा सारा दुःख आप ही दूर कर सकेंगे...इसीलिए आपके पास आया हूँ..."

आपने मेरे सम्बन्ध में जो कुछ जाना-समझा और सुना है, वह अपनी जगह ठीक है, मगर आपको यह भी मालूम होना चाहिए कि तंत्र-मंत्र मेरी खोज और साधना का विषय है...यह भी सत्य है कि विविध तांत्रिक साधनाओं के फलस्वरूप मुझे अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त हुई है, परन्तु उस अलौकिक तांत्रिक शक्ति से न मैं किसी की सहायता कर सकता हूँ न किसी समस्या का समाधान। मेरी उपलब्धि एक प्रकार से मेरी व्यक्तिगत सम्पत्ति है, जिससे मैं व्यवसाय नहीं करना चाहता।

मैं व्यवसाय की बात नहीं कर रहा हूँ, पर...मनोहर लाल कुछ उदास हो गया। कुछ देर तक सिर झुकाए जैसे हताशा से हांफता रहा, फिर व्याकुल भाव से गिड़गिड़ाने लगा, मैं चाहता

हूँ कि आप मेरी कहानी सुन लें...मुझे पूरा विश्वास है कि तब आप निश्चय ही मेरी सहायता करने के लिए तैयार हो जायेंगे। सारी बात सुनकर आप जैसा व्यक्ति ना कर ही नहीं सकेगा —"

बोलते-बोलते मनोहर लाल ने अपने कुर्ते की जेब से एक छोटी-सी मूर्ति निकालकर मेरे सामने मेज पर रख दी, इसे देखिए...

मैंने देखा - कांसे की बनी वह मूर्ति एक युवती की थी। लगता था - कलाकार ने उस मूर्ति गढ़ने में अपनी सारी कला, सारी प्रतिभा लगा दी हो। अंग-प्रत्यंग को इस प्रकार उभारा गया था कि वह बिलकुल सजीव प्रतीत हो रही थी। मैंने मनोहर लाल से पूछा, यह क्या है? किसकी मूर्ति है?

मेरी बर्बादी और सारी परेशानी का कारण यही मूर्ति है शर्मा जी। मनोहर लाल फिसफिसाती आवाज में बोला, इसी मूर्ति के कारण आज मेरी यह हालत है। पूरे पांच साल से यह मूर्ति मेरे साथ है। मैं चाहकर भी अपने आपको इससे छुटकारा नहीं पा रहा हूँ। यह मूर्ति भी शायद मुझसे अलग नहीं होना चाहती।

मतलब? समझा नहीं मैं।

इस मूर्ति को मैंने न जाने कितनी बार तालाब में फेंका...कुएं में डाला...रास्ते में फेंका...कूड़ेखाने में फेंका...नदी में डाल दिया, फिर भी यह न जाने कैसे मेरे पास वापस लौट आती है। दो दिन पहले बनारस आते ही मैंने इसे गंगा में बहा दिया था, लेकिन आज सबेरे जब आपके पास आने को तैयार हुआ तो देखा- यह मेरी जेब में मौजूद है।

यह विलक्षण और अविश्वसनीय बात सुनकर सन्न रह गया मैं। उस रहस्यमयी मूर्ति की ओर देखते हुए मैंने मनोहर लाल से पूछा, यह आपको मिली कहाँ ?

मेरे इस छोटे-से प्रश्न के उत्तर में मनोहर लाल ने जो चमत्कारी कहानी सुनाई, यह निश्चय ही अत्यन्त रोमांचक और अविश्वसनीय थी शायद इसीलिए मैं उसकी सहायता करने को तैयार भी हो गया था, पर...

मनोहर लाल का जन्म विलासपुर के एक साधारण और गरीब परिवार में हुआ था। उसके पिता हरवंश लाल ठेले पर फल और सब्जी बेचा करते थे। उसी की आय से घर का पूरा खर्च चलता था। मनोहरलाल पढ़ने-लिखने में काफी तेज था। उसने किसी प्रकार हाईस्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर ली, फिर टाइप और शार्टहैंड भी सीख लिया। उस समय उसकी उम्र करीब अट्ठारह साल थी। भाग्य भी अनुकूल था, अत: थोड़े ही प्रयास से उसे सरकारी नौकरी भी मिल गई। वेतन था - पाँच सौ रूपये माहवार। नौकरी लगते ही पिता ने उसका विवाह भी कर दिया। पत्नी का नाम था मनोरमा। सचमुच बड़ी मनोरम थी वह खूब सुन्दर आकर्षक और गृह कार्य में दक्ष —

धीरे-धीरे दाम्पत्य जीवन के बीस वर्ष व्यतीत हो गये। इस बीच मनोहर लाल चार लड़के और चार लड़कियों का पिता बन चुका था। इसी अवधि में उसकी कई बार पदोन्नति हुई

और कई जगह ट्रांसफर भी हुआ। फिर उसकी नियुक्ति छत्तीसगढ़ में हो गई। बस उसके साथ ही उस पर विपत्तियों के काले बादल मंडराने लगे। सौभाग्य-दुर्भाग्य में बदलने लगा और अन्त तो बड़ा ही लोमहर्षक रहा।

छत्तीसगढ़ पहुँचकर सबसे बड़ी समस्या रहने की हुई। मनोहर लाल और मनोरमा का वहाँ कोई रिश्तेदार भी नहीं था, जिसके घर वे ठहर सकते। शहर के बाहर एक वीरान इलाके के खण्डहरनुमा कई स्थान लावारिस से पड़े थे, कहीं और ठहरने की व्यवस्था न देखकर मनोहरलाल ने उन्हीं में से एक मकान पर अधिकार जमा लिया। उसका काफी हिस्सा जर्जर और खण्डहर हो चुका था, फिर भी दो-तीन कमरे रहने लायक थे।

जब पहली बार मनोरमा उस खण्डहरनुमा मकान में गई थी तभी वहाँ छाई वीरानी और मनहूसियत देखकर एकदम सकपका गई थी, मगर करती भी क्या ? उसने धीरे-धीरे अपने आपको वहाँ के वातावरण के अनुकूल बनाना शुरू किया। मनोहर लाल ड्यूटी पर चला जाता तो मनोरमा अपने बच्चों को लेकर मकान में अकेली पड़ जाती, लेकिन आदत तो डालनी ही थी।

इन सबके बावजूद कभी-कभी मनोरमा का दिल पूरी तरह घबराने लगता था। शाम होते ही खण्डहरनुमा उस मकान के वातावरण में एक विचित्र-सी रहस्यमयता छा जाती है। कभी-कभी वह भयानक खामोशी इतनी गहरी हो जाती कि मनोरमा के साथ-साथ उसके बच्चे भी सहमने लगते। आखिर एक दिन नहीं रह गया तो उसने मनोहरलाल से भी कह दिया, इस घर में हमें न जाने कैसा भय का अनुभव होता है। तुम कोई दूसरा ही मकान देखो।

तुमको तो बेकार का वहम होता रहता है। मनोहरलाल ने लापरवाही से कहा, भला इस मकान में बुराई क्या है। न मकान मालिक की धौंस सुननी पड़ती है न किराया देना पड़ता है। बिजली-पानी न होने से थोड़ी-सी परेशानी है, लेकिन उसके लिए मैं बराबर कोशिश कर रहा हूँ, जल्दी ही व्यवस्था हो जायेगी।

आप समझते क्यों नहीं। मनोरमा झुंझलाकर बोली, मेरे साथ जवान लड़कियाँ भी हैं। सब लोगों से कटकर शहर से इतनी दूर सन्नाटे में आखिर कब तक रह सकेंगे ? आज नहीं तो कल बेटियों का ब्याह भी करना होगा।

मनोरमा तरह-तरह से मनोहरलाल को समझाने की कोशिश करती रही, पर वह किसी भी हालत में मुफ्त के उस मकान को नहीं छोड़ना चाहता था।

वह मकान काफी लम्बा-चौड़ा रहा होगा किसी जमाने में, लेकिन अब सामने का हिस्सा पूरी तरह खण्डहर में बदल चुका था। पीछे की तरफ कुल बारह कमरे थे, जिनमें से केवल चार कमरे रहने योग्य थे। तीन कमरों का इस्तेमाल किया जा रहा था, चौथा कमरा अलग-थलग होने के कारण मनोरमा ने उसमें फालतू सामान भर दिया था। मकान के जिस हिस्से में वह कमरा था, उधर मनोरमा न स्वयं जाती और न किसी बच्चे को ही जाने देती। मकान के इस हिस्से से उसे बड़ी महीन-सी आवाजें आती महसूस होती। बड़ी ही

रहस्यमयी वह आवाज होती थी। कुछ समझ नहीं पाती थी वह, अतः बहुत दिनों तक इसे अपना भ्रम ही मानती रही, मगर एक बार उसने स्पष्ट रूप से घुंघरुओं की आवाज सुनी, फिर बड़ी बेटी कल्याणी को भी सुनाई - घुंघरुओं की वह रहस्यमयी आवाज कभी तेज तो कभी धीमी सुनाई पड़ती थी। ऐसा लगता, मानो उस बन्द कमरे में कोई नर्तकी बड़ी तन्यमयता से नाच रही हो।

एक रोज शाम को मनोहरलाल आफिस से लौटकर आया तो मनोरमा ने उस कमरे से घुंघरुओं की आवाज सुनने की चर्चा की। हमेशा की तरह उस दिन भी मनोरहर लाल ने इसे पत्नी का वहम समझकर कोई ध्यान नहीं दिया था, मगर उसी रात वह स्वयं विस्मित रह गया निस्तब्ध गहरी रात में अचानक मनोहर लाल की नींद उचट गई। उसे लगा जैसे किसी अनजानी-सी आवाज के कारण ही वह जागा हो। उसने अंधेरे में देखने की कोशिश की, मगर कुछ नजर नहीं आया तो उसने फिर आँखे बन्द कर ली और सोने का उपक्रम लगा।

दुबारा झपकी आई ही थी कि मनोहरलाल उठ बैठा। वह आवाज इस बार इतनी साफ सुनाई पड़ी थी कि संशय की कोई गुंजाइश ही नहीं थी। मनोहर लाल टार्च जलाकर उसी आवाज की दिशा में बढ़ने लगा। वो आवाज उसी कमरे से आ रही थी। यद्यपि कमरे के दरवाजे पर ताला लगा था, पर आवाज उसी के भीतर से आ रही थी - इसमें मनोहरलाल को कोई संशय नहीं रहा। मनोहरलाल की इच्छा हुई कि वह कमरा खोलकर देखे कि अन्दर कौन है...वह आवाज कहाँ से आ रही है...लेकिन उस समय घर में चाबी न होने के कारण वह विवश होकर वापस लौट आया।

रात की घटना की चर्चा मनोहरलाल ने अपनी पत्नी से नहीं की। उसे डर था कि कहीं मनोरमा घबराकर फिर मकान छोड़ने की जिद न करने लगे, लेकिन उसने बहाना बनाकर मनोरमा से उस कमरे की चाभी जरूर ले जी।

जैसे-तैसे दिन कटा। शाम होते ही मनोहरलाल बेचैनी से इंतजार करने लगा। आधी रात से ज्यादा रात गुजर गई। मनोहरलाल अपने कमरे में बिस्तर पर पड़ा बेचैनी से करवट बदल रहा था कि अचानक चौंककर उठ बैठा- घुंघरुओं की मधुर झंकार सुनाई पड़ने लगी। पहले वह झंकार धीमी रही, फिर तेज हो गई।

मनोहरलाल तुरन्त बिस्तर से उठा और टॉर्च लेकर आंगन में निकल आया। ध्यान से उसने सुना, आवाज उसी बन्द कमरे से आ रही थी। मनोहरलाल ने वहाँ पहुँचकर टॉर्च की रोशनी में धीरे से ताला खोलकर दरवाजा ठेला। भीतर गहरा अंधेरा था, इसलिए कुछ सुझाई तो नहीं पड़ा, सिर्फ घुंघरुओं की आवाज सुनाई दे रही थी, मगर जैसे ही मनोहरलाल ने कमरे में पैर रखा, अचानक घुंघरुओं की वह मधुर झंकार सोने-चाँदी के सिक्कों की लुभावनी खनक में बदल गई। मानो काफी ऊँचाई से सिक्के जमीन पर गिर रहे हो।

मनोहरलाल ने टॉर्च की रोशनी में कमरे में देखने की कोशिश की बड़ी बेसब्री से वहाँ काठ-

कबाड़ भरा था। फिर उसकी नजर बाईं ओर वाली दीवार पर पड़ी। वहाँ एक बहुत बड़ी आलमारी थी - लगभग चार फुट लम्बा चौड़ा और दो फुट गहरा। आले में एक बड़ा-सा कटोरा रखा था, उसी में न जाने कहाँ से सोने-चॉदी के सिक्के गिर रहे थे। उनकी दमक देखकर मनोहरलाल का लालच जाग उठा। टॉर्च जलाए वह काफी देर तक यह अनहोनी अपलक देखता हुआ सोचता रहा - अगर यह दौलत उसे मिल जाये तो कितना अच्छा हो…

मन में यह विचार पनपते ही मनोहरलाल बेताबी से उस आले की तरफ लपका, फिर स्तब्ध भाव से ठिठक गया। आले में रखे उस कटोरे में अब सोने-चाँदी के सिक्कों के बजाय एक सुन्दर युवती की कांसे की मूर्ति पड़ी थी।

वही मूर्ति जो मनोहरलाल ने मुझे दिखाई थी।

मनोहरलाल को लगा था कि वह मूर्ति आँखे खोले उसी ओर ताक रही है और उसके होंठ हिल रहे है, जैसे वह कुछ बोलना चाहती हो। कांसा प्रतिमा में जीवन के लक्षण देखते ही मनोहरलाल भयभीत होकर पीछे हट गया। उसी समय एक आवाज सुनाई पड़ी। ऐसा लगा मानों वह आवाज उसी मूर्ति के मुँह से निकल रही है। उस मधुर सुरीले और सम्मोहक नारी स्वर ने पूछा था, “तुमको दौलत चाहिए...बहुत सारी दौलत...सोना-चाँदी, हीरे-जवाहरात ?”

मनोहरलाल ने तुरन्त स्वीकृति में सिर हिला दिया। इसके बाद पलक झपकते वह सारा दृश्य आँखो के आगे से गायब हो गया। मनोहरलाल हड़बड़ाकर बार-बार आँखे मसलता हुआ देखने लगा, लेकिन आलमारी में अब न कटोरा था और न तो वह कांस्य प्रतिमा, बस चारो तरफ गहरी खामोशी छाई थी। मनोहरलाल सोचने लगा शायद उसने सपना देखा है, लेकिन टॉर्च लेकर इस कमरे में उसका आना इस बात का प्रमाण था कि वह किसी आवाज के पीछे ही यहाँ तक चला आया था...यानी वह आवाज...सिक्कों की खनक...नारी मूर्ति.. यह सब सच था ? आखिर कौन थी वह नारी मूर्ति ? इन सबका रहस्य क्या है ?

दूसरे दिन सबेरे जब मनोहरलाल सो कर उठा तो उसका सिर भारी था। रात की सारी घटनाएं उसके मस्तिष्क में अभी तक ताजा थी। उस दिन वह आफिस भी नहीं गया। उसने अपनी पत्नी से कहा कि आज वह उस कमरे की सफाई करेगा ताकि उसका भी इस्तेमाल किया जा सके।

मनोरमा का मन तो नहीं हो रहा था कि वह पति को उस कमरे में जाने दे, मगर मनोहरलाल जो कुछ ठान ले, तो उसे रोकना उसके बस में नहीं था। आखिर मनोहरलाल ने वह कमरा खोला और सफाई में जुट गया। उसकी दोनों छोटी बेटियाँ लक्ष्मी और सरस्वती भी अपने पिता की सहायता करने लगी।

मनोहरलाल के मन-मस्तिष्क में रात वाली घटना लगातार उथल-पुथल मचाएँ थी। वह अभीतक यह निश्चय नहीं कर पाया था कि रात उसने कोई सपना देखा था या वह सब सच्चाई थी ? उसकी नजर बार-बार उस दीवार की ओर उठ जाती थी, जहाँ उसने सोने-चाँदी के सिक्कों को कटोरे में गिरते देखा था।

हालांकि इस समय वहाँ कुछ नहीं था, मगर सोने-चाँदी के सिक्कों की वह प्यारी-प्यारी खनक अभीतक मनोहरलाल के कानो में गूंज रही थी।

अचानक लक्ष्मी चिल्लाई, ”बाबू...देखो, इसमें क्या है ?”

मनोहरलाल लपककर बेटी के पास पहुँचा, तो देखा वह पीतल की एक छोटी-सी पेटी लिए हुए थी। विस्मय विमुग्ध मनोहरलाल वह पेटी खोलते ही चौंक पड़ा, ”अरे यह तो हार है हीरे का हार” फिर वह खुशी के मारे चिल्लाने लगा, अरे मनोरमा तुम कहाँ हो ? देखो तो हमें कितना कीमती हार मिला है ?

मनोरमा हांफती हुई आई तो उस हार को देखकर उसकी आँखे फैल गई। अविश्वास भरे स्वर में उसने पूछा, कहाँ मिला यह ?

उसी कमरे में। मैं, लक्ष्मी और सरस्वती उस कमरे की सफाई कर रहे थे कि अभी मनोहरलाल की बात पूरी भी नहीं हुई थी कि सरस्वती की कातर चीख सुनाई पड़ी, बाबू लक्ष्मी के सिर से खून निकल रहा है।

मनोहरलाल दौड़ता हुआ मनोरमा के साथ उस कमरे में पहुँचा तो सरस्वती ने बताया कि सफाई करते-करते पता नहीं कैसे लक्ष्मी ठोकर खाकर गिर पड़ी और सिर से खून निकलने लगा। अत्यधिक रक्तस्राव से आस-पास की जमीन लाल हो उठी थी। बेटी को अचेत देखकर मनोरमा घबरा उठी। मनोहरलाल ने लक्ष्मी को डॉक्टर के यहाँ ले जाने के लिए उठाया, पर दवा-दारू का मौका ही नहीं मिला। लक्ष्मी ने पिता की गोद में ही दम तोड़ दिया। कुछ क्षण पहले एक बहुमूल्य हार मिलने से खुशी की जो लहर आई थी, वह लक्ष्मी की मृत्यु के कारण दुःख के सागर में खो गई। घर में मातम छा गया।

लक्ष्मी की मृत्यु से मनोरमा बुझ-सी गई। न जाने क्यों उसके मन-मस्तिष्क में एक गांठ-सी पड़ गई। हीरे के कीमती हार का मिलना उसको अशुभ लगने लगा, जिसने उसकी बेटी की जान ले ली थी। उसने बहुत चाहा कि मनोहरलाल हार को न बेचे, बल्कि उसे फेंककर इस अशुभ हार से छुटकारा पा लें, मगर मनोहरलाल के विचार से हाथ आयी दौलत को ठुकराना सिर्फ बेवकूफी थी वह बम्बई जाकर उस हार को जौहरी बाजार में बेच आया। पूरे दो लाख रूपये मिले थे।

लड़कियों में सबसे बड़ी कृष्णा थी, फिर लक्ष्मी, उसके बाद सरस्वती और सबसे छोटी बसन्ती। उस समय कृष्णा की उम्र अट्ठारह के आस-पास थी। मनोरमा की इच्छा थी कि अब जल्दी से जल्दी कृष्णा का विवाह हो जाये। मनोहरलाल भी चाहता था कि बेटियों के कर्ज से जितनी जल्दी मुक्ति पा जाये, अच्छा है। फिर अब तो उसके पास मोटी रकम भी थी। थोड़ी-सी दौड़-धूप के बाद एक जगह शादी पक्की हो गई। लड़का वकालत पढ़ रहा था। घर परिवार भी अच्छा था। दोनों तरफ शादी की तैयारियाँ होने लगी। काफी रूपये खर्च हुए। मनोहरलाल सोचने लगा, अगर उसे हार न मिला होता तो वह बेटी की शादी के लिए कहाँ से इतनी रकम लाता ?

घर की लक्ष्मी तो चली गई थी, मगर खजाने की लक्ष्मी ने उसके घर का दरवाजा देख लिया था। अचानक शादी के एक दिन पहले पचास हजार की लाटरी निकल आई अब तो खुशी के मारे उसके पैर जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। वह इन सबको भगवान की कृपा समझ रहा था, मगर मनोरमा के हृदय पर एक बोझ-सा लदा था। वह इस प्रकार अचानक मिलने वाली दौलत से सहम गई थी, लेकिन अपने पति से कुछ कह भी नहीं सकती थी।

धीरे-धीरे विवाह का दिन आ गया। शाम होते-होते बारात आ गई। मनोहरलाल ने उस खण्डहर की मरम्मत करवाकर आलीशान मकान का रूप दे दिया था। इसके लिए उसने काफी रूपये खर्च किये थे, उस दिन वह आलीशान मकान दुल्हन की तरह सजा था। कृष्णा भी दुल्हन बनी, आने वाले क्षणों के जादू में खोई हुई थी। मनोहरलाल ने दोनों हाथ खोलकर दहेज दिया था। लोग उसकी दरियादिली पर हैरान थे कि आखिर चार-चार बेटियों की जिम्मेदारी के बावजूद वह पहली बेटी की शादी इतनी धूमधाम से कर रहा है ?

अन्ततः विवाह सम्पन्न हो गया। मनोहरलाल और मनोरमा ने आशीर्वाद और आंसुओं के साये में कृष्णा को गले लगाकर विदा कर दिया, मगर बारात जाने के कुछ क्षण बाद हृदय विदारक खबर सुनने को मिली थी जिस कार में दूल्हा-दुल्हन बैठे थे, उसका एक्सीडेण्ट हो गया...दूल्हे को तो मामूली ही चोट लगी थी, पर कृष्णा की तत्काल मृत्यु हो गई।

जिस घर में क्षण भर पहले शहनाई बज रही थी, वहाँ अकस्मात् मातम छा गया। मनोहरलाल को इस घटना से गहरा धक्का लगा। लोगों की सहानुभूति जैसे उसका दुःख और बढ़ा ही रही थी। आँसू रूकने का नाम नहीं ले रहे थे। मनोरमा जिस भय और आशंका से व्याकुल थी, उसी ने अचानक मनोहरलाल को भी दबोच लिया।

मनोरमा तो जैसे विक्षिप्त हो उठी थी। क्रोध से वह पति पर बरस पड़ी, "आप यही दौलत चाहते थे न, जो इस घर-परिवार में मौत का जहर फैला दे ? और अगर ऐसा नहीं चाहते तो जला क्यों नहीं देते ऐसी दौलत को, जिसने हमारी हंसती-खेलती दो बेटियों को निगल लिया।"

कैसी बातें कर रही हो, मनोरमा ? मनोहरलाल ने पत्नी को समझाने की कोशिश की, भला मौत और जिन्दगी से इस दौलत का क्या सम्बन्ध है ? एक तरफ तो तुम कहती हो कि जिन्दगी और मौत ईश्वर के हाथ में है और दूसरी ओर तुम्हारी शंका का यह हाल है कि बेटियों की मृत्यु की जिम्मेदारी इस दौलत को ठहरा रही हो, जिसने हमारी सारी दरिद्रता दूर कर दी...हमारी जिन्दगी में सारे सुख भर दिये...सारी परेशानियों समाप्त कर दी...।

आखिर आप मेरी बात समझते क्यों नहीं कि इस घर पर मनहूसियत का साया है, जो मेरी बेटियों का खून चूस रहा है। मनोरमा ने गिड़गिड़ाते हुए कहा, मैं आपके हाथ जोड़ती हूँ, ईश्वर के लिए अब इस मकान को छोड़ दीजिए। हम कहीं और चलकर रह लेंगे, लेकिन. ...

नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। मनोहरलाल तैश में आकर बोला - "मैंने इसे खण्डहर से महल बनाया है। इस पर काफी रूपये खर्च हुए हैं मेरे, अब मैं इसे कभी नहीं छोड़ूँगा। तुम कान खोलकर सुन लो, अब यह मेरी जायदाद है। और मनोरमा को रोता छोड़कर वह बाहर

निकल गया ।

इसके बाद मनोरमा ने अपने हृदय पर पत्थर रख लिया और अधिक से अधिक समय पूजा-पाठ में बिताने लगी ।

एक रोज आधी रात को अचानक मनोहरलाल की नींद खुल गई । लगा जैसे कोई रहस्यमयी अदृश्य शक्ति उसको उसी कमरे की ओर खींच रही है । वह अपने बिस्तर से उठा और यंत्रचालित सा उस कमरे में जा खड़ा हुआ । उसने विस्मय से देखा - इस समय भी आलमारी में वही कटोरा पड़ा था और कांसे की वह रहस्यमयी नारी-मूर्ति भी उसी में पड़ी हुई थी ।

मनोहरलाल ने इस बार अनुभव किया कि वह मूर्ति बिल्कुल सजीव लग रही थी, जैसे कांसे की न होकर हाड़-मांस की हो । उसकी छोटी-छोटी आँखे नागिन की तरह चमक रही थी और उस चमक में एक ऐसा विचित्र-सा सम्मोहन था, जिसके वशीभूत होकर मनोहरलाल जड़वत् खड़ा ही रह गया । उसी समय सरसराती हुई वह रहस्यमयी आवाज कमरे में गूंज उठी, “तुमको और दौलत चाहिए ?”

हाँ ! मनोहरलाल के मुँह से अपने-आप निकल गया और वह न चाहते हुए भी एक बार फिर दौलत के लोभ में अपने खून का सौदा कर बैठा । अनजाने ही फिर उसी सम्मोहन की स्थिति में चलता हुआ अपने कमरे में लौट आया ।

दूसरे दिन सबेरे अपने सिरहाने मूल्यवान हीरे-मोतियों की माला देखकर स्तब्ध हो गया मनोहरलाल — उसका अनुमान विश्वास में बदल गया कि इस प्रकार दौलत मिलना उस मूर्ति का ही चमत्कार है । इसके साथ ही मनोहरलाल का ध्यान कृष्णा और लक्ष्मी की आकस्मिक मृत्यु की ओर चला गया । उसे भी एक बार डर लगा कि दोनों लड़कियों की मृत्यु क्या इस दौलत के ही कारण हुई है यानी यह दौलत खून की प्यासी है ? उसकी नजर हीरे-मोती की उस माला पर टिक गई । उसका हृदय भय से कांप उठा सहमकर वह मन ही मन बुदबुदाया, ”नहीं-नहीं, अब ऐसा नहीं होना चाहिए ।”

दूसरे ही क्षण उसने सिर झटककर इन विचारों को मस्तिष्क से बाहर निकाल दिया और बहुमूल्य माला उठाकर जेब में डाल ली ।

धीरे-धीरे दो दिन गुजर गये । इस बीच न कोई दुर्घटना हुई, न कोई अनहोनी । उसे लगा कि वे सब बातें उसके कमजोर मन का वहम भर थी, वरना बेटियों की मृत्यु का इस दौलत से कोई सम्बन्ध नहीं है और एक दिन वह इस हार को भी बेचने के लिए बम्बई रवाना हो गया ।

उन दिनों मनोरमा की तबीयत खराब थी, इसलिए घर-गृहस्थी का सारा काम-काज सरस्वती और उसकी छोटी बहन नर्मदा मिलजुल कर करती थी । रोज की तरह उस दिन भी दोनों खाना बना रही थी, उसी समय न जाने कैसे अचानक आग लग गई । देखते-ही-देखते पूरा रसोई घर लपटों से घिर गया । दोनों लडकियाँ लपटों से घिर गयी । दोनों

लड़कियाँ चीखने-चिल्लाने लगीं। लोग उन्हें बचाने के लिए दौड़ पड़े, मगर जो होना भी वह होकर रहा। सरस्वती और नर्मदा जलकर राख हो गई।

मनोहरलाल हार बेचकर बम्बई से लौटा तो घर में कुहराम मचा था। मनोरमा की चीखों से वातावरण गूंज रहा था। वह बार-बार अपना सिर दीवार पर पटकने लगी इस आघात ने उसे जैसे पागल बना दिया था। मनोहरलाल भी दोनों बेटियों की लाशें देखकर सकते में आ गया। जेब में पड़ा चार लाख रूपये का बैंक ड्राफ्ट सांप-बिच्छुओं की तरह डंक मारने लगा। उसने तुरन्त निर्णय लिया कि अब अपने बेटों और पत्नी को लेकर तुरन्त इस घर को छोड़कर कहीं और चला जाएगा, मगर क्या वह ऐसा कर सका ? नहीं।

रात में फिर वही रहस्यमयी अदृश्य शक्ति मनोहरलाल को उस अंधेरे कमरे में खीच ले गयी, किन्तु उस रात मनोहरलाल में जाने कहाँ से इतना आत्मबल आ गया था कि वह आलमारी के सामने पहुँचते ही हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने लगा, भगवान के लिए अब मुझे और मेरे बचे-खुचे परिवार को इस जाल से मुक्त कर दो। मुझे नहीं चाहिए धन-दौलत अब हमें जान बचाकर चले जाने दो यहाँ से मैं यहाँ और नहीं रहना चाहता, हर्गिज नहीं।

अचानक मनोहरलाल की बात बीच में ही काटकर उस अंधेरे कमरे के निस्तब्ध वातावरण में सरसराती हुई आवाज गूंजने लगी - "अब इस मायाजाल से मुक्त होना आसान नहीं है। मैं दो सौ वर्ष से इस समय का इंतजार कर रही थी। मुझे जीवन पाने के लिए मानव रक्त की जरूरत थी। मैं जिस दौलत की मालकिन हूँ उसके बदलने में मैंने तेरे और तेरे परिवार के लोगों के रक्त का सौदा कर लिया है। अब तू तब तक यहाँ से नहीं जा सकेगा, जबतक मुझे पूरा जीवन नहीं मिल जाता।"

यह सुनते ही मनोहरलाल डर के मारे कांपने लगा। अब वह समझ रहा था कि अनजाने में उससे कितनी बड़ी भूल हो गई थी। काश ! वह अपनी पत्नी की बात मानकर शुरू-शुरू में ही यह घर छोड़ देता तो इतनी विपत्ति न सहनी पड़ती, मगर अब क्या हो सकता था ?

दूसरे ही दिन मनोहरलाल पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। उसके चारों लड़के रात को खा-पीकर अच्छे-भले सोए थे, लेकिन सबेरे सब बिस्तर पर मरे पाये गये। मनोरमा तो पहले से ही विक्षिप्तावस्था में थी, इस घटना ने मनोहरलाल को भी पागल बना दिया। उसने पत्नी का हाथ पकड़ा और खींचता हुआ बाहर भागा। घर से निकलते ही उसने जेब से बैंक ड्राफ्ट निकालकर फाड़ डाला मगर उससे कोई लाभ नहीं हुआ। रास्ते में ही मनोरमा ने भी दम तोड़ दिया। मनोहरलाल फटी-फटी आँखो से धूल में पसरे पत्नी के निर्जीव शरीर को देखता रहा, फिर उसे वहीं छोड़कर वह लड़खड़ाते कदमों से भाग निकला।

सारी कथा सुनकर मुझे यह समझते देर नहीं लगी कि उस खण्डहर में निश्चय ही कोई अभिशप्त खजाना छिपा हुआ है और उसकी सुरक्षा के लिए कोई विशेष तांत्रिक क्रिया भी की गई है। कौन-सी क्रिया की गई है - इसे समझने के लिए मैंने वह मूर्ति अपने पास रख ली और तीन दिन बाद आने के लिए कहकर उस समय मनोहरलाल को विदा कर दिया। उसके जाने के बाद मैंने एक बार फिर उस मूर्ति को ध्यान से देखा। इस बार बिल्कुल

सजीव लगी वह मूर्ति। एक पल के लिए लगा कि वह अपनी बन्द आँखे धीरे-धीरे खोलेगी और मेरी ओर देखेगी।

मगर ऐसा कुछ नहीं हुआ।

क्या सचमुच यह मूर्ति बार-बार मनोहरलाल के पास वापस लौट आती है ? रह-रहकर यही प्रश्न मेरे मस्तिष्क को मथे डाल रहा था। आखिर नहीं रहा गया तो वास्तविकता को परखने के लिए मैं उस मूर्ति को ले जाकर गंगा की बीच धारा में डाल आया। उस रात ठीक से नींद भी नहीं आई मुझे। सारी रात मनोहरलाल के ही विषय में सोचता रहा मैं। भोर के समय थोड़ी-सी झपकी लगी तो उसी तन्द्रिल अवस्था में मैंने एक अनुपम छवि देखी। वह छवि एक सुन्दर लावण्यमयी युवती की थी। मेरे सामने खड़ी मन्द-मन्द मुस्करा रही थी वह। बड़ी ही लुभावनी मुस्कान थी उसकी। उसने मुझसे पूछा, "क्या आपने मुझे पहचाना?"

असमंजस में पड़ गया मैं। चेहरा थोड़ा जाना-पहचाना सा अवश्य लगा, लेकिन उतने से ही हाँ कहा नहीं जा सकता था, इसलिए तुरन्त कुछ बोला नहीं गया मुझसे। बस, मुँह बाए देखता ही रह गया मैं उस तन्वंगी को।

शायद मेरे मन का भाव समझ गई। थोड़ा-सा हंसकर बोली, "कैसे पहचानेंगे ? अगर पहचानते ही होते तो इतनी निर्दयता से पानी में क्यों फेंक आते। एक साधक को इतना निर्दयी नहीं होना चाहिए।"

यह सुनकर चौंक पड़ा मैं एकबारगी। कहीं वह रहस्यमयी मूर्ति ही तो नहीं सजीव होकर खड़ी है मेरे सामने ? हाँ यही तो है। दोनों के चेहरे में कहीं कोई वैषम्य नहीं था..मगर यह सम्भव कैसे हुआ ?

एक अनजाना सा भय समा गया मेरे भीतर। मैने कुछ तोलना चाहा...कुछ कहना चाहा, मगर इसके पहले ही वह युवती किसी राजमर्हिषी के तरह धीरे-धीरे चलती हुई मेरे पास आ खड़ी हुई। मेरे नासापुट एक सर्वथा अपरिचित किन्तु सुगन्ध से भर गये। मैंने पूछा, "कौन है, आप क्या चाहती है, मुझसे ?"

मेरे प्रश्नों के उत्तर में उस युवती ने जो कुछ बताया, उसे सुनकर स्तब्ध रह गया मैं। छत्तीसगढ़ के जिस इलाके में मनोहरलाल रह रहा था, वह लगभग दो सौ वर्ष पहले भील जाति के एक जमींदार के अधिकार में था, जिसका नाम था वामन देव। वह शैव सम्प्रदाय का तंत्र साधक और दन्तेश्वरी देवी का उपासक था। अपनी इष्ट देवी को प्रसन्न करने के लिए वह उग्र तंत्र साधक दीपावली की रात नर-बलि भी दिया करता था और नर रक्त से ही भगवती दन्तेश्वरी का पूजन करता था।

वामदेव की इकलौती बेटी थी चित्रांगदा - उम्र लगभग सोलह वर्ष अपूर्व रूप-सौन्दर्य और यौवन की स्वामिनी थी वह। लम्बा-छरहरा कद, गौर वर्ण, नुकीले नासिका, बड़ी-बड़ी स्वप्निल आँखे और नितम्बों को छूती घनी काली केश-राशि। सचमुच चित्रांगदा अनिंद्य

रूपसी युवती थी। उसे जो भी देखता- बस देखता ही रह जाता। इकलौती संतान होने के कारण वामदेव चित्रांगदा को अत्यधिक स्नेह करता था।

वामदेव के खजाने में अकूत सम्पत्ति थी और तत्कालीन ब्रिटिश गवर्नर हलमिलटन की नजर गिद्ध की तरह उसके खजाने पर लगी हुई थी। उसे हथियाने के लिए वह नित नयी-नयी चालें भी चल रहा था।

वामदेव को इस बात का पता था। इसलिए अपनी सम्पत्ति की सुरक्षा के संबंध में उसे बराबर चिंता बनी रहती। आखिर जब कोई उपाय नहीं सुझाई पड़ा तो उसने अपने तांत्रिक गुरू को सारी समस्या बतायी। वामदेव का गुरू भयंकर कापालिक था और उन दिनों नर्मदा तट पर कुटिया बनाकर रह रहा था। उसने वामदेव से पूछा, उसकी सबसे प्रिय वस्तु क्या है ?

छूटते ही वामदेव ने जवाब दिया, मेरी बेटी चित्रांगदा...और उसके बाद है मेरी सम्पत्ति।

गुरु ने पूछा, क्या तुम धन की ही तरह चित्रांगदा को भी नहीं सुरक्षित करना चाहते ?

चाहता हूँ, गुरूदेव ! चित्रांगदा मुझे प्राणों से भी प्रिय है। मुझे तो हमेशा डर लगा रहता है कि कहीं मेरी पुत्री पर म्लेच्छों की कामुक दृष्टि न पड़ जाय।

तो ठीक है। तुम्हारे धन की रक्षा चित्रांगदा करेगी और चित्रांगदा की रक्षा करेगा धन।

वह कैसे गुरूदेव ? वामदेव ने अचकचाकर पूछा, मैं कुछ समझा नहीं।

कापालिक गुरू ने जो उपाय बताया, उसे सुनकर वामदेव एक बार तो विचलित हो उठा, फिर उसने अपने गुरू की बात मान ली।

आखिर वह उपाय क्या था ?

वह उपाय था धन की सुरक्षा के लिए कोमलांगी चित्रांगदा की बलि। कापालिक गुरू की योजनानुसार काले पत्थर का एक काफी लम्बा-चौड़ा बक्सा बनवाकर उसमें कोषागार का सारा धन रख दिया, फिर अमावस की काली अंधेरी रात में उसी के ऊपर चित्रांगदा की बलि दे दी गई। इतना ही नहीं, धन की सुरक्षा अक्षुण्ण बनी रहे और चित्रांगदा की आत्मा भी कहीं भटकने न पाये, इसके लिए उस कापालिक ने तांत्रिक विधि से चित्रांगदा की कांसे की मूर्ति बनवाकर तांत्रिक विधि से उसी जगह स्थापित कर दिया था। कापालिक गुरु ने वामदेव से कहा था कि जब चित्रांगदा की आत्मा को एक ही परिवार के दस प्राणियों का रक्तपान करने को मिलेगा, उसी समय उसकी आत्मा इस बंधन से मुक्त होकर पुनर्जीवन प्राप्त कर सकेगी।

उस रहस्यमयी अपरचिता के मुँह से यह सब सुनकर भय और रोमांच के मिले-जुले भाव से सिहर उठा मेरा मन और उसी स्थिति में अपने-आप न जाने कैसे मेरे मुँह से निकल गया, क्या तुम्हीं चित्रांगदा की आत्मा हो ?

हाँ ! मैं ही चित्रांगदा की अतृप्त आत्मा हूँ। मेरी ही बलि दी गई थी धन की सुरक्षा के लिए और उसी धन का प्रलोभन देकर मैंने ही मनोहरलाल के परिवार के लोगों का रक्तपान किया है...मगर मुझे प्रेतयोनि से मुक्ति और पुनर्जीवन तभी मिलेगा, जब मैं मनोहरलाल का भी रक्तपान कर लूंगी।

बात पूरी करते ही वह रहस्यमयी युवती गायब हो गयी। इसके साथ ही मेरी आँख भी खुल गयी। देखा तो सवेरा होने ही वाला था। कहने की आवश्यकता नहीं कि रात में मैंने जो कुछ स्वप्न के रूप में देखा और सुना था, उसने मुझे बुरी तरह विचलित कर दिया। मस्तिष्क में बार-बार एक ही प्रश्न उभरने लगा - क्या मनोहरलाल की भी वही दशा होगी, जो उसके परिवार की हुई है... क्या मनोहरलाल भी जीवित नहीं रहेगा ?

पूरा दिन उसी के इंतजार में बीत गया। दूसरे दिन भी नहीं आया वह। आखिर क्यों नहीं आया ? क्यों... नहीं ! नहीं ! ऐसा नहीं हो सकता। वह आयेगा अवश्य ! कहीं किसी काम से रूक गया होगा।

मगर जब दो दिन और बीत गये तो धीरे-धीरे स्वप्न की सत्यता पर विश्वास होने लगा मुझे, फिर अखबार में मनोहरलाल की मृत्यु का समाचार पढ़कर मैं एकदम स्तब्ध रह गया। वह सड़क पार करते समय एक ट्रक की चपेट में आ गया था। बड़ी ही हृदयविदारक मृत्यु हुई थी उसकी। सारा शरीर चिथड़े-चिथड़े हो गया था और काफी दूर तक खून-ही-खून फैला था। समाचार में बताया गया था कि मृतक के पास कांसे की एक मूर्ति के अलावा और कुछ नहीं था।

अध्याय १२
पिशाच लोक की सुन्दरी

आपने भूत-प्रेत और तंत्र-मंत्र से संबंधित कई कहानियाँ पढ़ी होंगी, मगर जो, मैं इस समय सुनाने जा रहा हूँ उन सबसे अलग है।

काशी के अधिकांश मुहल्ले किसी समय बंगाली शाक्त साधकों के गुप्त केन्द्र थे। बंगाली टोला तो शाक्त कापालिकों का प्रसिद्ध स्थान माना ही जाता था। वे शाक्त कापालिक अपनी इष्ट देवी को प्रसन्न कर अलौकिक तांत्रिक सिद्धियों को प्राप्त करने के लिए दीपावली की रात में गुप्त रूप से बलि भी दिया करते थे।

इसे पूर्व जन्म का संस्कार ही समझना होगा कि मैं इस प्रकार गुप्त रूप से निवास करने वाले तंत्र-साधकों की खोज में शुरू से ही उन मुहल्लों की संकरी, गन्दी और धूल से भरी गलियों का बराबर चक्कर लगाया करता था। मैं उन साधकों से मिलकर उनकी गुप्त तांत्रिक क्रियाओं से भली-मांति परिचित होना चाहता था, साथ ही उनकी मति-गति को भी समझना चाहता था।

तंत्र बड़ी ऊँची विद्या है। इसकी साधना भी बड़ी कठिन, गम्भीर और सबके वश की नहीं है। सबको इसमें सफलता भी नहीं मिलती। तंत्र का अपना विज्ञान भी है। जो उसके विज्ञान को भली-भांति समझते हैं, वही तांत्रिक साधना कर सकते है और उसमें सफलता भी प्राप्त कर सकत्ते हैं।

वैसे तो सभी साधनायें शक्ति की साधना है, मगर साधक और शक्ति के बीच देवता माध्यम होते हैं। वे शक्ति के वाहक का काम करते हैं। पर तांत्रिक साधना में किसी भी देवता की मध्यस्थता की जरूरत नहीं पड़ती। तांत्रिक साधना एकमात्र शक्ति साधना है। शक्ति से सीधा संबंध है तंत्र का, इसीलिए तांत्रिक साधना काफी खतरनाक समझी जाती है। जरा सी भूल या लापरवाही प्राण घातक सिद्ध होती है। हर क्षण प्राण संकट में रहता है। सच तो यह है कि तांत्रिक साधना तलवार की तीखी धार पर रखी शहद की बूंद के समान है। चाहो तो उसे चाटो, मगर साथ ही जीभ भी चिर जायेगी। शहद का स्वाद ले लिया जाये और जीभ भी न चिरे यह कौशल होना चाहिए और यह कौशल एकमात्र सद्गुरू ही बतला सकता है।

तंत्र के अंतर्गत ६४ विद्यायें है, जिनमे एक है हाकिनी विद्या। यह घोर तामसिक और अत्यन्त भयंकर विद्या है। इस विद्या की साधना करने से बड़े-बड़े तांत्रिक भी घबराते है। यह है भी ऐसी ही प्राणघातिनी साधना। जरा-सी भी गलती हुई कि प्राण संकट में। पग-पग पर मौत का भय बना रहता है।

सन् १९५० में जब मैं तंत्र विद्या पर व्यक्तिगत रूप से शोध और खोज कार्य कर रहा था, उस समय मुझे इसी हाकिनी विद्या से संबंधित एक दुर्लभ पाण्डुलिपि मिली थी। उन दिनों मेरे एक तांत्रिक मित्र थे। नाम था रामचंद्रा। वह तैलंगी ब्राह्मण थे। जब मैंने उनसे इस

विद्या की चर्चा की तो उन्होंने बतलाया कि हमारी धरती के प्राणियों का सबसे निकट संबंध जिस लोक से है वह है तामसिक लोक। पृथ्वी जिस आकाशगंगा की परिधि में है उसी में इस लोक का विस्तार है।

तामसिक लोक चार भागों में विभक्त है। पहला भाग ब्रह्म राक्षसों और ब्रह्म पिशाचों का है। दूसरा भाग पिशाचो और बेतालो का है। तीसरे भाग में लम्बी आयु वाली प्रेतात्माएं रहती है। और चौथे भाग में हाकिनी, डाकिनी, शाकिनी आदि तांमसिक शक्तियाँ निवास करती हैं। ये अति भयंकर शक्तियाँ है। प्राकृतिक नियमों में विकृति पैदा कर ये धरती पर भारी उत्पात करती है। भयंकर दुर्घटनाओं, समुद्री तूफानों, प्रलयकारी झंझावातों का मुख्य कारण ये ही होती है। युद्ध और महामारी इनके प्रिय विषय है। वे हमेशा खून की प्यासी रहती है। जहाँ कही सामूहिक रक्तपात होता है, वहीं वे अपने समाज के साथ पहुँच जाती है। इतनी ही नहीं वे किसी भी प्राणी का रूप धारण कर संसार में विचरण कर सकती है और किसी भी मृत स्त्री के शरीर में प्रवेश कर उसकी आयु भोग सकती है। मगर कोई उन्हें न पहचान सकता है और न तो समझ ही सकता है। इसी प्रसंग में रामचंद्रा ने मुझे बताया कि बंगाली टोला में एक अधेड़ उम्र की बंगालिन रहती है, जो मुहल्ले भर में मोना बाई के नाम से प्रसिद्ध है। दिन में वह बगल में फटी-पुरानी कथरी दबाये हाथ में टीन का डब्बा लिए पागलों की तरह घूमती है और भीख मांग कर खाती है। लोग उसे एक पागल भिखारिन के सिवाय और कुछ नहीं समझते।

मगर शर्मा जी, जानते हैं आप...रामचंद्रा जरा गम्भीर स्वर में बोले, उस भिखारिन की देह औरत की है - यह सच है, पर उसके भीतर मोना नहीं बल्कि एक डाकिनी निवास करती है।

आपकी बात समझा नहीं मैं। क्या कहना चाहते हैं आप ?

आज से चालीस साल पहले इसी बंगाली टोला मुहल्ले में एक तांत्रिक रहा करते थे। नाम था कालिकानन्द अवधूत। वह उच्चकोटि के साधक थे। उनके यहाँ एक लड़की थी। नाम था मोना। बड़ी सुन्दर और आकर्षक थी वह। अवधूत महाशय उसे कलकत्ता के किसी अनाथालय से लाये थे। मोना उस समय १२ साल की थी। उन्होंने विधिवत उसे तंत्र पीठिका की दीक्षा दी। दीक्षा प्राप्त करते ही बारह वर्षीया मोना के चेहरे पर एक दिव्य आभा उतर आयी। रोम-रोम अनिर्वचनीय शक्ति से भर उठा। फिर वह सहज नहीं रही। उसके बाद अवधूत शाक्त मार्ग से डाकिनी विद्या की साधना करने लगे और माध्यम बनी मोना। मगर अवधूत महाशय साधना में असफल रहे। न उनकी साधना सफल हुई और न सिद्धि मिली। साधना के अन्तिम चरण में जिस क्षण मोना के शरीर में मंत्र से आकर्षित और तांत्रिक क्रियाओं के वशीभूत डाकिनी ने प्रवेश किया, उसी क्षण मोना की मृत्यु हो गयी। शायद डाकिनी की अदम्य शक्ति को मोना की आत्मा सहन न कर सकी। तभी से मोना के शरीर में वह डाकिनी निवास कर रही है। इस रहस्य को केवल कालिकानन्द अवधूत ही जानते थे। बाद में उन्होंने मुझे बताया।

इतना कहकर रामचंद्रा चुप हो गये। उनके चेहरे के भाव से ऐसा लगा कि वे इस संबंध में

मुझको और कुछ नहीं बताना चाहते हैं ।

सहसा विश्वास नहीं हुआ रामचंद्रा की बातों पर । मेरी अपनी दृष्टि है । अपना विचार है । अपना सिद्धान्त है । मगर एक रात मैंने जो कुछ देखा, उसने मुझे एकबारगी स्तब्ध कर दिया । फिर तो विश्वास करना ही पड़ा मुझे ।

मोना अहिल्या बाई घाट के ऊपर एक छोटी सी कोठरी में रहती थी ।

कार्तिक का महीना था । हल्की गुलाबी ठंड पड़ने लगी थी । सारा वातावरण अन्धकार में डूबा हुआ था । जब मैं उस संकरी गली में घुसकर मोना की कोठरी के सामने पहुँचा तो देखा, दरवाजा बन्द था, मगर भीतर रोशनी थी । जब मैंने दरवाजे की फांट से झांक कर देखा तो मेरे होश उड़ गये । सारा शरीर कांपने लगा । उस ठंड में भी मैं पसीने से भींग उठा ।

मोना का शरीर दरी पर निश्चेष्ट पड़ा था और उसके निकट एक षोडशी युवती खड़ी थी । हे भगवान ! एक नारी में इतना सौन्दर्य, उतना लावण्य और इतना आकर्षण कल्पना भी नहीं की जा सकती । निश्चय ही वह मानवेतर सौन्दर्य था ।

एकाएक फटाक से दरवाजा खुला । मैं तुरंत वहाँ से हट गया । युवती बाहर निकली और घाट की सीढ़ियाँ उतरने लगी जल्दी-जल्दी ।

उसके बाद मैंने उस हल्के अंधेरे में जो कुछ देखा, क्या आप उस पर विश्वास करेंगे ? आप जो भी सोचे या समझें, मगर सत्य तो सत्य ही है । आत्मपरक सत्ता में निहित सत्य पहले अविश्वसनीय लगता ही है । उसको सिद्ध करने के लिए कोई भौतिक प्रमाण नहीं दिया जा सकता।

मैंने देखा- नीचे घाट पर पहले से ही कुछ युवतियाँ खड़ी थी । वे शायद मोना की ही प्रतीक्षा कर रही थीं ।

मोना की कोठरी से निकलने वाली युवती जब उनसे मिली तो वे सब एक साथ खिलखिलाकर हँसने लगी । बड़ी मधुर, बड़ी कोमल और सरस हंसी थी वह । फिर सभी युवतियाँ एक साथ थोड़ी दूर तक आकाश में उठी, फिर एक साथ हवा में विलीन हो गयी ।

मैं स्तब्ध अवाक देखता रहा ।

कौन थी वे युवतियाँ ? कहाँ गयीं वे सब ?

किसी प्रकार अपने अवश चित्त को संभालता हुआ घर पहुँचा । उस समय सबेरा होने ही वाला था । रामचंद्रा से मिलकर सारी बातें बता दी ।

रामचंद्रा बोले, डाकिनियाँ पिशाच लोक की सुन्दरी होती है । मोना के शरीर में जो डाकिनी है, वह उस समय अपने निज लोक के निज शरीर में थी । उसकी वे साथिनें भी पिशाचलोक की सुन्दरियाँ ही थी । वे सब आकाशमार्ग द्वारा पृथ्वी पर विचरण किया

करती हैं। उनका शरीर पार्थिव होते हुए भी साधारण दृष्टिपथ से परे रहता है। सभी उन्हें नहीं देख सकते।

बड़े आश्चर्य की बात थी। सब कुछ रहस्यमय था। अविश्वसनीय था। अन्त में रामचंद्रा बोले, पृथ्वी उन सुन्दरियों का आखेट-स्थल है। प्रकृति में विकृति पैदा करके वे अपना मनोरंजन करती है। इसके अलावा स्वस्थ-सुन्दर युवकों के साथ अदृश्य रूप से सहवास कर अपनी वासना की पूर्ति करती है। यदि पिशाच लोक की ये सुंदरियाँ सिद्ध हो जाये तो मनुष्य उनकी सहायता से असम्भव से असम्भव कार्य कर सकता है। शायद इसी उद्देश्य को लेकर कालिकानन्द अवधूत महाशय डाकिनी विद्या की साधना कर रहे थे।

दो-तीन दिन बाद अचानक मोना मुझे दिखाई पड़ गयी। कथरी लपेटे हाथ में टीन का डब्बा लिए वह लाई-चूड़ा की दूकान पर खड़ी खी-खी हँस रही थी उस समय।

मैं करीब जाकर खड़ा हो गया।

उसने एक बार गहरी नजरों से मेरी ओर देखा, फिर अचानक जोर-जोर से हंसने लगी।

मैंने धीरे से कहा, “दारू पीयेगी, मोना”?

यह सुनते ही मोना का हंसना बन्द हो गया। बोली, पिलायेगा ?

हाँ, चल ! अभी पिलाऊँगा।

मैं उसे अपने घर ले आया। उसके सामने शराब की बोतल रख दी। मोना शराब पीने लगी। एक बोतल... दो बोतल... फिर तीसरी बोतल भी उसने एक ही सांस में खाली कर दी।

देशी शराब, मगर नशा नाम मात्र का नहीं। न आँखे लाल हुई और न जबान ही लटपटायी मोना की।

वास्तविक स्थिति समझ गया मैं। मोना की पार्थिव काया में बैठी उसी डाकिनी ने सारी शराब पी थी। मैं यही चाहता भी था।

मोना बोली, ”काफी दिनों बाद शराब पीने को मिली।”

और पीयेगी ?

फिर दो बोतल शराब और पी डाली मोना ने।

उसी दिन से मोना के पीछे पड़ गया मैं। काश ! पीछे न पड़ा होता तो मेरी इतनी दुर्दशा न होती। मगर कैसे न पड़ता ? डाकिनी सिद्धि का चक्कर जो था। अपने आप में अलौकिक शक्तियों को भरने की ऊँची उड़ान जो थी।

मैं रोज मिलने लगा मोना से। उसको खुश करने के लिए कभी शराब, कभी भुना हुआ गोश्त और कभी मिठाई ले जाता साथ। एक दिन काफी प्रसन्न दिखाई पड़ी वह। बोली, “तू मेरे पीछे क्यों पड़ा है ? आखिर क्या चाहता है ? बोल ?”

डाकिनी सिद्धि चाहता हूँ मैं। मैं हठात् कह बैठा।

डाकिनी सिद्धि ... कैसी सिद्धि .. समझी नहीं मैं।

बनो मत, मोना। मैं तुम्हारे असली रूप से परिचित हो चुका हूँ। कोई रहस्य मुझसे छिपा नहीं है। तुम कौन हो.. यह भी मैं भली-भाँति जान गया हूँ।

मोना का चेहरा वीभत्स और विकृत हो उठा।

तू डाकिनी है। पिछले ४० साल से तू मोना की देह में अधिकार जमाये बैठी है।

मोना एकबारगी चीख उठी। उसकी आँखे लाल हो उठी।

उस दिन से मोना से मिलना-जुलना बन्द कर दिया मैंने। डाकिनी विद्या से संबधित पाण्डुलिपि तो थी ही मेरे पास। उसमें बतायी गयी विधि के अनुसार मैं साधना करने लगा। धीरे-धीरे एक महीना बीत गया। अन्त में जो सोचा था, वही हुआ। मोना मंत्र शक्ति से बंधी जब सामने आकर खड़ी हुई तो उसका रूप साधारण नहीं था। लगभग चीखकर बोली, "तू मुझे क्यों परेशान करता है ? बोल, क्या चाहता है ?"

डाकिनी सिद्धि ! मैं तुमको अपने अधिकार में करना चाहता हूँ।

नहीं कर सकते...

क्यों ?

मैं मोना की देह में अभी दस साल और रहूँगी। तब तक तुम किसी भी शक्ति से मुझे अधिकार में नहीं कर सकते। मोना की आँखे नागमणि की तरह चमक रही थी उस समय।

मैं तुमको मोना के शरीर में रहते हुए ही सिद्ध कर लूँगा। जो कालिकानन्द अवधूत नहीं कर सके, वह मैं करूँगा। हाँ ! यह बात जरूर है कि मुझे उनकी तरह मानवेतर शक्ति की लालसा नहीं है। मैं तुम्हारे माध्यम से तामसिक लोक, वहाँ के प्राणियों का रहस्य और उनकी मति-गति जानने-समझने भर की कामना करता हूँ।

हठ मत करो। यह सम्भव नहीं है तुम्हारे लिए। तुम मंत्र बल और तांत्रिक क्रिया शक्ति के जरिये अंतरिक्ष की किसी भी अमानवीय आत्मा को अपने साथ संयुक्त नहीं कर सकते। अगर कर भी लिया तो उसका बड़ा भयंकर परिणाम होगा।

मुझे इसकी चिंता नहीं है, मोना। मैं शायद प्रकृति के गूढ़ रहस्यों को जानने समझने के लिए ही पैदा हुआ हूँ। इसके लिए मैं बड़े-से-बड़ा खतरा उठाने को तैयार हूँ।

मेरी बात सुनकर क्रुद्ध नागिन की तरह फुफकारती हुई मोना वापस चली गयी।

साधना की अन्तिम क्रिया के लिए श्मशान की जरूरत पड़ी मुझे। मेरी नजर में नारायणपुर का श्मशान उपयुक्त लगा। वहाँ न मणिकर्णिका और हरिश्चन्द्र घाट के श्मशान की तरह कोलाहल था और न भीड़-भाड़। कभी कदा ही कोई चिता जलने के लिए आती है वहाँ।

दिसम्बर का महीना। अमावस्या की घनी काली रात। भयानक निस्तब्धता में डूबा हुआ नारायणपुर का श्मशान — शायद दो-एक दिन पहले कोई चिता जली थी वहाँ। उसकी राख चारो तरफ बिखरी थी। एक ओर कुछ अधजली हड्डियाँ भी पड़ी थी। उसी में एक मानव खोपड़ी भी थी। गंगा की धारा की ओर थोड़ा झुका हुआ पीपल का वह काफी पुराना पेड़ हौले-हौले हिल रहा था, जिससे उसकी डालों में बंधे यमघण्ट की छड़ें कभी-कदा आपस में टकरा जाती थी, जिनकी आवाज से भय का संचार हो जाता था मन में। न जाने कहाँ और किधर से सियारों का झुण्ड निकल आया वहाँ। उनकी जलती हुई पीली आँखें मेरे चारो ओर घूमने लगी। सोचा, अब क्या होगा। तभी गांव की ओर से कुत्तों के भौंकने की आवाज आने लगी। सियारो की टोली गायब हो गयी। चलो, विघ्न टला। पीपल के नीचे ही आसन बिछाया। शराब की बोतलें और मुर्गे के गोश्त के साथ अन्य जरूरी सामान सामने रखे। पहले जो कुछ करना था, वह किया, फिर आसन पर बैठकर जप करने लगा।

रात धीरे-धीरे गहरी होती गयी। जप शुरू करने के एक घण्टे बाद ऐसा लगा कि कोई अदृश्य हाथ मेरी कलाई को पकड़कर जप करने से रोक रहा है, मगर मैंने बन्द नहीं किया। बराबर जपता रहा मंत्र। एकाएक दूर से सियारों के समवेत स्वर में रोने की आवाज आयी और उसके साथ मैंने देखा कि गंगा की ओर से बहुत सारे नर कंकाल गिरते-पड़ते लड़खड़ाते श्मशान में आकर खड़े हो गये। दूसरे ही क्षण सारा वातावरण सड़ांध से भर गया। अजीब सा हो उठा वातावरण। उन नर-कंकालों ने मुझे चारो ओर से घेर लिया। भय विजड़ित दृष्टि से मैं उन सबको देख रहा था। कुछ क्षण बाद सबने मिलकर एक साथ विकट अट्टहास किया, फिर एक गहरा सन्नाटा छा गया वहाँ। सन्नाटा नहीं..बल्कि मन में खिन्नता और क्षोभ उत्पन्न करने वाली बैचेनी। फिर क्या देखता हूँ कि वे सारे नर-कंकाल एक-एक कर मनुष्य के रूप में बदल गये। मगर उनका रूप ठीक-ठीक मनुष्यों जैसा था ? नहीं ! काफी वैषम्य था। शरीर के अनुपात से सिर काफी बड़े थे उनके। नाकें भी काफी लम्बी और मोटी थीं। कान भी हद से ज्यादा बड़े-बड़े थे। उनकी आँखों में बिल्ली जैसी चमक थी। वे सब एक साथ मेरी ओर घूर रहे थे। उफ उनकी दृष्टि को तमाम उम्र नहीं भूल पाऊँगा मैं। लगा जैसे प्रेतपुरी का दावानल सुलग रहा हो वहाँ। आतंक और भय से मेरी बुरी दशा हो रही थी। मगर मैं अपने आपको संभाले हुए था और हर प्रकार से सतर्क भी। मैं जानता था कि वह भयंकर पैशाचिक लोला थी।

एकाएक पीपल का पेड़ जोर-जोर से हिलने लगा मानों वह किसी अदृश्य तूफान में फंस गया हो। लगा, किसी भी क्षण उसकी डालें टूटकर मुझ पर गिर पड़ेगी। उसी के साथ उस उजाड़-वीरान श्मशान में एक विचित्र विमुग्धकारी सृष्टि हो गयी। पहले चारो ओर हल्के गुलाबी रंग का प्रकाश फैला। बड़ा मोहक था वह प्रकाश। मैंने देखा, उस प्रकाश के भीतर से ही एक के बाद एक युवतियाँ प्रकट हुई — निश्चय ही वे इस धरती की स्त्रियाँ नहीं थी। उनका रूप आकर्षक, कमनीय और सुन्दर अवश्य था, मगर साथ ही साथ उनमें अमानवीयता भी थी, जिसे मन में हल्का-सा भय का संचार होता था। उनके बाल सुनहले और काफी घने थे। आँखे मोरनी जैसी थीं। चेहरे गोल और चिपटे थे। बांहे लम्बी थीं।

कमर काफी पतली थी। वे गले में किसी चमकदार पत्थर के दानों की मालाएँ पहनी थी।

अबतक प्रकाश का रंग गुलाबी से सुनहरा हो चुका था। वे युवतियाँ सामूहिक रूप से उस सुनहरे प्रकाश में इस प्रकार चल-फिर रही थी मानों पानी में तैर रही हों। बड़ा विचित्र लग रहा था उनका इस प्रकार तैरना।

प्रकाश का रंग फिर बदला। अब वह बिल्कुल सफेद हो गया और उस रंग-परिवर्तन के साथ ही वे तमाम युवतियाँ भी गायब हो गयी और उनके स्थान पर उस शुभ्र प्रकाश में एक ऐसी नवयुवती प्रकट हुई, जिसे देखकर मैं चौंक पड़ा। पहचानते देर नहीं लगी मुझे। वह मोना के शरीर में रहने वाली डाकिनी थी। उस दिन अंधेरे के कारण उसका रूप ठीक से नहीं देख सका था, मगर प्रकाश में पिशाचलोक की उस सुंदरी की छवि देखकर मैं स्तब्ध रह गया। उसका अंग-प्रत्यंग जैसे तराशा हुआ था। उसकी गहरी झील जैसी आँखों में हीरे की "कनी" की चमक और अजीब-सा सम्मोहन था। वह धीरे-धीरे मेरे करीब आयी और बड़ी-बड़ी आँखों से मेरी ओर अपलक देखने लगी।

मैंने तुरन्त झोले से शराब की बोतल निकाली और उसे मुर्दे की खोपड़ी में उड़ेल कर उसके सामने कर दिया। वह खिलखिला कर हंसी और खोपड़ी उठाकर मदिरा पीने लगी। वह पीती जाती थी और मैं बार-बार कपाल पात्र में शराब उड़ेलता जा रहा था। फिर एक विकट अट्टहास किया उसने। सारा श्मशान प्रान्त गूंज उठा उसकी हंसी से। मेरे प्राण आतंक से हिम हो गये जैसे उस अभूतपूर्व क्षण में कुछ घटित होने जा रहा था। क्या पिशाच लीला ? लगा, मैं कभी किसी क्षण मूर्च्छित हो जाऊँगा। पर उसी समय एक कोमल स्वर सुनाई पड़ा... "जप बन्द दो।"

वह युवती शराब से लाल हो उठी आँखों से मेरी ओर देखती हुई कह रही थी, तुम्हारे जप से हलचल मच गयी है। मुझे भी मोना का शरीर छोड़कर यहाँ आना पड़ा।

मैं जप बन्द कर दूँगा, मगर तुम भी वादा करो कि मोना की देह में वापस लौट कर नहीं जाओगी।

फिर दस साल कहाँ रहूँगी मैं ? मुझे तो रहना है अभी। कालिकानन्द अवधूत की मंत्र-शक्ति के वशीभूत मेरा अस्तित्व अभी दस साल और बंधा रहेगा पार्थिव काया के बंधन में। तुम्ही बताओ, क्या करुँ मैं ?

यदि मैं अवधूत महाशय की मंत्र-शक्ति को तोड़ दूँ तो क्या तुम मेरे अधिकार में रहोगी ?

मैं तुम्हारे इस प्रश्न का जवाब तब दूँगी जब तुम वचन दोगे कि शराब पियोगे और...और मेरी भोग कामना भी पूरी करोगे ?

भोग कामना की पूर्ति तो कर सकूँगा, पर शराब पीने के लिये मत कहो। शराब से मुझे बेहद घृणा है।

वह हँस पड़ी। बड़ी रहस्यमय हँसी थी वह। बोली, तब तो तुम अपने अधिकार में न मुझे

कर सकोगे और न मुझसे कोई सहायता ही ले सकोगे ।

क्या तुम्हारे लिए शराब पीना जरूरी है ?

हाँ ! शराब में ऐसी शक्ति है जो साधक के उपचेतन मन के द्वार खोल देती है और हम जैसे प्राणी उसी द्वार से मानव-शक्ति में प्रवेश करते है ।

न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर मैने कह दिया, ठीक है...तुम्हें हासिल करने के लिए मैं कोई भी कीमत चुका सकता हूँ । चलो, मुझे शराब पीना स्वीकार है ।

काश ऐसा न कहा होता मैंने उस समय ।

पिशाच लोक की वह अनिंद्य सुन्दरी मेरी बात सुनकर एकबारगी हँस पड़ी । निश्चय ही वह पैशाचिक हँसी थी । उसका अर्थ नहीं समझ सका मैं ।

लो पीयो । मेरे हाथ से पीयो । कहते-कहते उस युवती ने अपने कोमल हाथ से मानव खोपड़ी को शराब से भरकर मेरे होठों से लगा दिया । मगर क्या वह शराब थी ? उसमें शराब जैसी कड़वाहट या दुर्गन्ध थी ? नहीं मुझे तो ऐसा लगा जैसे किसी अलौकिक रस का पान कर रहा हूँ, जिसका स्वाद अवर्णनीय था । मगर दूसरे ही क्षण मुझे ऐसा लगा कि मानो मैं मर रहा हूँ। मन घबराने लगा । सारे शरीर में सनसनाहट होने लगी । दिल डूबने लगा । पता नहीं कबतक मेरी यह स्थिति रही, फिर अचानक मैंने हल्कापन महसूस किया और उसके बाद ही अपने आपको सर्वथा नवीन वातावरण में पाया । मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि वह वातावरण इस धरती का नहीं था वह अलौकिक था । सिर्फ भावना का प्रवाह था वहाँ । मेरी आत्मा अपने आप विस्तृत और व्यापक हो उठी थी । मैं समझ गया कि मेरे अस्तित्व का सम्बन्ध किसी ऐसे पारलौकिक जगत से जुड़ गया है, जहाँ से मनुष्यों की अंतर्चेतना और अन्तर्मन का संचालन होता है । इसके अलावा ज्ञान-विज्ञान का विशेष केन्द्र भी है यह जगत । मगर अधिक समय तक मैं उस जगत और स्थिति में नहीं रह सका ।

जब मेरी बहिर्प्रज्ञा जागृत हुई तो सबेरा होने वाला था । उस उजाड़ मरघट के वातावरण में चारो ओर सांय-सांय हो रहा था । उसी दिन मालूम हुआ कि मोना पिछली रात अपनी कोठरी में मरी पायी गयी । अब मुझे विश्वास हो गया कि डाकिनी हमेशा के लिए मोना की काया छोड़कर मेरे अधिकार में हो गयी है ।

इस घटना के तीन-चार दिन बाद पिशाचलोक की वह रूपसी डाकिनी स्वयं मेरे पास आयी । उसके आते ही वातावरण शराब की दुर्गन्ध से भर गया । फिर रोज सांझ के समय उस सुन्दरी के आने का नियम ही बन गया । उसकी अगोचर उपस्थिति आनन्ददायक भी लगती और भयप्रद भी । मुझे उसके लिए रोज मदिरा का इन्तजाम करना पड़ता । मेरे माध्यम से वह सारी शराब पी जाती । धीरे-धीरे मेरी आत्मा सुषुप्तावस्था में चली जाती है और मैं पूर्णत: चेतनाहीन हो जाता । फिर उसी चेतनाशून्य स्थिति में मैं उस पिशाचिनी के साथ न जाने किस-किस लोक-लोकान्तरों में भ्रमण करता । जब मेरी आत्मा जागृत अवस्था में लौटती तो वहाँ की सिर्फ धुंधली-धुंधली स्मृति भर मेरे मस्तिष्क में रहती । मैंने अनुभव

किया कि जिन स्थानों में जाता था, वहाँ कहीं तो काल यानी समय की गति पृथ्वी की अपेक्षा अत्यधिक मन्द है और कहीं अत्यधिक तीव्र।

एक बार मैं ऐसे जगत में चला गया, जिसे उच्च कोटि के भक्तों का लोक कहा जा सकता है। वहाँ मुझे विभिन्न सम्प्रदायों के भक्त दिखाई पड़े। उनके चारो तरफ प्रकाश का वलय था। हर भक्त अपने इष्ट देवता या देवी के साथ भाव के अथाह सागर में डूबा हुआ था। उन सबके शरीर पारदर्शक और चमकीले थे।

पिशाचिनी ने बताया कि इस स्थान पर इच्छा और विचार का कोई महत्व नहीं है। केवल भाव और भावना का मूल्य है। कहने लगी- ये तमाम लोग अपने-अपने इष्टदेव के साथ अद्वैत भाव में है। संसार में रहकर इन सभी लोगों ने भक्ति में उच्च अवस्था प्राप्त की थी। संसार में जो व्यक्ति इनके इष्ट की साधना-उपासना या भक्ति करता है, उसकी याचना के अनुसार और उसकी भावना एवं भक्ति की गहराई देखकर ये उसकी कामना पूरी करते हैं। मगर आदमी सोचता है कि उसकी कामना भगवान ने पूरी की है। यह बहुत बड़ा भ्रम है। ये लोग संसार में व्यक्ति के मनपसंद रूप में प्रकट होकर दर्शन भी देते हैं। तब भी भक्त यही सोचता है कि भगवान ने उसको दर्शन दिया है। ऐसा सोचना बहुत बड़ी गलती है। देवी-देवताओं और उनकी भक्ति के नाम पर संसार में जो भी चमत्कार होते है, वे सब इन्हीं लोगों के जरिए होते है। अपनी कामनाओं की पूर्ति और चमत्कारों का संबंध भगवान से जोड़ना भारी भूल है। भगवान का न चमत्कारों से संबंध है और न भक्तों की भावना-कामना से, उनकी ओर से ये आत्माये ही श्रद्धालु भक्तों की इच्छा पूरी करती है और समय पर दर्शन भी देती है। भगवान या परमेश्वर एक सर्वव्यापक परमतत्व है, परमशक्ति है। शक्ति न किसी की उपेक्षा करती है, और न कोई अपेक्षा।

इसी प्रकार तामसिक भक्तों की आत्माओं का अपना अलग जगत है। इन्ही को अपदेवता कहते है। संसार में रहकर जिन्होंने तामसिक क्रियाओं और उपकरणों के जरिए तामसिक देवता की साधना-उपासना आदि की है, वे अपने जगत में अपने तामसिक इष्ट देवता के नाम से जाने-पहचाने जाते हैं।

ये अपदेवता भैंसे, बकरे, मुर्गे आदि की बलि और शराब चढ़ाने से प्रसन्न होते है और बहुत जल्दी मनुष्य की कामना भी पूरी कर देते है। कुछ तो अपनी प्रशंसा पाने के लिए और कुछ योग्य वस्तुओं को पाने के लोभ में मनुष्य की सहायता करते हैं। कुछ अपदेवता तो ऐसे हैं कि अपना पारिश्रमिक पहले ही तय कर लेते हैं। यदि कामना पूरी हो जाने पर उनके पारिश्रमिक स्वरूप मांस-मदिरा आदि भोग वस्तुएं नही दी गयी तो वे बड़े-बड़े नुकसान पहुँचाने की कोशिश करते है। अपदेवताओं की पूजा अधिकतर निम्न वर्ग के ही लोग करते हैं। उनसे वे सन्तुष्ट और प्रसन्न भी रहते हैं।

एक बार मेरे पूछने पर डाकिनी ने बताया कि उसकी गति आकाशगंगा की सीमा तक है। आकाशगंगा का जो तारा पृथ्वी के सबसे नजदीक है, उसका भी प्रकाश पृथ्वी तक पहुँचने में १,२६,००० मील प्रति सेकेंड की गति से चार-पाँच साल लग जाते हैं।

मैंने पूछा, तुम सब किस गति से आकाश-संचरण करती हो ?

डाकिनी ने बताया, मन की गति से। मगर मेरे और तुम्हारे मन में काफी अन्तर है। मनुष्य का मन शक्ति के सीमित दायरे में घूमता है, जबकि मानवेतर मन में असीम शक्ति होती है और उसका दायरा भी व्यापक होता है।

तब तुम मुझे अपने साथ कैसे ले जाती हो?

अपने मन से तुम्हारे मन को बांध देती हूँ। उस समय तुम्हारी आत्मा तो हृदय के अन्त: भाव में रहती है, मगर तुम्हारा मन मेरे साथ रहता है। सोचना, समझना और अनुभव करना मन का काम है। उसे स्मृति या संस्कार के रूप में संजोकर रखना आत्मा का काम है। तुम्हारा मन मेरे साथ लोक-लोकान्तरों में जो कुछ अनुभव कर आता है, उसे तुम्हारी आत्मा स्मृति के रूप में स्वीकार कर लेती है।

एक बार मैं उस पिशाचिनी के साथ ऐसे लोक में चला गया, जहाँ केवल सूक्ष्मतम भावनाओं का तरल प्रवाह और मात्र भावना का ही स्पन्दन था। वहाँ पहुँचकर कमरे में लेटे हुए चेतनाशून्य अपने पार्थिव शरीर को मैं एक दर्शक की तरह बिलकुल साफ देख रहा था। वह बड़ी विलक्षण अनुभूति थी। चारो तरफ हल्के गुलाबी रंग का प्रकाश बिखरा हुआ था। वातावरण में आत्मा की गहराई को छू लेने वाली शान्ति बिखरी हुई थी शायद भारतीय योगियों ने इसी लोक को वैश्वानर जगत कहा है। जो आत्मा की चौकी यानी तुरीयावस्था है।

वैश्वानर जगत दो भागों में है - पहला भाग ज्ञान का और दूसरा भाग विज्ञान का। दोनों भागों की आत्मायें समय-समय पर ज्ञान-विज्ञान के नये-नये सिद्धान्तों को संसार में प्रकट करने के लिए मानव शरीर धारण करती है।

जब वैज्ञानिकों को पार्थिव की मूल इकाई 'इलेक्ट्रान' की गतिविधियों में कोई कार्य कारण संबंध स्थापित करने में सफलता नहीं मिली तो उन्हें विवश होकर मानना पड़ा कि भौतिक सत्ता के आगे शायद एक अभौतिक सत्ता है...वह है वैश्वानर जगत।

आज वैज्ञानिकों को उस वैश्वानर जगत का आभास मिल चुका है। वहाँ की सूक्ष्मतम भावनाओं के तरह प्रवाह का भी वे हल्का सा अनुभव कर चुके हैं और अब वे गणितीय रीति से क्वांटम मैकेनिक्स द्वारा उस जगत में प्रवेश करने का सफल प्रयास कर रहे हैं।

क्वांटम मैकेनिक्स इस शताब्दि की विलक्षण वैज्ञानिक उपलब्धि है। इसके द्वारा भौतिक विज्ञान ने स्थूल जागृत महतो महीयान विश्व को छोड़कर अणोरणीयान वाले उस सूक्ष्मातिसूक्ष्म वैश्वानर लोक में प्रवेश किया है, जहाँ अब तक केवल उच्चकोटि के योगियों का ही प्रवेश था।

वैज्ञानिको ने एक मत से स्वीकार किया है कि वहाँ उन उच्चतम वैज्ञानिक सत्यों का साक्षात्कार हो सकता है, जो भौतिक और चेतना के स्तर पर सम्भव नहीं है।

उस डाकिनी से प्राप्त विशेष तांत्रिक और यौगिक क्रिया के जरिये और डाकिनी की सहायता से अभौतिक चेतना के स्तर पर मैंने कहाँ-कहाँ और किन-किन लोक-लोकान्तरों में भ्रमण किया, इसका लेखा-जोखा मेरे पास नहीं है। स्मृति में भी अब कुछ सुरक्षित नहीं है। मगर इस सिलसिले में एक दीर्घ अन्तराल के बाद मैं आज जहाँ पहुँचा हूँ और जिस स्थिति में हूँ, वहाँ सत्य की भूखी-प्यासी मेरी आत्मा एकबारगी हतप्रभ हो गयी है। न मैं सहज हूँ और न मेरा जीवन ही सहज रह गया। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि पिशाचलोक की उस सुन्दरी ने मेरे मानस के सामने जीवन और जगत का जो नग्न सत्य खोल कर रखा, वह मेरे लिए भगवान के विराट रूप के समान है, जिसे देखकर मैं अर्जुन की तरह और अधिक व्याकुल हो उठा हूँ। सत्य की अनुभूति भौतिक स्तर पर मन और आत्मा को अशान्त और आकुल कर देती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि एक लम्बे अर्से से मैं ऐसी ही अशान्ति और व्याकुलता के क्षणों में जी रहा हूँ। सत्य यह है कि उस पिशाचिनी के जरिए प्रकृति के तमाम गूढ़ रहस्यों की जानकारी मुझे मिली है, मगर उसका कितना भयंकर और दारूण मूल्य मुझे अभी तक चुकाना पड़ रहा है- यह सिर्फ मैं ही जानता हूँ।

अध्याय १३
काला जादू
  भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधित्व करने वाले साहित्य चारो वेद, अट्ठारहों महापुराण, अट्ठारहों उप पुराण, छः शास्त्रों और उपनिषदों के अलावा चौंसठ विद्याये भी हैं और उन्हीं विद्याओं में एक विद्या है - काली विद्या। जिसे प्रचलित भाषा में काला जादू कहा जाता है।

काला जादू का भारत के बाद अफ्रीका में अधिक विस्तार है। अफ्रीका में काला जादू विभिन्न रूपों में पाया जाता है, लेकिन भारत में उसका सिर्फ एक ही राज है - जिसे पूर्ण मौलिक कहा जा सकता है। प्रस्तुत जो अविश्वसनीय और चमत्कार पूर्ण कहानी मैं आपको सुनाने जा रहा हूँ, वह काला जादू के अपने मौलिक रूप से ही सम्बन्धित है। काला जादू के काले कारनामों के विषय में मैने बहुत कुछ सुन रखा था और बहुत कुछ पढ़ भी रखा था, लेकिन कभी मुझे उसका अविश्वसनीय चमत्कार भी जीवन में देखने को मिलेगा...यह कभी सपने में भी नहीं सोचा था मैंने।

सन् १९५४ ई.। उन दिनों मेरे मित्र थे, मि. सैमसन। मि. सैमसन थे तो अंग्रेज, लेकिन नाम मात्र के — भारतीयता उनकी नस-नस में भरी हुई थी। तंत्र-मंत्र में उनकी गहरी रूचि थी। उन्होंने उसका खूब अध्ययन भी किया था। इसलिए कभी-कदा मौका मिलने पर मुझसे तंत्र-मंत्र और जादू-टोना के विषयों पर गम्भीर चर्चा भी किया करते थे वह।

एक बार विभागीय कार्य से पूर्वी सीमान्त प्रदेश की यात्रा करनी पड़ी। मि. सैमसन भी मेरे साथ थे। मैं जिस गांव में ठहरा हुआ था - उसकी आबादी पन्द्रह-सोलह सौ के लगभग थी। जिनमें अधिकतर खासी जाति के हरिजन थे। जिसका मुख्य धंधा था शराब बनाना और घूम-घूम कर बेचना।

गांव का नाम था सेमड़ापूड़ी। जिसके चारों ओर आसाम का घनघोर जंगल था और उस जंगल के भीतर से निकलकर एक पतली सी नदी बहती हुई वर्मा की सीमा के करीब किसी घाटी में जाकर विलीन हो गई थी।

उस जंगली नदी का नाम था - ऋषि कुल्पा। जिसके किनारे बसा था सेमड़ापूड़ी। गांव के बाहर नदी के तट पर एक छोटा सा पुराना मन्दिर था। मन्दिर के भीतर किसी देवी-देवता की मूर्ति नहीं थी। उसकी जगह छोटा-सा ताखा था, जिस पर सिन्दूर की गहरी पर्तें जमी हुई थी। बाद में पता चला, कि वह मन्दिर काली का स्थान है और वह बहुत जागृत है, हर तरह की मनोकामना उस स्थान पर पूरी होती है।

जब सैमसन साहब को ये सारी बातें मालूम हुई तो वे अपना अधिक से अधिक समय काली के स्थान पर ही बिताने लगे। उन्हें उस स्थान पर कभीकदा विचित्र अनुभूति होती थी। जिसे वह स्पष्ट रूप से बतला नहीं पाते थे।

खासियों का एक मुखिया था। जिसका नाम था सावजू। सावजू की उम्र साठ के ऊपर थी, लेकिन उसका काला जिस्म काफी गठीला और मजबूत था। मुखिया के अलावा वह काली के थान का पुजारी भी था। इसलिए उस समाज में उसका दोहरा प्रभाव था।

सावजू को तीन सन्ताने थी। एक लड़का और दो लड़कियाँ। लड़का सबसे बड़ा था और उसका नाम था टेनेजू। टेनेजू बीस-बाइस साल का युवक था। बाप की तरह उसका रंग भी काला था, लेकिन उसके शरीर का गठन और नाक-नक्शा विशेष रूप से आकर्षक था। जब कभी वह चान्दनी रात में ऋषि कुल्पा के किनारे एकान्त में बैठकर आसामी विरह गीत सुरीले स्वर में गाता - उस समय गांव की नवयुवतियाँ अपने-अपने बिस्तरों पर बेचैनी से करवटें बदलने लग जाती। इतना ही नहीं, उनके सीने की धड़कन बढ़ जाती।

गांव में टेनेजू को चाहने वाली कुमारी बालाओं और युवतियों की कमी न थी। मगर टेनेजू प्यार करता था, सांवली से। वह हमेशा उसी की मोहक कल्पना में डूबा रहता था। कभी-कभी उसी की याद में वह ऋषि कुल्पा के किनारे रात की खामोशी में गीत भी गाया करता था। ये सब कुछ जानते-समझते हुए भी वे बलायें, वे नव युवतियाँ बेबस थी। जब वे अपने सामने उस सजीले जवान को देखती, तो बस देखती ही रह जाती।

सेमड़ापूड़ी से लगभग पचास-साठ मील पूरब की ओर एक गांव था लाल पहाड़ी। सांवली उसी गांव के सरदार हरखू की इकलौती लड़की थी। सेमड़ापूड़ी में सांवली के मामा की शादी हुई थी। एक बार सांवली अपने पिता के साथ मामा के ससुराल आयी हुई थी। उस समय उसकी उम्र तेरह-चौदह साल से ज्यादा न थी। उसके रूप-सौन्दर्य का क्या कहना? इकहरी देह, गोरा रंग, कजरारी आँखे, पतली नाक, गुलाबी होंठ और काले घुंघराले बाल, सांवली के आते ही उसके रूप सौन्दर्य की गमक पूरे गांव में फैल गयी।

हरखू अगर अपने गांव और अपनी जाति बिरादरी का सरदार था तो सावजू भी उससे कम न था। इसलिए दोनों की दोस्ती होते देर न लगी। जातीय प्रथा के अनुसार दोनों ने हड़िया बदल कर पी। हड़िया, यानि शराब — खासी जाति में हड़िया बदलकर पीने का मतलब है - पक्की दोस्ती। उन्हें स्थायी रखने के लिए यथा सम्भव दोनों परिवारों में वैवाहिक सम्बन्ध।

जिस समय दो सरदार हड़िया बदलकर पी रहे थे, उसी समय नदी के किनारे टेनेजू और सांवली प्रेम के अथाह सागर में डूबे हुए थे। सांवली की जैतून की शाख की तरह कोमल उंगलियाँ टेनेजू के बालों से खेल रही थीं और टेनेजू के हाथ फिसल रहे थे सांवली की पीठ और कमर पर।

टेनेजू और सांवली दोनों पहली ही नजर में एक-दूसरे को अपना दिल दे बैठे थे। टेनेजू सांवली के रूप जाल में उलझा हुआ था - जबकि सांवली उसके बलिष्ठ शरीर के प्रति बुरी तरह आकर्षित थी। एक को रूप की प्यास थी, तो दूसरे को प्रबल पौरूष की।

जब सांवली और टेनेजू के प्रेम-प्रसंग का पता दोनों सरदारों को चला, तो तुरन्त दोनों की शादी पक्की कर दी गयी और इस सिलसिले में उस रात खूब खुशियाँ मनाई गयी। नाच-

गाने हुए और गोश्त व शराब की दावत दी गयी पूरे गांव वालों को। जाति प्रथा के अनुसार सावजू ने अपने भावी समधी को कुछ रूपये और पच्चीस हड़िये दिये और उसी के साथ अगले साल शादी का दिन भी निश्चित हो गया।

अपने प्रेमी और होने वाले भावी पति की याद दिल में संजोये सांवली चली गयी वापस अपने घर। उसके जाते ही टेनेजू विह्वल हो उठा। उसकी मानसिक स्थिति पागलों सी हो गयी — सांवली की यादों में खोया-खोया सा रहने लगा वह हर समय।

उस गांव में विवाह की परम्परा विचित्र थी। लड़के के माता-पिता विवाह पक्का हो जाने पर लड़की के माँ-बाप को एक निश्चित अवधि के भीतर खास रकम दिया करते थे। वह न मिलने पर लड़की का विवाह उसके माँ-बाप अन्यत्र तय कर देते थे।

सावजू समय पर रकम का इन्तजाम न कर सका। निर्धारित धनराशि, निश्चित समय पर हरखू को जब नहीं मिली, तो उसने सांवली का विवाह एक दूसरी जगह तय कर दिया नाराज होकर।

टेनेजू की मानसिक स्थिति - प्रेमिका के वियोग में पहले से ही खराब थी, फिर जब उसे यह सूचना मिली कि सांवली का विवाह कहीं और हो रहा है तो, उसका खून खौल उठा एकबारगी।

सेमड़ापूड़ी से लगभग ५०-६० मील की दूरी पर एक गांव गोलभूजा था। गोलभूजा में एक आदिवासी तांत्रिक रहता था, जिसे लोग राठू प्रजापति के नाम से जानते थे। राठू प्रजापति को कई प्रकार की चमत्कारी सिद्धियाँ प्राप्त थीं। वह अपने काले जादू के बल पर मनचाहा काम कर सकता था। उसके पास सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान था। मि. सैमसन न जाने कैसे उसके नाम से पहले से ही परिचित थे। उस इलाके में पहुँचने के दूसरे ही दिन मि. सैमसन मुझे अपने साथ लेकर राठू प्रजापति से मिलने गोल भूजा गये।

मैंने देखा - राठू प्रजापति का व्यक्तित्व तो बिल्कुल साधारण था, लेकिन उसकी उल्लू जैसी आँखो में एक विचित्र-सी चमक थी। लगता था वह इन्सानी आँखे नहीं, बल्कि किसी विषधर सर्प की आँखे हो। काला रंग, नाटा कद, गठीली देह। कुश और झाड़ की तरह रूखे, खड़े-खड़े सिर के बाल। उम्र यही पचास-पचपन के लगभग।

राठू प्रजापति की झोपड़ी के सामने जब मैं पहुँचा, उस समय वह बाहर बैठकर बड़े इत्मीनान से हड़िया पी रहा था और उसके सामने ताजी कटी हुई काले रंग की एक मुर्गी पड़ी हुई थी। जिसका ताजा खून कच्चे फर्श पर फैला था। निश्चय ही वह कोई भयानक तांत्रिक क्रिया कर रहा था।

हम दोनों को देखकर उठ खड़ा हुआ राठू प्रजापति। फिर जब उसे यह मालूम हुआ कि मि. सैमसन उसके नाम से परिचित है और उससे मिलने के लिए आये हुए हैं, तो उसने तुरन्त झोपड़ी के भीतर खाट बिछाकर बड़े आदर से हम दोनों का स्वागत किया।

मैंने देखा - झोपड़ी के भीतर काफी जगह थी। एक ओर जमीन पर एक छोटा-सा तख्त

लगा था। जिस पर रंग-बिरंगे कपड़ों में लिपटे कई गुड्डे पड़े थे। जिनके सभी अंग तो इंसानों जैसे थे, मगर चेहरे विभिन्न प्रकार के जानवरों के थे। उन तमाम गुड्डो में अजीब आकर्षण था - शायद उसी के कारण काफी देर तक उनकी ओर अपलक निहारता मैं।

खैर, पूछने पर राठू प्रजापति ने बताया कि वे गुड्डे उसके काले जादू से सम्बन्धित हैं। उनके जरिए वह कोई भी पैशाचिक कार्य कर सकता है।

इसलिए उस दिन टेनेजू पचास-साठ मील का जंगली रास्ता तय कर राठू प्रजापति के पास जा पहुँचा और उसको अपनी सारी व्यथा-कथा सुनायी और किसी भी तरह सांवली को पाने की इच्छा प्रकट की।

सारी बातें सुनने के बाद राठू प्रजापति ने आश्वासन दिया कि वह अपने काला जादू की ताकत से कुछ ऐसा माहौल पैदा कर देगा कि लड़की की शादी और किसी के साथ न होकर उसी के साथ होगी। अत: सुनते ही टेनेजू प्रसन्न हो उठा। उसने तत्काल उस तांत्रिक के आदेश पर एक काला बकरा, तीन चार बोतल शराब और अन्य तांत्रिक वस्तुएँ लाकर उसे दे दी।

उस दिन अमावस्या की काली अंधेरी रात थी। गाँव से थोड़ी ही दूर पर श्मशान था। राठू प्रजापति सारे सामानों को लेकर उस अंधेरी रात में श्मशान गया और साथ में टेनेजू को भी लेता गया। उस समय श्मशान में कोई लाश जल रही थी। जिसकी लाल पीली रोशनी में उस तांत्रिक ने वहाँ जमीन पर एक बड़ा-सा गोल घेरा बनाया और फिर उसके भीतर जमकर बैठ गया वह। पहले तो काफी देर तक वह कोई मंत्र पढ़ता रहा, फिर मंत्र पढ़ते-पढ़ते एक दीप जलाया उसने। उसके बाद एक धारदार छूरे से एक ही बार में उसने बकरे की गर्दन धड़ से अलग कर दी। दूसरे ही क्षण दायरे के भीतर चारों तरफ खून ही खून फैल गया। उसी समय जंगल के भीतर समवेत स्वर में सियारों के रोने की आवाज गूंज उठी।

राठू प्रजापति ने बकरे के कटे सिर को दायरे के बाहर फेंक दिया। आश्चर्य की बात थी, उसके फेंकते ही न जाने कहाँ गायब हो गया बकरे का सिर। धड़ के भीतर उसने तीन-चार गुड्डों को, जिन्हें वह एक झोली में भरकर लाया था, डाल दिया। उन गुड्डों के भीतर जाते ही बकरे का धड़ बुरी तरह उछलने-कूदने लगा, लेकिन कुछ क्षण बाद जब वह शान्त हुआ तो उसके भीतर से वे तमाम गुड्डे एक के बाद एक निकले और हवा में गायब हो गये। फिर उस तांत्रिक ने विचित्र भाषा और विचित्र शैली में कोई मंत्र पढ़ा। अत: वे गुड्डे एक-एक कर वापस लौट आये, मगर उनका रूप-रंग बदला हुआ था। आरम्भ में उनकी आकृति बच्चों जैसी थी, मगर बाद में धीरे-धीरे वे अपने आप बढ़ने लगे। परिणामस्वरूप जब वे सात-आठ फुट के हो गये, तो उनकी आकृति अचानक राक्षसों जैसी हो गयी। उन राक्षसों के धड़ चौड़े, पैर लम्बे और सिर बेहद बड़े थे। जिन पर काफी लम्बे-लम्बे बाल थे। आँखे गोल थी। कान भी काफी बड़े थे। मुँह से खून टपक रहा था।

थोड़ी दूर पर बैठा टेनेजू इन तमाम चमत्कार पूर्ण अलौकिक दृश्यों को मुँह बाये देख रहा था, लेकिन जब उसने उन राक्षसों को देखा, तो एकबारगी भय से सिहर उठा। उसका

सारा शरीर कांपने लगा। वह इतना आतंकित हो गया था कि यदि उसके मन में सांवली को पाने की लालसा न होती, तो वह उसी क्षण भाग खड़ा होता वहाँ से।

लेकिन अब तक उस तांत्रिक ने जोर-जोर से कोई मंत्र पढ़ना शुरू कर दिया, जिसके फलस्वरूप वे तमाम राक्षसी आकृतियाँ हवा में तैरती हुई वहाँ से चली गयी, किन्तु आश्चर्य की बात थी, क्योंकि उनके जाते ही दायरे के भीतर रखा बकरे का धड़ भी गायब हो गया। इतना ही नहीं, बल्कि उसके गायब होते ही तांत्रिक ने बगल में रखी शराब की बोतलें एक-एक करके खोली और गट-गट कर पीने लगा। आखिर जब सभी बोतलों की शराब खत्म हो गयी तो वह दायरे के बाहर निकला और आवाज देकर टेनेजू को अपने पास बुलाया।

टेनेजू अभी भी भय से कांप रहा था, लेकिन जब वह तांत्रिक के निकट आया, तो उस पिशाच सिद्ध जादूगर ने उससे कहा -

“जा, अभी इसी समय अपने गांव वापस लौट जा। अब तेरी मंगेतर और किसी दूसरे के साथ नहीं ब्याही जायेगी। तेरा काम पक्का कर दिया मैंने।”

उस समय सांवली वहाँ से लगभग ७०-८० मील दूर अपनी झोपड़ी में चारपाई पर सो रही थी, गहरी नींद में। अचानक उसकी नींद खुली। उसने देखा कि उसकी चारपाई के चारो ओर तीन-चार व्यक्ति खड़े हैं और उसकी ओर अपलक देख रहे हैं।

परिणाम स्वरूप एकबारगी सांवली भय से चीख उठी लेकिन उसके चीखते ही वे व्यक्ति वहाँ से गायब हो गये। परन्तु पुनः दूसरी रात को भी ऐसा ही हुआ। रोज की तरह सांवली चारपाई पर सो रही थी। उस रात उसने झोपड़ी के किवाड़ भीतर से बन्द कर दिये थे। आधी रात के समय अचानक उसकी नींद फिर खुल गई। उसने इस बार अपनी चारपाई के चारो ओर खड़े तीन-चार ऐसे लोगो को देखा, जिनकी आकृति अत्यन्त भयानक थी। वे किसी भी दृष्टि से मनुष्य नहीं कहे जा सकते थे। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि उन सभी के पैर नहीं थे। उनके धड़ जैसे अधर में लटक रहे थे। उन्हें देखकर सांवली इतनी भयभीत और आतंकित हो उठी थी कि उसके मुँह से इस बार चीख तक नहीं निकल सकी। कुछ देर बाद भयानक आकृति वाले लोग अचानक गायब हो गये। लेकिन यह क्या ? उनके गायब होते ही सांवली बेहोश हो गई और जब होश आया, तो उसने देखा - सवेरा हो चुका था। परिवार के लोग उसके पास बैठे हुए थे, फिर उसने रात की सारी बातें बतायी, तो किसी को विश्वास नहीं हुआ। सभी ने यही कहा, ”कोई बुरा सपना देखा होगा उसने।”

मगर सांवली इस बात को अच्छी तरह समझती थी कि वह सब कुछ सपना नहीं था, क्योंकि जो कुछ भी देखा था उसने, वह सच था। दिन भर सहमी-सहमी-सी थी वह। रात में भी उसी भय के कारण नींद नहीं आयी, इसलिए पूरी रात जागती रह गई वह।

लेकिन भोर के समय थोड़ी देर के लिए झपकी-सी लगी सांवली को और उसी स्थिति में इन्सान के रूप में विचित्र प्राणियों को अपने निकट देखा उसने। उन विचित्र प्राणियों की काफी हद तक शक्ल-सूरत इन्सानों जैसी ही थी, मगर उनके सिर कोहड़े के आकार के और काफी बड़े थे। छाती और पेट भी हद से ज्यादा बड़े थे, लेकिन पैर बांस की तरह लम्बे और

पतले थे। उन्हें देखकर सांवली उसी अवस्था में भय से थर-थर कांपने लगी। आतंक के कारण उसके मुँह से चीख भी न निकल सकी उस समय।

पहले तो वे विचित्र जीव सांवली की ओर घूर-घूर कर देखते रहे, फिर धीरे-धीरे आगे बढ़े और सांवली को उठा लिया। वह चाह कर भी विरोध न कर सकी। उसे ऐसा लगा कि वह आकाश में उन भयानक लोगों के साथ उड़ रही है और उड़ते हुए तीव्र गति से आगे बढ़ती जा रही है, तभी अचानक एक जोर से झटका लगा उसे और उसी के साथ उसकी तन्द्रा टूट गई। घबराकर उठ बैठी वह दूसरे क्षण। आँखे फैलाकर आश्चर्य से देखने लगी चारो तरफ। उसने देखा कि वह अपनी झोपड़ी में नहीं, बल्कि ऋषिकुल्पा के किनारे काली के थान के चबूतरे पर पड़ी हुई है। इतनी दूर वह कैसे इतनी जल्दी पहुँच गयी? क्या सचमुच उसे आकाश में उड़ाकर वहाँ लाया गया था? सब कुछ अविश्वसनीय था। सब कुछ चमत्कार पूर्ण था। मगर था सब सत्य। जिसे चाहकर भी झुठलाया नहीं जा सकता था। अब क्या होगा? सोचने लगी सांवली - अब कैसे वापस लौटेगी अपने गाँव? परिवार के लोग भी खोज रहे होंगे, फिर जब उन्हें यह मालूम होगा कि वह यहाँ है, तो क्या सोचेंगे क्या समझेंगे ?

गाँव के लोग वहाँ इकट्ठा हो गये। सभी को इस बात का आश्चर्य हो रहा था कि सांवली इतने सबेरे कैसे पहुँच गई वहाँ और वह भी अकेले। लेकिन सांवली के अकस्मात् आने की सूचना जब टेनेजू को मिली, तो खुशी से झूम उठा एकबारगी वह। दौड़ा-दौड़ा वह सांवली के पास पहुँचा और दोनों हाथ फैलाकर उसे आलिंगनबद्ध कर लिया उसने। दोनों एक-दूसरे से लिपटकर बहुत देर तक रोते रहे। उनके वियोग की पीड़ा आंसुओं के सहारे बाहर निकलती रही, मगर उनका वह मिलन क्षणिक था। कुछ ही देर बाद हरखू अपने आदमियों को लेकर आ धमका वहाँ और चीख-चीख कर कहने लगा, "मेरी लड़की पर सावजू ने काला जादू कराया है। मैं जादू का बदला जादू से लेकर छोड़ूँगा। कैसे नहीं हटेगा उसके काले जादू का असर? यह देखना है उसे —"

जब मि. सैमसन को इन बातों का पता चला, तो वह तुरन्त सांवली से मिला सांवली ने उसे शुरू से अन्त तक की सारी घटनायें बतायी, फिर अन्त में उसने यह भी बताया कि किस प्रकार वहाँ पहुँची। सारा चमत्कार प्रजापति के गुड्डो का है। वे ही हैवानी शक्ल में बदलकर प्रजापति के संकेत पर सब कुछ कर रहे हैं - यह समझते देर न लगी मि. सैमसन को। मैंने उससे कहा, "अब आगे क्या होता है? यह देखना है —"

तीन-चार दिन के बाद एक व्यक्ति मिला वह सांवली के गांव का ही रहने वाला था। उसने बताया कि सांवली की हालत काफी नाजुक है। उसको जो कुछ भी खाने के लिए दिया जाता है, वह ईंट, पत्थर और कांच अथवा कील-कांटे की शक्ल में बदल जाता है। लड़की भोजन के अभाव में दिन-ब-दिन कमजोर होती जा रही है। अब तो चलने-फिरने से भी लाचार हो गयी है। अन्त में उस व्यक्ति ने कहा, "उसके घर वालों ने बड़े-बड़े तांत्रिकों को दिखाया, लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। अन्त में सभी ने यही कहकर उनको निराश कर दिया कि किसी ऊँचे किस्म के काला जादू जानने वाले तांत्रिक ने लड़की पर जादू कर दिया

है। जिसे उस तांत्रिक के अलावा और कोई उसे ठीक नहीं कर सकता —"

यह समाचार सुनकर मि. सैमसन सांवली को देखने के लिए व्यग्र हो उठे। दूसरे ही दिन हम दोनों चल पड़े। गांव के करीब पहुँचने पर यह भी पता चला कि पहले लड़की जो भी खाती थी, वह उसके मुँह में जाते ही पत्थर बन जाता था, मगर इधर लड़की में विस्मयकारी परिवर्तन हुआ है। वह दिन में अब आसानी से सब कुछ खाने लगी है, लेकिन शाम होते ही वह कुछ भी नहीं खा-पी सकती और खाने का प्रयत्न भी करे, तो खाना तुरंत मल-मूत्र में बदल जाती है। उस समय लड़की की हालत भी काफी खराब हो जाती है। यहाँ तक कि उसका सारा शरीर कांपने लगता है।

आखिर जब हम लोग वहाँ पहुँचे, तो शाम हो गयी थी। चारो तरफ अंधेरा फैलने लगा था। सांवली अपनी झोपड़ी के सामने पीपल के पेड़ के नीचे बैठी हुई थी। उसके शरीर का रंग हल्दी की तरह पीला पड़ चुका था। चेहरा काला हो गया था। आँखे भीतर धंसी हुई थी। परिवार के अलावा गांव के अन्य लोग भी वहाँ मौजूद थे। अत: हम लोगों को देखकर भीड़ में से निकलकर हरखू करीब आया और आदर से हाथ जोड़कर बैठने के लिए कहा उसने, फिर मि. सैमसन के कहने पर वे सारे पत्थरों, कीलों और कांच के टुकडों को लाकर उनके सामने रख दिया - जो खाना खाते हुए सांवली के मुँह से निकले थे।

उसके बाद सांवली के सामने खाने की थाली रखी गई। हम लोगों ने देखा- ज्यों ही उसने ग्रास मुँह में रखा, वह तुरन्त विष्ठा में बदल गया और उसकी दुर्गन्ध वातावरण में फैल गई, फिर उसी के साथ दूसरे क्षण सांवली का सारा शरीर भी थर-थर कांपने लगा।

तभी हरखू ने बताया, "उसकी लड़की पर काला जादू का भरपूर असर है और उस असर को हटाने के लिए उसने एक बहुत बड़े तांत्रिक को बुलाया है, जो काली विद्या में माहिर है।" फिर थोड़ा रूककर उसने आगे कहा, "साब, जिसने मेरी बेटी पर यह काला जादू किया है, वह अब नहीं बचेगा क्योंकि उस तांत्रिक का कहना है कि वह काला जादू के असर को उलट देगा, लेकिन जिसने किया है, वह तुरन्त मर जायेगा।"

वह तांत्रिक यहाँ कब आने वाला है? यह पूछने पर हरखू ने कहा, कल वह पहुँच जायेगा और कल ही लड़की का इलाज भी करेगा।

अतः हम लोग उस रात गांव में ठहर गये। दूसरे दिन दोपहर में वह तांत्रिक आया। हम लोग उसे देखकर हैरान रह गये। उसकी उम्र अधिक से अधिक चालीस वर्ष थी। दुबला-पतला शरीर, काला रंग। हद से ज्यादा लम्बा कद और मुड़ा हुआ सिर — साथ ही दाढ़ी-मूंछ भी सफाचट, गले में मणियों की मालाएं - जिसके साथ बन्दर के बच्चे की खोपड़ी भी झूल रही थी छाती पर। कपड़े के नाम पर उसने मात्र लाल रंग की लुंगी कमर में लपेट रखी थी। बगल में एक मदारियों जैसी कथरी की झोली भी थी, फिर पूछने पर पता चला कि उस तांत्रिक का नाम सलाजू है और वह नागालैण्ड से आया है। गांव के बच्चे-बूढ़े, और मर्द सभी उस तांत्रिक को भय और उत्सुकता की नजरों से देख रहे थे। परिणामस्वरूप दिन ढलते ही हरखू की झोपड़ी के सामने मैदान में भीड़ इकट्ठी हो गयी। सभी के मन में

जिज्ञासा और उत्सुकता थी, काली विद्या का तमाशा देखने के लिए —

सांवली सम्मोहित-सी गर्दन झुकाये, पीपल के नीचे पत्थर की मूर्ति की तरह बैठी थी। थोड़ी देर बाद अंधेरा हो गया। तभी धीरे-धीरे चलकर तांत्रिक सांवली के करीब पहुँचा। पहले उसने झुककर सांवली के सारे शरीर को टटोला, फिर पालथी मारकर बैठ गया वह। कुछ देर तक आँखे बन्द किये कोई मंत्र मन में बुद-बुदाता रहा और उसी अवस्था में आँखे बन्द किये वह अपने और सांवली के चारो तरफ एक बड़ा-सा दायरा बनाया चाकू से। अपने बगल में दबी झोली से निकालकर उसने दो मानव खोपड़ी उस दायरे के भीतर रखी और उन खोपड़ियों के सामने दो मिट्टी के बड़े-बड़े दीप जलाये, फिर उसने इशारे से एक काला मुर्गा और दो बोतल शराब हरखू से मंगवाया वहाँ। जब वे चीजें आ गयी, तो उस तांत्रिक ने जोर-जोर कोई अटपटा-सा मंत्र पढ़ना शुरू कर दिया। जिसे हम दोनों भी उस तांत्रिक की हर गतिविधि को बड़े ध्यान से देख रहे थे। उसकी हर क्रिया-कलाप को समझने का प्रयास कर रहे थे।

मंत्र पढ़ते-पढ़ते तांत्रिक का चेहरा लाल हो उठा अचानक और उसी के साथ दोनों दीप की लौ एक बार जोर से फड़फड़ायी और फिर ऊपर की ओर धीरे-धीरे उठने लगी और जब वे दोनों लौ लगभग तीन फुट ऊपर आकाश में उठ गयीं, तो तत्काल तांत्रिक के सामने रखी दोनों खोपड़ियों में शराब उड़ेल दी। शराब उड़ेलते ही हमने देखा कि वे दोनों खोपड़ियाँ सन्न-सन्न की आवाज करती हुई अपनी-अपनी जगह से अचानक हवा में उठी और कुछ ही क्षणों के बाद आकाश में गायब हो गयी। बड़ा ही विचित्र और चमत्कार पूर्ण दृश्य था वह, लेकिन जब वे खोपड़ियाँ गायब हो गयी, तो तांत्रिक ने मुर्गे की बलि दी और उसने खून को सांवली के सिर और छाती पर रगड़ा। उसके बाद बोतल में बची हुई शराब को पिया उसने।

दोनों दीप की लौ पहले की ही तरह ऊपर की ओर उठी हुई थी और हवा में लपलपा रही थी। उस समय हमारे भय और आश्चर्य की सीमा न रही। ताज्जुब की बात थी, लौ के आस-पास उड़ते हुए पतंगे थोड़ी ही देर बाद इंसानों की शक्ल में बदल गये। बड़ा ही अनोखा और आश्चर्यजनक दृश्य भी वह। हम जरा आगे बढ़कर उस चमत्कार पूर्ण दृश्य को देखने लगे। दीप की कांपती और थर-थराती लौ के आस-पास ऐसी इंसानों की शक्लें नाच-कूद रही थी - जो मुश्किल से एक इंच की रही होगी, मगर उनके रूप और आकार-प्रकार बिल्कुल स्पष्ट थे। सबसे रहस्य की बात तो यह थी कि उन इंसानों के पैर नहीं थे। जिसे देखकर हम विस्मयविमूढ़ थे।

सांवली जो अभी तक सम्मोहित-सी पत्थर की मूर्ति बनी बैठी थी - एकाएक बेचैन होकर अपना पहलू बदलने लगी। उसका चेहरा पसीने से भींग उठा था और दोनों आँख बाहर निकल आई थी। सहसा डरावनी आवाज में वह चिल्लाने लगी और उसी समय हमने देखा कि चारो इन्सानी शक्ले सहसा राठू प्रजापति के चमत्कारी गुड्डो के रूप में बदल गयी और फिर वे गुड्डे एक-एक कर लौ में जलने लगे। जब वे सभी जल गये - उसके कुछ ही देर बाद वे दोनों खोपड़ियाँ सनसनाती हुई वहाँ आ गयी और दीप का चक्कर लगाकर जमीन पर

स्थिर हो गयी। अब उनमें शराब की जगह किसी इन्सान का ताजा खून भरा हुआ था। नागालैण्ड के भयंकर तांत्रिक ने लपककर उन खून से भरी खोपड़ियों को उठाया और गटा-गट कर सारा खून पी गया दूसरे क्षण वह। बड़ा ही रोमांचकारी और वीभत्स दृश्य था - जिसे देखकर वहाँ उपस्थित सभी लोग एक बारगी कांप उठे। मि. सैमसन को भी रोमांच हो आया। हमारी हालत भी देखने लायक थी।

मैंने देखा - सांवली पहले से अब काफी स्वस्थ लग रही थी। तांत्रिक के आदेश पर जब उसके सामने खाना लाया गया, तो बड़े इत्मीनान से खाना खाने लगी वह। किसी भी प्रकार की परेशानी और तकलीफ नहीं हुई उसे। जब हरखू ने देखा, कि उसकी लड़की के खाने का नेवाला न पत्थर बन रहा है और न तो बन रहा है कांच या लोहे का टुकड़ा, तो उसने लपककर उस भयानक तांत्रिक के दोनों पैर पकड़ लिये, मगर तांत्रिक ने उसे डांटकर अलग कर दिया।

कहने की आवश्यकता नहीं, सांवली पर से राठू प्रजापति के काले जादू का असर हट चुका है और वह अब स्वस्थ थी, मगर खोपड़ी में शराब के बदले भरा खून कैसा था ? किसका था वह खून ? इसका उत्तर हमें दूसरे ही दिन मिल गया। वह खून था टेनेजू का। टेनेजू मर चुका था और मरते समय उसके मुँह से बहुत सारा खून निकला था।

जब राठू प्रजापति को टेनेजू के मरने की सूचना मिली, तो वह एकबारगी बौखला उठा। अपनी विद्या का अपमान सह न सका राठू प्रजापति। उसने तुरन्त एक काले मुर्गे की बलि देकर उसी समय सांवली पर मूठ मार दिया। आधी रात का समय था। लाल पहाड़ी गांव के लोगों ने देखा कि पश्चिम की ओर से एक बड़ी-सी कच्ची मिट्टी की हड़िया सनसनाती हुई आयी और हरखू की झोपड़ी के भीतर तीव्र गति से घुस गयी। दूसरे क्षण गांव वालों को झोपड़ी से एक भयानक आर्तनाद सुनाई दिया। वह आर्तनाद और किसी का नहीं, सांवली का था। उसके आर्तनाद को सुनकर घर के लोगों की नींद खुल गयी। लोगों ने देखा, सांवली अपनी चारपाई पर मृत पड़ी थी। उसके चेहरे पर भय का भाव था। आँखे बाहर निकल आई थीं। मुँह से भी ढेर-सा खून निकलकर बिस्तर पर फैल गया था।

दो भयानक तांत्रिक के काले जादू की लड़ाई में दो ऐसे युवा प्रेमियों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा, जिनकी कल्पना सजीव नहीं हुई थी। न तो सपने ही साकार हुए थे।

इस घटना के बाद हम एक दिन भी रूकना उचित नहीं समझा अपना कार्य निपटा कर तत्काल वहाँ से रवाना हो गये और रास्ते भर वो सारी घटनाएँ चलचित्र की तरह घूमती रही।

अध्याय १४
अभिशप्त हवेली

जब मैं पश्चिम बंगाल और आसाम की सीमा से लगे - उस छोटे से स्टेशन पर उतरा तो उस समय सांझ की स्याह कालिमा धरती पर फैलने लगी थी। आकाश में काले-भूरे बादल घिरे हुए थे। हवा में भी सनसनाहट थी। मैं जानता था कि अभी भी बारिश हो सकती है - मगर फिर भी चल पड़ा मैं। चार-पाँच दिन पूर्व मुझे राय चौधरी कृष्ण काली मजूमदार का रजिस्टर्ड पत्र मिला था। पत्र में उन्होंने मुझसे तुरन्त सारूपेटा आने का आग्रह किया था। एक अटैची में कुछ आवश्यक कपड़े और सामान रखकर दूसरे ही दिन चल पड़ा था मैं वाराणसी से।

मजूमदार बाबू का मेरे ऊपर बड़ा स्नेह था। सन् १९५० में उनसे मेरा परिचय हुआ था। उन दिनों कलकत्ता में रहकर मैं बंगाल फिल्म के प्रसिद्ध निर्देशक विपिन सेन के साथ था। मजूमदार बाबू के कई मकान थे कलकत्ता में। उसके अलावा दो स्टूडियो भी थे। उन्होंने विवाह नहीं किया था। वे किंचित कृपण थे। मेरा ख्याल है कि उनके पास काफी धन था और जायदाद भी। उनकी एक भांजी थी यानी सगी बड़ी बहन की लड़की - नाम था चारूलता। काफी सुन्दर और आकर्षक थी चारूलता। उम्र यही थी बीस बाईस के लगभग —

वैसे मैं विपिन सेन के साथ अवश्य रहता था सहयोगी के रूप में, लेकिन उसके अलावा बंगाल के शाक्त तंत्रों से संबंधित साहित्य पर व्यक्तिगत रूप से खोज एवं शोध कार्य भी कर रहा था मैं। बंगदेशीय शाक्त तांत्रिकों, साधकों, और सिद्ध पुरुषों का अभाव नहीं है। उनकी साधना, तपस्या और चमत्कारों के रहस्यों की गहरायी में उतरकर उनके तथ्यों से परिचित होने की लालसा भी कम न थी मुझमें।

उन दिनों विपिन बाबू वैसे ही किसी तांत्रिक योगी अथवा चमत्कारी महापुरूष की जीवनी पर आधारित एक बंगला फिल्म बनाने की बात सोच रहे थे और जब उन्हें यह मालूम हुआ कि मैं तंत्र-मंत्र में गहरी रूचि रखता हूँ। बंगाल के तांत्रिकों, साधकों और चमत्कारी सिद्ध महात्माओं के प्रति मुझमें गहरी आस्था है। इन सबके अतिरिक्त मैं इन तमाम विषयों में खोज एवं शोध भी कर रहा हूँ। तो उन्होंने तुरंत मुझे बुलाया और बंगाल के किसी तंत्र साधक की जीवनी पर कथा लिखने के लिए कहा।

एक सप्ताह के अन्दर ही कथा तैयार कर दी मैंने। पश्चिम बंगाल के प्रसिद्ध तारापीठ के चमत्कारी सिद्ध योगी वामा खेपा से सम्बन्धित थी मेरी वह कथा, शीर्षक भी रखा था मैंने वामा खेपा ही और इसी नाम से फिल्म भी बनी। विपिन बाबू जैसा चाहते थे - वैसी ही थी वह कथा। काफी प्रसन्न हुए वह और तत्काल काम शुरू कर दिया उन्होंने। चारूलता को अभिनय का काफी शौक था। कॉलेज में होने वाले बंगला नाटको में प्राय: वह भाग लिया करती थी। मेरे अनुरोध पर विपिन बाबू ने फिल्म में प्रमुख नायिका का रोल दे दिया चारूलता को। उसके बाद भी विपिन बाबू के आग्रह पर वैसी ही तीन-चार कथाएं लिखी

मैंने। उन सब पर भी विपिन बाबू ने फिल्में बनायी।

परिणाम यह हुआ कि जहाँ एक ओर मैं मजूमदार बाबू के विपुल स्नेह का पात्र बना वहीं दूसरी ओर चारूलता से मेरे सम्बन्ध और अधिक मधुर हो गये। सच तो यह था कि हम दोनों एक दूसरे से प्रेम करने लगे थे। उसके पास रूप था, यौवन था, कला थी और थी ख्याति। धन वैभव का भी अभाव नहीं था। मेरे पास क्या था ? सिवाय साहित्य की थोड़ी बहुत पूँजी के। मगर चारूलता इस सत्य से भली-भाँति परिचित थी कि उसकी सफलता का कारण एक मात्र मैं ही हूँ। इसलिए वह मुझे दिल से चाहने लगी थी। लेकिन हम दोनों का सम्बन्ध अधिक दिनों तक नहीं रहा। अचानक विपिन बाबू का देहान्त हो गया और मुझे कलकत्ता छोड़कर नौकरी के सिलसिले में दिल्ली जाना पड़ा। चारूलता से पत्र व्यवहार द्वारा सम्पर्क बना रहा।

मजूमदार बाबू भी कभी कदा पत्र लिखते रहे मुझे। बाद में पत्र सम्बन्ध भी टूट गया। ऐसा लगा कि बाप-बेटी दोनों भूल गये मुझे। दोनों में से किसी को भी मेरी सुध नहीं रही।

इस प्रसंग को बीते पूरे बीस वर्ष बीत गये थे। दीर्घ अन्तराल के बाद जब मुझे अचानक मजूमदार बाबू का वह रजिस्टर्ड पत्र मिला तो एकबारगी चौंक पड़ा था मैं। पत्र से यह भी मालूम हुआ कि कलकत्ता के दोनों स्टूडियो बेचकर वे आसाम बंगाल के उस निर्जन प्रदेश में कोई पुरानी हवेली खरीद कर बस गये थे। वह हवेली किसी राज तांत्रिक की थी.. खैर।

जब मैं उस छोटे से रेलवे स्टेशन से बाहर निकला तो अंधेरा और गहरा गया था। वहाँ से सारूपेटा के लिए एक पतली, कंकरीली, पथरीली सड़क गयी हुई थी। सवारी का कोई साधन नहीं था। वातावरण में घोर निस्तब्धता छाई हुई थी और छाया हुआ था गहन अन्धकार। उस चिपचिपे अन्धकार में आँखे गड़ाकर किसी प्रकार आगे बढ़ने लगा मैं। अचानक बूंदा-बांदी शुरू हो गयी। किसी प्रकार दो मील का सुनसान निर्जन रास्ता तय कर जब मैं सारूपेटा पहुँचा तो उस समय रात के नौ बजने वाले थे। चारो तरफ वैसा ही गहरा सन्नाटा था - जैसा निर्जन, बीहड़ इलाकों में रात को पाया जाता है। जो बूंदा-बांदी चलते समय शुरू हुई थी - वह अब जोरदार बारिश में बदल गयी थी। धरती की उमस और जंगली वनस्पतियों की मिली-जुली गन्ध वातावरण में फैली हुई थी। बारिश से बचने के लिए मैं एक झोपड़ी नुमे दुकान के छाजन के नीचे खड़ा हो गया था। सोचा बारिश थमने पर हवेली का पता लगाऊँगा। तभी किसी ने मेरे कन्धे पर हाथ रखा और उत्फुल्ल स्वर में कहा - “शर्मा हो न ?” उस स्पर्श और स्वर - दोनों को पहचान लिया मैंने।

वे राय चौधरी कृष्ण काली मजूमदार थे उनके एक हाथ में छाता था, और दूसरे हाथ में लालटेन थी। अपनी अटैची जमीन पर रखकर मजूमदार बाबू से लिपट गया मैं। पूरे बीस वर्ष के बाद हम मिले थे। कितनी ही बातें करने को हम बेताब थे। मगर जब मैंने उनकी तरफ देखा तो अचानक अवाक होकर देखता ही रह गया मैं। कितने बदल गये थे मजूमदार बाबू ? उनकी बलिष्ठ देहयष्टि कंकाल सी हो गयी थी। सिर के बाल बिलकुल झर गये थे और उनके चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गयी थी। उन्हें देखकर सहसा मुझे विश्वास नहीं हुआ कि ये वही मजूमदार बाबू थे - जो कलकत्ता में शान-शौकत की जिन्दगी व्यतीत करते थे और

जिनकी गणना कलकत्ता के रईसों में होती थी, आपकी तबीयत तो ठीक है मजूमदार बाबू - स्तब्ध होकर पूछा मैंने।

वे हंसकर विस्मय से स्वर में बोले - "पिछले साल तक तो मैं बिलकुल ठीक था शर्मा जी। लेकिन अब भय और आतंक ने जैसे मेरा खून चूस लिया है।" किसका भय ? मैंने पूछा।

वही सब बतलाने के लिए तो मैंने तुम्हे यहाँ बुलाया है। वे बोले चलो हवेली में चलकर विस्तार से बातें करेंगे।

बाहर की तरह हवेली के भीतर भी अन्धकार भरा था। सामने वाला कमरा काफी लम्बा-चौड़ा था। आँखे गड़ाकर देखने पर भी उस बड़े कमरे में रखी बड़ी-बड़ी कुर्सियों और टेबुलों का केवल आभास होता था। कीचड़ भरे रास्ते से झाड़ियों को पार करके-पत्थर के जिस विशाल चबूतरे से होकर हम जिस कमरे में आये थे उसकी सीढ़ियाँ भी टूट गयी थीं। उनका एक-एक पत्थर डगमगा रहा था। मुझे एक कुर्सी पर बिठाकर मजूमदार बाबू बोले तुम यहीं बैठो शर्मा मैं अभी आया।

बाहर हवा का वेग बढ़ रहा था। पता नहीं, कहाँ से हवेली के भीतर हवा घुस रही थी और एक अस्पष्ट से रूदन की सृष्टि कर रही थी। वह आवाज सुनकर कोई भी व्यक्ति पसीने-पसीने हो जाता।

मैंने उनकी तरफ देखना चाहा- मगर इसके पहले ही अपने हाथ की लालटेन उठाये हुए मजूमदार बाबू चले गये और जब वापस लौटे तो उनके हाथ में चाय की ट्रे थी।

आप कहाँ चले गये थे मजूमदार बाबू, मैंने पूछा?

मैं चाय बना रहा था वे बोले।

चाय पी फिर मैने पूछा आप किसी भय और आतंक को कह रहे थे न ?

किसी ने आपको धमकी दी है क्या ? कौन है वह आदमी ?

ऐसी कोई बात नहीं है। वे बोले- दरअसल मैं एक बहुत ही भयावह चक्कर में फंस गया हूँ शर्मा जी।

मैं चौंककर बोला कैसा चक्कर ?

मजूमदार बाबू जरा देर चुप रहकर अस्फुट से स्वर में बोले, "तुमने तंत्र-मंत्र में बहुत खोज की है। शायद अशरीरी शक्तियों के बारे में भी कुछ पढ़ा सुना होगा —"

आपका आशय क्या प्रेतात्माओं से है मैंने पूछा ?

तभी हवा का एक तेज झोंका आया। ठन्डी बरसाती हवा मन प्राणों को सिहरा गयी एकबारगी।

पानी फिर जोर-शोर से बरसने लगा था। हवा भी बहुत तेज हो गयी थी। हवेली के

खिड़की दरवाजे जोर-जोर से हिल रहे थे और उनसे रूदन जैसी अजीब स्वर की सृष्टि हो रही थी। पूरी हवेली में ऐसी ही आवाजें हो रही थी।

मजूमदार बाबू ने सिर हिलाकर कहा, ”हाँ”।

मैंने पूछा प्रेतात्माएँ कहाँ है ?

मजूमबार बाबू ने बतलाया कि वह हवेली प्रेत ग्रस्त थी। कलकत्ते के शोर-शराबे से दूर एकान्तवास के लिए उन्होंने वह हवेली केवल बीस हजार रूपये में खरीद ली थी। हवेली में चालीस कमरे और सोलह बारादरियाँ थीं। बीच में एक काफी लम्बा-चौड़ा तहखाना था, जो न जाने कब से बन्द पड़ा था।”

“इस हवेली का सौदा जब आप कर रहे थे, तब आपने इसके मालिक से इस बारे में दरयाफ्त नहीं किया था मैंने पूछा?”

यही गलती तो मुझसे हो गयी मजूमदार बाबू बोले, वास्तव में मैं मिट्टी के मोल मिल रही इस विशाल हवेली के लोभ में आ गया।

कौन था इस हवेली का मालिक ?

चूणामणि सान्याल, मजूमदार बाबू बोले वह अब यहाँ नहीं है — हवेली बेचकर न जाने कहाँ चले गये महाशय सपरिवार।

अपने पत्र में तो आपने किसी राज तांत्रिक की चर्चा की थी मैंने उनकी ओर देखते हुए पूछा ?

हाँ ! उस राज तांत्रिक का नाम था भैरवानन्द कापालिक।

एकाएक चौंक पड़ा मैं भैरवानंद कापालिक का नाम सुनकर। जाना पहचाना सा लगा मुझे वह नाम। बीस साल पहले जब मैं तांत्रिक-साधना और उससे सम्बन्धित सम्प्रदायों पर खोज और शोध कार्य कर रहा था उस समय मुझे कापालिक सम्प्रदाय से संबंधित एक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक अनायास ही मिल गई थी। जिसके लेखक थे चारूचन्द्र भिषगरत्न।

चारूचन्द्र भिषगरत्न महाशय पश्चिम बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान और तांत्रिक थे।

उन्होंने अपनी उस पुस्तक में कापालिक की चर्चा करते हुए भैरवानन्द कापालिक के सबंध में लिखा था कि वह एक भयानक पिशाचसिद्ध कापालिक था। राज परिवार की अनेकों युवतियों को अपनी भैरवी बनाया था। आवश्यकता पड़ने पर किसी भैरवी की बलि भी दे दिया करता था। वह अपनी साधना सिद्धि के लिए।

थोड़ा रूककर मजूमदार बाबू ने आगे बतलाया कि लगभग सौ-सवा सौ वर्ष पहले इस इलाके के तालुकदार थे राधा मोहन राय सन् १८५७ ई. में उन्होंने अंग्रेजो की बड़ी मदद की थी। गौरांग शासकों को कुमुक मुहैया की और सेना तथा नगदी भी दी थी। उसी के

एवज में अंग्रेज शासकों ने उन्हें जागीर की उपाधि दी थी। राधा मोहन राय ऐश्वर्यशाली तालुकदार थे। धन, वैभव का अभाव नहीं था अभाव था तो एक मात्र सन्तान का। उनकी पत्नी का नाम था मणिमाला देवी, पति पत्नी में जमीन-आसमान का अन्तर था। राधा मोहन राय जितने बड़े नास्तिक और विलासी थे, उससे अधिक धर्मभीरू और सात्विक जीवन व्यतीत करने वाली थी मणिमाला देवी। काली की उपासिका थी वह। हवेली के भीतर ही मंगला काली का एक मन्दिर बनवा रखा था उन्होंने। उनका समय मन्दिर में पूजा-पाठ और ध्यान धारणा में ही गुजरता था। नवरात्रि में अखण्ड व्रत रखकर बड़े धूमधाम से दुर्गोत्सव मनाती थी वह।

हर बार की तरह उस साल भी बड़े धूमधाम से दुर्गोत्सव मनाया जा रहा था हवेली में। प्रात: काल का समय था मन्दिर में मंगला काली की भव्य मूर्ति के सामने बैठी हुई मणिमाला देवी ध्यान मग्न थी। जय शिव शंकर महादेव — बम ! बम ! बम-बम ! की आवाज लगाते हुये लाल वस्त्र पहने हाथ में खप्पर कमण्डल लिए जटा जूटधारी एक सन्यासी ने पंचमुखी शंख की आवाज की। सन्यासी तनकर खड़ा था।

शंख ध्वनि से हवेली कांप उठी। मणिमाला देवी का ध्यान भी भंग हो गया। वे दौड़कर बाहर आयी मन्दिर के। सन्यासी बार-बार शंख ध्वनि कर रहा था। दिव्य आभा थी उसके मुख पर। लम्बी चौड़ी देह लाल-लाल आँखे। माथे पर लाल सिन्दूर का तिलक — सन्यासी की ओर ताककर मणिमाला देवी क्षण भर के लिए स्तब्ध रह गयी। फिर धूल धूसरित भूमि पर साष्टांग लेटकर प्रणाम किया उन्होंने —

तुम समझ गये होगे वह सन्यासी और कोई नहीं भैरवानन्द कापालिक ही था। उसने कमण्डल का जल उन पर छिड़ककर कहा - शान्ति ! शान्ति ! उठो रानी साहिबा उठो। फिर हाथ पकड़कर मणिमाला देवी को उठाते हुए उसने कहा मन को शान्त रखो मैं तंत्र साधक हूँ। देवी का आदेश पाकर यहाँ आया हूँ। यह हवेली मुझे दान कर दो मैं इसमें देवी चामुण्डा की साधना करूँगा। तुमको सन्तान की प्राप्ति होगी।

भैरवानन्द कापालिक की वेश-भूषा और व्यक्तित्व से तो मणिमाला देवी आकर्षित हो ही गई थी और सन्तान प्राप्ति की बात जब सन्यासी के मुख से सुनी तो तुरन्त हाँ कर दी हवेली दान करने के लिए।

राधा मोहन राय को जब ये बातें मालूम हुई तो खूब डांटा, फटकारा, अपनी पत्नी को — मगर उनकी जिद के सामने अन्त में झुकना पड़ा उन्हें।

हवेली दान कर दी गई कापालिक भैरवानंद को। मणिमाला देवी को पूर्ण विश्वास था कापालिक पर। वह नित्य श्रद्धा और आस्थापूर्वक पूजा की सामग्री लेकर हवेली में जाती और घण्टों पूजा-अर्चना करती। कथा और उपदेश सुनती- कापालिक से। कभी-कभी तो पूरा दिन ही निकल जाता था हवेली में। रात जब थोड़ी गहरा जाती तब मणिमाला देवी हवेली के बाहर निकलती। उस समय उनकी आँखे लाल रहती और चलते समय पैर लड़खड़ाते होते।

मणिमाला देवी तीसरी पत्नी थी। सन्तान की लालसा के वशीभूत होकर राधा मोहन राय ने एक के बाद एक तीन शादियाँ की थी पहली दो पत्नियाँ भी साथ रहती थीं। मगर सर्वाधिकार था मणिमाला देवी का ही सब कुछ ही मालकिन वे ही थीं। वह सुन्दर और आकर्षक थीं। उम्र भी यही करीब तीस के आस-पास थी मगर देखने में बीस-बाईस साल से अधिक नहीं लगती थी वह।

कुछ ही दिनों बाद एक आश्चर्यजनक बात हुई।

वह क्या, मैंने पूछा?

मणिमाला देवी तो नहीं, बल्कि मझली रानी गर्भवती हो गयी और समय पर एक पुत्र को जन्म दिया उन्होंने। राधा मोहन राय की खुशी का ठिकाना न रहा। उन्होंने पुत्र जन्म का उत्सव काफी धूम-धाम से मनाया। हजारो कंगले खिलाये गये गरीबों को खैरात दिया गया, ब्राह्मणों को भी दान दक्षिणा दिया गया। कापालिक को तो विशेष रूप से सम्मानित किया गया। ढेर सारे रत्न जड़ित आभूषण, वस्त्र और रूपये दिये गये उसे।

मणिमाला देवी को यह सब अच्छा नहीं लगा था। बराबर मौन ही रही वह। किसी भी मंगल कार्य और किसी भी उत्सव में भाग नहीं लिया उन्होंने। राधा मोहन राय ने भी कोई महत्व नहीं दिया उनको और बाद में तो वह पूरे परिवार की उपेक्षित हो गयी। अब वह पूरी रात बिताने लगी कापालिक के सान्निध्य में। कभी-कभी तो हफ़्तों बाहर ही न निकलती हवेली के। हर समय मन्दिर में डूबी रहती वह। कापालिक को उन्होंने गुरु मानकर अपना तन-मन सब कुछ अर्पित कर दिया था उसे। कापालिक ने भी अपनी भैरवी बना लिया था उन्हें। तीन-चार साल तक तो सब कुछ ठीक था। मगर एक रात मणिमाला देवी अचानक गायब हो गयीं और उसके कुछ ही दिनों बाद उस कापालिक ने भी समाधि ले ली। बाद में राधा मोहन राय का पूरा परिवार ही धीरे-धीरे समाप्त हो गया। चिराग जलाने वाला भी कोई न बचा। कहने की आवश्यकता नहीं तब से अब तक यानी पिछले सौ वर्षों से यह हवेली वीरान पड़ी हुई थी। शर्मा जी लोग बताते हैं कि जो भी इस हवेली में रहा, साल भी जीवित नहीं रह पाया। मौत की एक अदृश्य सी छाया बराबर इस हवेली में डोलती रहती है।

मैंने कहा आप भौतिक विज्ञान के विद्यार्थी रहे है, आपका मस्तिष्क वैज्ञानिक था। किन्तु अब लगता है कि आप फालतू बातों के चक्कर में पड़ गये हैं। ठीक-ठीक बतलाइये माजरा क्या है ?

मेरी बातें सुनकर वे विचलित स्वर में बोले तुम अब चाहे जो कहो शर्मा लेकिन अब विज्ञान पर से मेरा विश्वास हट चुका है।

वह कैसे ? उनके जुबान से मुझे विस्मय हो रहा था।

पिछले सौ वर्षों से मणिमाला देवी की अतृप्त आत्मा इस हवेली में भटक रही है और इसमें रहने वालों की निर्ममतापूर्वक हत्या कर देती है।

देखो, यह है उसका चित्र। कहकर उन्होंने लालटेन उठाकर सामने दीवार पर टंगे एक आदमकद तैल चित्र की ओर इशारा किया।

मैंने चित्र को बड़े ध्यान से देखा। सचमुच अपने समय में अत्यधिक सुन्दर, कमनीय और आकर्षक युवती रही होगी मणिमाला देवी। लालटेन की पीली रोशनी में भी उनका भव्य राजसी व्यक्तित्व चमक-दमक रहा था। गले में स्फटिक-रुद्राक्ष की माला, चौड़े मस्तक पर लाल सिन्दूर का बड़ा सा गोल टीका और सुगठित चम्पई रंग की देह पर लिपटी हुई लाल रंग के चौड़े पाढ़ की रेशमी साड़ी से स्पष्ट जाहिर होता था कि वह निश्चय ही उस कापालिक की भैरवी रही होंगी।

फिर भी मुझे सब कुछ बड़ा अविश्वसनीय सा लगा। मजूमदार बाबू की दयनीय मुद्रा बड़ी ही विचित्र सी लगी। मैं बोला - आपने पहले कहा कि मणिमाला देवी गायब हो गयी और अब आप कह रहे है कि उनकी अतृप्त आत्मा इस हवेली में सौ साल से भटक रही है। मेरी समझ में नहीं आयी आपकी यह बात ?

लालटेन की लौ को तेज करते हुए मजूमदार बाबू बोले गायब होने की तो अफवाह है शर्मा जी। सच तो यह है कि उस कापालिक ने बलि दे दी थी मणिमाला देवी की और वह भी इसी हवेली में।

आपको किसने बतलाया ?

शशिधर पुजारी ने।

कौन है यह शशिधर पुजारी ?

इसी बस्ती ने रहता है। उसके दादा हलधर पुजारी, राधा मोहन राय के खानदान के पुरोहित थे। वे इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि मणिमाला देवी की बलि हवेली के तलघर में उस कापालिक ने अपनी किसी सिद्धि के लिए दी थी। मगर वह सिद्धि सफल नहीं हुई।

फिर क्या हुआ?

होगा क्या, उसी असफलता के कारण मणिमाला देवी की आत्मा मुक्त होने के बजाय प्रेतयोनि में तभी से भटक रही है। हलधर पुजारी से देखा नहीं गया राय वंश का नाश मणिमाला देवी की प्रेतात्मा ने ही किया है वे इस बात से खूब परिचित थे। वे यह भी जानते थे कि जब तक उसे प्रेतयोनि से मुक्ति नहीं मिलेगी तब तक वह हवेली में रहने वालों का सत्यानाश करती ही रहेगी। इसलिए हलधर पुजारी कलकत्ता के काली मन्दिर से एक प्रेतबाधा निवारण यंत्र अभिमंत्रित कराकर ले आये। तांत्रिक ने उनको यह विश्वास दिलाया था कि जब तक वह सिद्धि यंत्र हवेली में मौजूद रहेगा वहाँ कोई अनिष्ट नहीं होगा लेकिन शर्मा जी तुमको यह जानकर विस्मय होगा कि साल में २२ अगस्त को हवेली में किसी की मौत होनी निश्चित होती है और उस रात वह सिद्धि यंत्र गायब हो जाता है तथा मौत हो जाने के बाद फिर वापस आ जाता है।

अच्छा ! विस्मित होकर बोल उठा मैं।

हाँ, और यह क्रम अभी तक जारी है।

तभी मुझे कुछ याद आया और उसी के साथ मेरा कलेजा धक-से, रह गया उस दिन २२ अगस्त था।

२२ अगस्त १९७५।

मैंने कहा आज भी वही मनहूस तारीख है मजूमदार बाबू, बाईस अगस्त।

हाँ, लगभग रोते हुए मजूमदार बाबू बोले, "इसलिए तो तुम्हे बुलाया है मैंने।"

आपको कुछ न होगा मजूमदार बाबू। मैंने दृढ़ता पूर्वक कहा, यह तो बतलाइए, वह सिद्ध यंत्र कहाँ है ?

लालटेन हाथ में लेकर मजूमदार बाबू उठ खड़े हुए और बोले, कमरे में आलमारी के भीतर रखा है। चलो, मैं तुमको दिखाता हूँ।

बगल वाला कमरा अपेक्षाकृत छोटा था मगर उसकी हालत भी कुछ ठीक नहीं थी। दीवारों के पलस्तर जगह-जगह टूटे थे। फर्श भी टूटा-फूटा था और वह भी धूल से अटा पड़ा था। मैंने देखा सामने की दीवार में बने आलमारी के पास मजूमदार बाबू गये और फिर उन्होंने यहाँ से कुछ उठाया। उस समय बारिश थम गयी थी सिर्फ झींगुरों की झीं-झीं आवाज सुनाई दे रही थी।

उस वस्तु को लेकर मजूमदार बाबू मेरे पास आये। यह ६ इंच के लगभग ताम्रपात्र पर बना एक विलक्षण तांत्रिक यंत्र था। उस पर सिन्दूर की न जाने कितनी परतें पुती हुई थी। यंत्र काला पड़ गया था।

इसी जगह में रखा रहता है यह मैंने पूछा ?

हाँ मजूमदार बोले २२ अगस्त की रात को यह अपने आप गायब भी हो जाता है।

तभी अंधेरे और सन्नाटे को चीरती हुई एक आवाज उठी। हम बुरी तरह सिहर उठे स्तब्ध होकर हम दोनों ने दरवाजे की तरफ देखा लेकिन वहाँ कोई भी नहीं था फिर हमें लगा कि कोई रो रहा था और रह-रहकर करूण स्वर में किसी को पुकार रहा था ध्यान से सुना मैंने उस रूदन स्वर को। लगा कोई कुत्ता रो रहा था। हवा अब जोरों से चलने लगी थी। लालटेन की लौ कांप रही थी। लगता था अब बुझी, तब बुझी।

यह रोने की आवाज सुन रहे हो शर्मा। विस्फारित दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए मजूमदार बाबू ने पूछा।

कहीं कोई कुत्ता रो रहा है मजूमदार बाबू!

कुत्ते का रोना अशुभ होता है न मजूमदार बाबू, कम्पित स्वर में बोले।

आपको कुछ नहीं होगा। मैने दृढ़ स्वर में कहा - रही आज रात की बात तो यह सकुशल कट जायेगी। सुबह होते ही हम कलकत्ता चलेंगे। यहाँ आपका रहना ठीक नहीं।

कलकत्ता जाकर क्या करुँगा मैं ? वहाँ अब है ही कौन मेरा, मजूमदार बाबू विस्मय स्वर में बोले।

क्यों, चारूलता तो है ही वहाँ।

चारूलता ही होती तो सब कुछ बेचकर यहाँ आकर एकान्तवासी क्यों बनता बुझे-बुझे स्वर में बोले मजूमदार बाबू चारूलता को क्या हुआ ? शंकित होकर पूछा मैंने।

वह अब इस दुनिया में नहीं है।

ऐं ! क्या कहा आपने ? ...चारूलता नहीं है इस दुनिया में ?

नहीं।

एकबारगी स्तब्ध रह गया मैं यह चुनकर। बारिश फिर शुरू हो गयी।

मैं स्थिर भावशून्य दृष्टि से तांबे के उस यंत्र को देख रहा था जो अभिमंत्रित किया गया था। और जिसके बारे में दावा था कि जब तक वह हवेली में रहेगा कोई अनिष्ट नहीं होगा। मगर वह २२ अगस्त की रात को रहस्यमय ढंग से गायब हो जाता था और फिर वापस भी आ जाता था।

तभी सहसा मेरे भीतर कुछ कौंधा। मजूमदार बाबू की तरफ देखकर मैंने कहा, मैं एक कप चाय और पियूंगा यदि आपको परेशानी न हो तो।

परेशानी किस बात की ? स्टोव है, दूध भी रखा होगा।

ठीक है मैंने कहा मैं यहीं बैठा हूँ। थोड़ा सुस्ताऊँगा, फिर आपसे अपने बारे में बात करूँगा।

एक टूटी चिमनी वाले लैम्प को जलाकर मजूमदार बाबू मेज पर रखते हुए फिर बोले, मैं पांच मिनट में आया।

कहते हुए वे बरामदे से लगे हुए एक कमरे में चले गये। मेज पर रखा हुआ वह सिद्ध तांत्रिक यंत्र लैम्प की रोशनी में चमक रहा था। मैंने उस पर हाथ फेरा तो वह जमा हुआ सिन्दूर मेरी उंगलियों में उतर आया, मैंने गौर से देखा तो उस यंत्र में मुझे कोई असाधारण बात नजर नहीं आयी।

लेकिन मजूमदार बाबू कह रहे थे कि वह असाधारण था। उसमें असाधारणता क्या थी यही जानने के लिए मजूमदार बाबू को मैंने दूसरे कमरे में भेजा था। चाय तो सिर्फ बहाना था।

मैं नितान्त आध्यात्मवादी नहीं हूँ। भौतिकवादी भी हूँ। पूरा प्रमाण मिलने पर ही मैं अशरीरी तत्वों पर विश्वास करता हूँ। फिर भी बरसात की उस भयानक रात्रि की नीरवता

में आतंक की एक ठन्डी लहर दौड़ गयी मेरे कलेजे मे, मैं समझ गया था कि उस हवेली के साथ जुड़ी हुई किंवदन्तियों ने मजूमदार बाबू की मानसिक शान्ति नष्ट कर दी थी और आसन्न मृत्यु की आशंका से वे बुरी तरह आतंकित हो गये थे। २२ अगस्त की रात को अपनी संभावित मृत्यु से डरकर उन्होंने मुझे बुलाया था। मेरा यह फर्ज था कि मैं उनकी रक्षा करूँ।

मैंने टकटकी बांधे यंत्र को फिर से देखा उस पर लैम्प की कांपती हुई लौ पड़ रही थी, बरामदे से लगे कमरे में स्टोव की भर्र-भर्र की आवाज सुनाई दे रही थी। मजूमदार बाबू मेरे लिये चाय बना रहे थे।

तभी कुत्ता फिर रोने लगा। उसकी मनहूस आवाज हवा और बारिश को मथती हुई पूरे वातावरण में फैलने लगी। मैने यंत्र की ओर देखते हुए सोचा इसके गायब होने का मतलब है मौत।

मेरे मन में भी धुक-धुकी लगी थी। लग रहा था कि मेरे सिर में दर्द होने लगेगा। पूरे तीन दिन के सफर ने मेरे शरीर को तोड़कर रख दिया था। सोचा था, मजूमदार बाबू के यहाँ पहुँचकर आराम करूँगा और मिलूँगा चारूलता से लेकिन यहाँ तो भारी परेशानी मेरा इन्तजार कर रही थी। उस पागल बना देने वाले वातावरण में पगलाए हुए मजूमदार बाबू की तरह मैं भी पागल होता जा रहा था।

लैम्प की मद्धिम रोशनी में वह सिद्ध तांत्रिक यंत्र वैसे ही चमक रहा था। उसे मेज से उठाकर मैने अपने कोट की जेब में डाल लिया।

हर साल २२ अगस्त की रात्रि में यंत्र के अपने आप गायब होने पर इस हवेली में किसी की मौत हो जाती है अब यह यंत्र गायब नहीं होगा। कम से कम २२ अगस्त की रात को तो गायब हो ही नहीं सकता क्योंकि मैंने अपनी कोट की जेब में सुरक्षित रख लिया है।

मजूमदार बाबू को कुछ न होगा। दरवाजे पर लालटेन की पीली रोशनी उभरी। हवा में चाय की ट्रे लिये हुए मजूमदार बाबू भीतर आये।

मैंने कहा, आपको बड़ी तकलीफ दे रहा हूँ। क्षमा कीजिएगा। परेशानी तो दरअसल तुम्हें हुई है। बनारस से आकर तुम जरा भी आराम नहीं कर पाये। अभी देखो...

उनकी बात अधूरी ही रह गयी, मैंने देखा निगाहे दरवाजे पर टिक गयी थी और चेहरा विवर्ण हो गया था। विस्फारित दृष्टि से वे दरवाजे की तरफ़ देख रहे थे। क्या बात है मजूमदार बाबू ? मैंने पूछा।

लेकिन उन्होंने मेरी आवाज नहीं सुनी। बेसुध से वे टकटकी लगाये दरवाजे की तरफ देखते रहे और उनकी देह सूखे पत्ते की तरह कांप रही थी।

वह आ गयी है... वह आ गयी है अस्फुट स्वर में वे बोले।

मैने शंकित सतर्क होकर पूछा।

अरे वही ! उदभ्रान्त दृष्टि से मेरी तरफ देखते हुए उन्होंने कहा और ट्रे में रखा प्याला फेंककर उन्होंने दरवाजे पर किसी को मारा।

झन-झन कर टूट गया प्याला। भय और आतंक से मेरा सर्वांग भी झन-झना उठा एकबारगी। सूखे कण्ठ से मैंने कहा वहाँ तो कोई नहीं है मजूमदार बाबू। आप परेशान न हों।

मैंने कहा था न ! वह जरूर आयेगी - कहते हुए वे हवेली के भीतर भागे और मेज, कुर्सी, लैम्प और मुझे भी धक्का देते हुए वे बगल के कमरे में घुस गये। मैं फ़र्श पर गिर पड़ा था किसी प्रकार मेज का सहारा लेकर उठा और लगभग दौड़ता हुआ मैं भी घुस गया उस कमरे में। घोर आश्चर्य हुआ मुझे कमरे की दीवारों के प्लास्टर टूटे हुए थे। फर्श पर धूल और गर्द की मोटी परतें जमी हुई थी। लगा मानों वर्षों से उस कमरे में कोई आया न हो। फर्श में नीचे जाने के लिए सीढ़ियाँ थी। निश्चय ही कमरे के नीचे तहखाना था। मैं अभी खड़ा इधर-उधर देख ही रहा था कि तभी मेरे कानों के पास किसी नारी के हंसने की आवाज आयी। आतंकित हो उठा मैं। उसी समय अप्रत्याशित रूप से हत्कम्पित स्वर में मजूमदार बाबू की चीत्कार सुनाई पड़ी मुझे। रक्त जमा देने वाले उस चीत्कार की आवाज तहखाने से आयी थी और फिर सुनायी दिया उनका भयातुर स्वर जैसे गला दबा रहा हो उनका कोई।

नीचे काफी लम्बा-चौड़ा था वह तहखाना। मैंने देखा तहखाने के बिल्कुल बीच में लगभग दो फुट ऊँची पत्थर की एक वेदी थी। जिस पर किसी तांत्रिक देवी की भयंकर मूर्ति स्थापित थी। मूर्ति लाल संगमरमर के पत्थर की थी जिसमें बड़ा सा खूंटा था और उस खूंटे में फंसा हुआ एक नर कंकाल था।

कंकाल की खोपड़ी बगल में थी। जिससे साफ जाहिर था कि वहाँ उसकी बलि दी गयी थी। कंकाल के दोनों हाथों की कलाईयों में सोने की चूड़ियाँ झूल रही थीं और पैरों में सोने के पायजेब पड़े थे। निश्चय ही वह रानी मणिमाला देवी का ही कंकाल था यह समझते देर न लगी मुझे।

उस कंकाल के पास ही मजूमदार बाबू फर्श पर पड़े बुरी तरह कांप रहे थे। जैसे बचाव की कोशिश कर रहे हो किसी से।

धूल-धूसरित हो गयी थी उनके देह — भयानक आतंक से चेहरा विकृत हो गया था और होंठ फड़फड़ा रहे थे।

आँखे पथरा सी गयी थीं।

मजूमदार बाबू ! मजूमदार बाबू ! भयातुर कंठ से मैंने कहा - आप क्या कर रहे है यह ?

मजूमदार बाबू कांपे। फिर निगाह उठाकर उन्होंने मेरी ओर देखा।

उफ ! कैसी दहशत थी उन आँखों में ? फिर आहत सर्प की भांति वे अपना सिर पटकने लगे। वह अभिमंत्रित तांत्रिक यंत्र कहाँ है शर्मा...? कौन ले गया उसे ?

तांत्रिक यंत्र ! छाती पर जैसे घूँसा मारा किसी ने, जेब टटोलते हुए मैने कहा - यह रहा यंत्र, मजूमदार बाबू लेकिन आपको हो क्या गया है ?

वेदना काफी बढ़ गयी थी मजूमदार बाबू की। अस्पष्ट स्वर में गों-गों किये जा रहे थे है फिर भी मेरा वाक्य सुनकर जड़ दृष्टि उठाई उन्होंने मेरी ओर।

लेकिन कैसा पैशाचिक-सा चमत्कार हो गया। वह तांत्रिक यंत्र गायब था मेरी जेब से, मुझे लगा जैसे पागल हो जाऊँगा। विह्वल स्वर में चिल्लाकर मैंने कहा - अरे यंत्र कहाँ गया ? ...मैने तो अपनी जेब में रखा था उसे।

किन्तु सुन नहीं पाये मजूमदार बाबू जैसे मेरा मनस्ताप भरा स्वर। उखड़े से निःश्वास के मध्य क्षीण स्वर में सिर्फ इतना ही कहा - देखो, वह खड़ी है मणिमाला देवी ! देखो, देखो कैसी चमक रही हैं उसकी आँखे। और वह रहा सिद्ध तांत्रिक यंत्र उसकी मुठ्ठी में और उनका सिर एक ओर लटक गया। मृत्यु की शीतल छाया लहरा उठी उनके मुख पर, वे मर चुके थे।

मैंने स्पष्ट सुना, उस तूफानी रात की सिसकियों के बीच जैसे कोई नारी मेरे समीप से पायजेब की झन-झन आवाज करती हँसती हुई गुजर गयी हो। सहसा हवा का एक तेज झोंका घुस आया तहखाने में और उसी के साथ सड़ांध से भर उठा वातावरण लगा, मानों कई सड़ी-गली लाशें पड़ी हुई हो वहाँ कहीं ? मेरी स्थिति विचित्र सी हो गई। सम्मोहन जैसा कुछ छाने लगा मुझ पर और उसी के साथ अजीब किस्म का भारीपन भी महसूस होने लगा मस्तिष्क में। धीरे-धीरे मेरी चेतना शक्ति लुप्त होने लग गयी। अवशता का भाव भी भरता जा रहा था मन में और उसी स्थिति में मेरी दृष्टि सहसा घूम गयी उस कंकाल की ओर। भय और आतंक से भर उठा एकबारगी मेरा मन, मुंह से चीख निकलते-निकलते रूक गयी।

कंकाल अपनी जगह धीरे-धीरे हिल रहा था और उसी अवस्था में बगल में पड़े मजूमदार बाबू के निर्जीव शरीर की ओर भी बढ़ रहा था।

फिर रूक न सका मैं वहाँ। न जाने कहाँ से ताकत आ गयी मुझमें। गिरता-पड़ता किसी प्रकार रहस्यमय तहखाने के बाहर निकला मैं। उस समय सारी सृष्टि डूबी हुई थी घोर अंधकार में। जोरों से बारिश हो रही थी और तेज अंधड़ चल रहा था। अंधेरे में टटोल कर अपनी अटैची उठाई मैने - और आंधी-पानी की परवाह किये बिना तेजी से दौड़ता हुआ भागा वहाँ से मैं।

इस रोमांचकारी और अविश्वसनीय घटना को घटे लम्बा समय हो गया है - मगर जब कभी उसकी स्मृति जागृत होती है तो मेरा सारा शरीर सिहर उठता है एकबारगी।

वह धूल-धूसरित अभिशप्त हवेली अब खण्डहर में बदल चुकी है लेकिन उस इलाके के लोगों के मन में अभी भी हवेली के प्रति भय और आतंक है। लोगों का कहना है कि कभी-कभी रात में आज भी किसी के रोने-चीखने और करूण स्वर ने विलाप करने की आवाज सुनायी

पड़ती है हवेली में।

अध्याय १५
प्यासी आत्माएँ

सन् १९४८ ई.। उन दिनों मैं कलकत्ता में रहता था। वैसे मैं मुख्य रूप से भूत-प्रेत और तंत्र-मंत्र पर व्यक्तिगत रूप से शोधकार्यों में जुटा हुआ था। मेरे मित्र थे अखिलेश राय चौधरी। परामनोविज्ञान के क्षेत्र में काफी प्रसिद्ध थे राय चौधरी। उन दिनों वे कलकत्ता विश्वविद्यालय में उच्चपद पर थे।

एक दिन सांझ के समय - जब मैं कर्निंग स्ट्रीट से गुजर रहा था - तभी एकाएक मिल गये राय चौधरी। काफी दिनों बाद मुलाकात हुई थी। मुझे देखते ही बोले वह - अरे ? भाई शर्मा जी ! कहाँ थे आप ? मैं कुछ कहने ही जा रहा था कि तभी बीच में ही फिर बोल पड़े महाशय, तुम तो जानते ही हो कि मुझे उस छोटे-से मकान में परेशानी हो रही थी और पिछले महीने मैंने एक मकान देखा अलीपुर में। पसंद भी आ गया मुझे। कम-से-कम दो सौ साल पुराना होगा वह मकान। मगर बराबर मरम्मत होते रहने के कारण देखने में उतना पुराना नहीं लगता पहले उसमें छावनी के अंग्रेज अफसर रहा करते थे। इसलिए मकान के कमरे विलायती ढंग से सजे हुये हैं। मकान हवादार और आराम देह तो है ही इसमें सन्देह नहीं। मैंने तुरन्त तीन महीने की पेशगी देकर उसे किराये पर ले लिया पर बन्धु, चौथे दिन ही मुझे मकान छोड़ना पड़ा।

क्यों, किस लिए छोड़ दिया आपने ऐसा आरामदेह मकान ?

कलकत्ते में तो ऐसा मकान मिलना कठिन ही है - मैने कहा।

सच बात तो यह है कि उस लम्बे चौड़े हवेलीनुमे मकान में एक ऐसा कमरा है जो बिल्कुल खाली है। उस कमरे के पास से गुजरते समय मुझे प्रत्यक्ष रूप से कुछ दिखाई सुनाई नहीं पड़ता था - लेकिन एक अजीब से भय के कारण मेरा सारा शरीर रोमांचित हो उठता था। चौथे दिन सुबह मैंने मकान की रखवाली करने वाली बुढ़िया को बुलाया और मकान की चाभी उसे थमाते हुए बोला - भाई मुझे यह मकान ठीक नहीं लगता। इसलिए छोड़ रहा हूँ इसे। बुढ़िया रूखे स्वर में बोली - मैं उसकी वजह जानती हूँ साहब। फिर भी आप इस मकान में रहने वाले दूसरे सब किरायेदारों से ज्यादा टिके। ज्यादातर लोग तो दूसरे ही दिन मकान छोड़कर भाग खड़े होते हैं। आपसे पहले इस मकान में तीन दिन तो कोई टिका ही नहीं। मेरा ख्याल है कि वे लोग आप के ऊपर काफी मेहरबान रहे।

वे कौन लोग - मैंने आश्चर्य से पूछा ?

वही जो इस मकान में रहते हैं। वे चाहे भूत-प्रेत-जिन्न हो या और कुछ बतला नहीं सकती मैं। मगर वे कई हैं और काफी ताकत भी रखते हैं।

उस बुढ़िया ने, भाई शर्मा, इतनी भयानक गम्भीरता से ये शब्द कहा कि मैं इसके बाद उससे बात करने की हिम्मत न कर सका।

राय चौधरी की ये बाते सुनकर बेहद उत्सुक हो उठा मैं। हँसकर बोला - आप भूत-प्रेत से डरते नहीं। न जाने कितना विचित्र अनुभव भी हुआ है आपको, फिर क्यों इतना भयभीत हो गये आप ?

भाई, ऐसी बात नहीं। झेंपते हुए बोले राय चौधरी - बात दरअसल यह है कि मुझे अपनी पत्नी के कारण मकान छोड़ना पड़ा। तुम तो जानते ही हो कि वह हद से ज्यादा डरपोक और कमजोर दिल की औरत है। उसी के बार-बार कहने पर छोड़ना पड़ा मुझे मकान।

यदि आप कहें तो मैं उस रहस्यमय मकान में कम-से-कम एक रात तो अवश्य रहना चाहता हूँ - मैने सहज भाव से कहा।

कहने की आवश्यकता नहीं - दूसरे ही दिन मैं अलीपुर के उस रहस्यमय मकान में बोरिया-बिस्तर लेकर पहुँच गया।

उस जमाने में अलीपुर का इलाका आज की तरह गुलजार नही था। चारो तरफ खामोशी छायी हुई रहती थी। गिनती के पचास-साठ मकान थे - जो काफी पुराने थे। वह रहस्यमय मकान अलीपुर में सुनसान जगह पर था। पास ही दो एक दुकाने चाय की थी और एक छोटा-सा होटल भी था किसी बंगाली का। जिसमें चाय के अलावा दोनों वक्त खाना भी मिलता था।

मकान भीतर से बन्द था। मैं जरा आगे बढ़ा। तभी उस होटल का छोकरा नौकर - जो जूठे-प्लेट धो रहा था - मेरे करीब आया और बोला - साहब क्या आप किसी से मिलना चाहते हैं ?

हाँ ! मैंने सुना है कि यह मकान किराये पर देने के लिए खाली है।

हाँ, यह मकान तो साहब ! खाली है। एक मुसलमान औरत इसकी रखवाली करती थी। वह पिछले हफ्ते इसी मकान में मरी पायी गयी। उसकी मौत बेहद दर्दनाक और हादसे से भरी थी। मैंने खुद अपनी आँखों से उसकी लाश को देखा था। उसका चेहरा काफी डरावना लग रहा था। मुंह खुला था आँखे बाहर को उबल पड़ी थी। मुंह से ढेर सारा खून निकल कर फर्श पर फैला हुआ था।

थोड़ा रूककर छोकरा आगे बोला - साहब मकान भुतहा है। अब तो और भी लोग इसमें रहने को राजी न होंगे।

इस मकान का मालिक कौन है - मैंने पूछा ?

“नवाब, बहादुर अली खाँ।”

खाँ साहब रहते कहाँ है ?

लेक रोड पर उनका बहुत बड़ा आलीशान मकान है। उसी में रहते है खाँ साहब काफी जमीन जायदाद और बेशुमार दौलत है उनके पास साहब।

इतना समाचार मेरे लिए काफी था। मैंने एक रुपया जेब से निकालकर उस छोकरे को इनाम दिया और उसी समय खाँ साहब के घर जा पहुँचा। संयोग से वे घर पर थे। चेहरे से बुद्धिमत्ता टपक रही थी। बातचीत करने का ढंग भी उनका बड़ा ही शिष्ट और आकर्षक था। जब उनको यह मालूम हुआ कि मैं भूत-प्रेत के रहस्यमय विषयों पर खोज कार्य कर रहा हूँ - तो बेहद प्रसन्न हुए वे। बड़ी विनम्रता से बोले - मकान आप की खिदमत में हाजिर है। आप जब तक चाहें - उसमें रह सकते हैं। किराये की तो बात ही नहीं है। इस समय वह मकान बेहद बदनाम है। ऐसी हालत में अगर आप मकान के रहस्य का पता लगा लेंगे तो उलटे मैं ही आपका शुक्र गुजार रहूँगा, बातचीत के सिलसिले में मुझे पता चला कि खाँ साहब की पत्नी अल्लाह को प्यारी हो चुकी है। औलाद के नाम पर एक लड़की है सिर्फ जिसका नाम है मेहरुन्निसा। जब मैंने पहली बार मेहरुन्निसा को देखा तो देखता ही रह गया उफ् कितनी खूबसूरत थी वह। शब्दों में उसके सौन्दर्य और उसकी रूप राशि का वर्णन मैं नहीं कर सकता। लगा- जैसे अजन्ता-एलोरा की गुफा की कोई अभिषारिका साकार हो गयी हो मेरे सामने। जाने कब तक मुग्ध भाव से देखता रहा मैं उसकी ओर।

आपका यह मकान कब से मनहूस हो गया है ? मैंने पूछा।

यह ठीक-ठीक बतलाना मुश्किल है। पर मुझे इतना जरूर याद है कि बहुत सालों से इसका यही हाल है। थोड़ा रूककर खाँ साहब आगे कहने लगे - सच तो यह है कि यह मकान मेरे चाचा का था।

आज से चालीस साल पहले उन्होंने मुर्शीदाबाद के किसी नवाब से खरीदा था मामूली दामों में। उस जमाने में यह मकान कलकत्ते में इशरत महल के नाम से जाना जाता था। चाचा से ही सुना था कि नवाब साहब ऐयाश तबीयत के थे। शराब और शबाब का बेहद शौक था उन्हें। रोजाना रात में नवाब साहब की महफिल जमती थी इशरत महल में। नवाब साहब कमसीन तवायफों के मखमल के पट्टे में पिरोये घुंघरुओं की मधुर आवाज की कोमल लड़ियों पर तैरती थिरकती शराब की महक और बेला चमेली जूही की मिली-जुली सांझ होते ही फैलने लग जाती थी इशरत के कोने-कोने में।

कुछ दिनों बाद दूसरा महायुद्ध शुरू हो गया। बर्मा पर जापानियों के हमले का प्रभाव बंगाल पर भी पड़ा। नतीजा यह हुआ कि नवाब साहब को इशरत महल के अलावा बंगाल में मौजूद अपनी तमाम जमीन जायदादों को एक-एक कर बेचना पड़ा। मेरे चाचा की कोई औलाद न थी। जब वे मरे तो उनकी जायदाद सम्भालने के लिए लाहौर से कलकत्ता आना पड़ा, मुझे। यहाँ आने पर यह मकान मुझे इसी तरह सूना नजर आया। और पता लगा कि उसमें रूहों का डेरा है। मुझे ये बातें मनगढ़न्त और काल्पनिक लगी। मैने मकान को मरम्मत कराया। रंग रोगन कराया। नये ढंग के फर्नीचरों से सजाया और एक अंग्रेज अफ़सर को किराये पर दिया। मगर वह ज्यादा दिन टिक न सका। एक सप्ताह बाद ही भाग खड़ा हुआ। पूछने पर उसने बतलाया कि मकान काफी भयानक है। रहने के काबिल नहीं है। उसके बाद से किरायेदारो का सिलसिला चल पड़ा।

मगर कोई भी किरायेदार एक सप्ताह से ज्यादा ठहर न पाता मकान में। नतीजा यह हुआ

कि मकान पूरी तरह बदनाम हो गया। आज उसकी जो हालत है वह आप खुद ही देख रहे हैं। अन्त में खाँ साहब अपनत्व भरे स्वर में बोले- अगर आप मेरी सलाह मानते तो मैं आपसे यही कहूँगा कि आप रात को मकान में हर्गिज न रहे। हो सकता है जान का कोई खतरा पैदा हो जाय।

यह सुनकर मैं हँस पड़ा। दृढ़ता के साथ कहा - मुझे इस मामले में बेहद दिलचस्पी है। और अनजानी परिस्थितियों में हिम्मत का दम्भ भरना मैं कायरता समझता हूँ। फिर भी मैं आपको सिर्फ इतना बताना चाहता हूँ कि मैं खतरों के बीच ही पला हूँ। भूत-प्रेत और खतरनाक से खतरनाक जिन्नों से मेरा सामना अब तक कई बार हो चुका है। आपके भुतहे स्थान में रहने से भी मुझे अपने दिल की मजबूती पर पूरा भरोसा रहेगा।

खाँ साहब ने एक बार मेरी ओर गहरी नजरो से देखा फिर मकान की ताली मेरे हवाले कर दिया।

कहने की जरूरत नहीं, उसी दिन मैंने भुतहे मकान में अपना डेरा डण्डा जमा दिया। जब मैं रात बिताने के लिए पहली बार उस मकान में पहुँचा तो मेरा नौकर देवी दरवाजे पर खड़ा मेरा इन्तजार करता हुआ मिला। देवी उड़ीसा का रहने वाला था। काफी हिम्मती था वह। मुझे उस पर पूरा भरोसा था।

मुझे देखते ही बोला वह - साहब ! मकान तो हवादार और काफी आराम देह है। मगर बिजली न रहने से कुछ तकलीफ हो सकती है।

मैंने उसकी बात अनसुनी करते हुए पूछा - तुम सुबह से इस मकान में हो। तुमने अभी तक कोई अजीब बात देखी या सुनी तो नहीं ?

हाँ, साहब, मकान कुछ अजीब जरूर है। यह बात तो माननी ही पड़ेगी, क्या-क्या ? मेरे उत्सुकता का बांध टूटने लगा।

मुझे कई बार मकान के निचले हिस्से में तो कभी ऊपर हिस्से में किसी के पैरों की आहट सुनाई देती रही है। मुझे दो तीन बार ऐसा भी लगा कि जैसे कोई मेरे कानों के पास ही फुसफुसा कर बातें कर रहा हो। इसके अलावा मैंने कुछ नहीं देखा सुना।

तुम डरे तो नहीं ?

नहीं, साहब इसमें डरने की क्या बात है।

यह सुनकर मुझे विश्वास हो गया कि चाहे जो हो यह उड़िया नौकर मेरा साथ छोड़ेगा नहीं।

नवम्बर का महीना था। ठंड पड़ने लगी थी। हवा में तरावट थी, रात की कालिमा गहरा गयी थी। हल्के बादलों के सफेद टुकड़े नीले आकाश में तैर रहे थे। शुक्ल पक्ष की एकादशी का चांद बादलों की ओट से बाहर निकल आया था। चारों ओर रूपहली चांदनी बिखरी हुई थी।

मकान के ऊपरी हिस्से में मैंने एक कमरा अपने लिये ले लिया था। कमरा काफी लम्बा चौड़ा था काफी हवादार भी था — तीन-चार बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ थी जिनमें से होकर हवा का सैलाब कमरे में थम रहा था। कुछ देर तक मैं खड़ा रहा खिड़की के पास और बाहर छिटकी हुई चांदनी का आनन्द लेता रहा। देवी, टेबल पर खाना लगा चुका था तब तक। खाना खाने के बाद मैं आराम से पैर फैला कर पलंग पर लेट गया। मेरे कमरे के बगल में एक और कमरा था। जिसका एक दरवाजा मेरे कमरे से भी खुलता था। देवी ने अपने सोने के लिए उसी कमरे में इन्तजाम किया था। वह भी खाना खाकर अपने कमरे में चला गया।

धीरे-धीरे रात गुजर रही थी। मुझे नींद आने का प्रश्न ही नहीं था। मैं जागता रहा। कभी-कभी पलकें झपक जाती थी। एकाएक मुझे ऐसा लगा कि कोई कमरे में विचित्र ढंग से गहरी सांसे ले रहा है। निश्चय ही वह किसी इन्सान की सांस नहीं थी। और तभी मुझे कमरे के पास एक बड़ा सा पीला प्रकाश दिखाई दिया। जो मनुष्य के आकार के बराबर था। वह कुछ देर तक तो स्थिर रहा अपनी जगह पर फिर धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। फिर वह प्रकाश छोटी-सी गोली के रूप में बदल गया। प्रकाश की वह रहस्यमयी गोली बहुत देर तक कमरे में चारों तरफ उछलती कूदती रही, फिर अचानक गायब हो गयी। इसी के साथ एक और विचित्र घटना घटी जिसकी सपने में भी मुझे आशा नहीं थी। सहसा अपने कमरे का दरवाजा धड़ाक से खोलकर देवी बाहर निकला। उस समय उसके चेहरे पर डर का जैसा भयानक भाव था वैसा मैंने भाव आजतक कहीं नहीं देखा। वह मेरे बगल से तेजी से निकल गया फुस-फुसाते हुए।

भागिये साहब, भागिये...वह मेरे पीछे-पीछे आ रहा है।

लगा जैसे वह आवाज देवी की न हो। वह तेजी से सीढियाँ उतरकर मकान के मुख्य दरवाजे के पास पहुँचा। फिर उसने बन्द दरवाजा झटके से खोला और बेतहाशा बाहर भागा। मैंने उसे कई बार आवाज दी, लेकिन उसने मेरी आवाज पर कोई ध्यान नहीं दिया।

अब मैं उस भुतहे मकान में अकेला रह गया। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि देवी किस बात से इतना भयभीत हो गया था ? कौन उसका पीछा कर रहा था ? एक टार्च लेकर पूरे मकान का चक्कर लगाया मैंने मगर मुझे कोई सन्देहप्रद वस्तु दिखलाई नहीं दी कहीं। मैं अपने कमरे में वापस आया। बिस्तर पर लेट गया। रात काफी गुजर चुकी थी। चाँद पश्चिम की ओर झुक गया था। आकाश बिल्कुल साफ हो चुका था। मुझे बिस्तर पर लेटे अभी दस मिनट भी नहीं हुये होंगे कि सहसा मेरे सामने एक काली-सी छाया प्रकट हुई। वह शनैः शनैः अजीब रूप धारण करती जा रही थी। उसका आकार और डील-डौल किसी दैत्य की तरह था। उसका सिर मानो छत को छू रहा था। मैं विस्फारित नेत्रों से देखता रहा। मेरा खून पानी होने लगा। सारा शरीर रोमांचित हो उठा। उस समय मुझे ऐसा लगा कि जैसे उस दानव रूप छाया के सिर से दो आँखे मुझे घूर रही है। मैं सांस और दम साधे पड़ा रहा चुपचाप बिस्तर पर — अब उस छाया के ऊपरी भाग से नीले और पीले रंग के प्रकाश की दो तेज किरणें मुझ पर पड़ रही थीं। ठीक उसी ऊँचाई से जहाँ मैंने दो आँखे देखी थी।

मैंने बोलने की कोशिश की। पर गला जैसे बन्द हो गया था। मैंने उठने की भी कोशिश की

मगर बेकार — मुझे लगा - जैसे कोई अदम्य शक्ति मुझ पर अपना प्रभाव डाल रही है। जैसे कोई अत्यन्त गतिमान महान शक्ति मेरी इच्छा और मेरे संकल्प का विरोध कर रही है और मुझे उस समय ऐसा लगा कि उस महान शक्ति का विरोध करना मनुष्य की शक्ति के बाहर की बात है।

मुझे उस समय असहायता और अपनी तुच्छता का ऐसा अनुभव हो रहा था कि बतला नहीं सकता। ज्यों-ज्यों मेरी यह भावना बढ़ती गयी - वैसे ही वैसे मेरे मन में भय का संचार गहरा होता गया। काफी प्रयास के बाद मैने इच्छा शक्ति को दृढ़ किया और काफी ताकत लगाकर बिस्तर से उठा। पर तभी मुझे धक्का-सा लगा और मेरा शरीर निर्जीव-सा होकर फिर बिस्तर पर गिर पड़ा और उसी के साथ मेज पर जलती मोमबत्ती की रोशनी धीमी पड़ने लगी। मेरा आतंक और बढ़ गया। मोमबत्ती बुझी तो नहीं - लेकिन लगा कि जैसे कोई अदृश्य शक्ति उसकी "लौ" को धीरे-धीरे बुझाने की कोशिश कर रही है। सहसा बुझ गयी मोमबत्ती और धुप अंधेरा छा गया कमरे में।

भयावह आतंक के भाव ने मुझे घेर लिया। अन्धकार के समुद्र में डूबे हुए उस कमरे में मैं था और थी वह भयानक दैत्याकार विकराल काली छाया। उसकी शक्ति का मुझे इतना विकट और भयानक अनुभव हो रहा था कि मेरा रोम-रोम कांप रहा था। सचमुच उस समय आतंक अपनी चरमसीमा पर पहुँच गया था। बस, अब दो ही बातों की सम्भावना थी - या तो मैं चेतना शून्य हो जाऊँगा, या फिर किसी तरह उस मायाजाल को तोड़ दूंगा और सच मानिए मैंने उस मायाजाल को आखिर में तोड़ ही डाला। एकबारगी चीख उठा मैं और उसी क्षण मुझे अपने आत्मबल का अनुभव हुआ और मुझमें उठने की शक्ति आ गयी। उठकर खिड़की की ओर दौड़ पड़ा मैं और उसका पल्ला खोल दिया। उस समय मुझे एक चीज की सख्त जरूरत थी - प्रकाश की। खिड़की खुलते ही मुझे पश्चिम में ढलता हुआ चांद नजर आया साफ स्वच्छ और शान्त।

चांद की हल्की पीली रोशनी कमरे में आ रही थी और वह काली विकराल छाया अब कमरे से गायब हो चुकी थी। मैं पलंग की ओर मुड़ा ही था कि मुझे ऐसा लगा कि सारा कमरा जोर से कांप उठा हो। फिर कमरे में चारो ओर से चिनगारियाँ जैसी गोलियाँ निकलने लगी हरी-पीली लाल-नीली। वे विभिन्न रंगो की प्रकाश गोलियाँ कमरे में द्रुतगति से चक्कर काटने लगीं। उसी स्थिति में दलान में पड़ी एक पुरानी कुर्सी अपने आप खिसक कर मेरी मेज के सामने आकर रूक गयी। फिर कुर्सी पर एक युवती का आकार प्रकट हो गया। वह जिन्दा थी मगर मौत की तरह भयानक — युवती काफी सुन्दर थी, पर उस समय उस चेहरे पर शोक, चिंता, पीड़ा और व्यथा की मिली-जुली छाया तैर रही थी। दूसरे क्षण मेज पर औरतों के प्रसाधन की तमाम वस्तुयें प्रकट हो गयी और वह रहस्यमयी युवती अपना श्रृंगार करने लगी। बीच-बीच में वह दरवाजे की ओर देख भी लेती थी। शायद वह किसी का इन्तजार कर रही थी। कमरे में अभी भी विभिन्न प्रकार की रंग-बिरंगी गोलियाँ चारों ओर तैर रही थी। कमरे का दरवाजा खुला तो नहीं - पर दरवाजे के पास एक दूसरी आकृति प्रकट हुई। वह आकृति किसी पुरुष की थी या किसी युवक की। वह पुराने जमाने की अंग्रेजों, की सी पोशाक पहने था। उसके चेहरे पर शोक का भाव था। लगा, जैसे वह

किसी गहरी चिंता में डूबा हुआ हो। वह धीरे-धीरे चलकर युवती के पास आया और हौले से पुकारा - मेहरुन्निसा ...।

उस युवक के मुँह से मेहरुन्निसा नाम सुनकर चौक पड़ा मैं।

युवक को देखते ही मेहरुन्निसा खड़ी हो गयी और उससे जा मिली। काफी देर तक दोनों आलिंगनबद्ध खड़े रहे। फिर गायब हो गये। और कमरे का वातावरण भी स्वच्छ हो गया।

उस रात इशरत महल में मैने जो कुछ देखा सुना और अनुभव किया था उससे मेरे मस्तिष्क में यह बात स्पष्ट हो गयी थी कि उसमें प्यासी आत्माओं की प्रबल इच्छा शक्ति का गहरा मायाजाल फैला हुआ है इसमें सन्देह नहीं। मगर उसके मूल में कारण क्या है - यही मेरी समझ में नहीं आ रहा था। इशरत महल दो सौ वर्ष पुराना था। नवाब साहब का वह खानदानी महल था। सम्भव है वह कारण उन्हीं के खानदान के इतिहास के किसी अंधेरे पन्ने में दबा, छिपा हो। मगर उनके खानदानी इतिहास का पता लगेगा कहाँ ?

उस दिन मैं स्टूडियो नहीं गया। देवी को खोजता रहा पूरा दिन। मगर वह मुझे नहीं मिला सोचा, शायद वह अपने गाँव भाग गया हो। अब मुझे इशरत महल में अकेला ही रहना था।

पूरे दस दिनों तक न कोई उल्लेखनीय घटना घटी और न तो कोई विशेष अनुभव ही हुआ मुझे। मैं आराम से रहा — मगर ग्यारहवें दिन जब मैं वापस लौटा - उस समय रात के बारह बज रहे थे। कृष्णपक्ष की रात थी सारी धरती और सारा आकाश अंधेरे के आगोश में डूबा हुआ था। एक गहरी खामोशी छायी हुई थी चारो तरफ। उस रात सड़क की बत्ती भी बुझी हुई थी।

मुख्य दरवाजे का ताला खोलकर मकान के भीतर जैसे ही घुसा - कि एकबारगी स्तब्ध रह गया मैं। भय और आतंक से रोमांचित हो उठा मेरा सारा शरीर।

न जाने कहाँ से भीतर खूब रोशनी हो रही थी और मकान के लम्बे-चौड़े आंगन में चारो ओर खून ही खून फैला हुआ था। बिल्कुल ताजा खून था वहाँ और उस ताजे और गर्म खून से सनी, लिपटी आधी दर्जन लाशें पड़ी हुई थी। जिनमें एक जवान और खूबसूरत औरत की भी लाश थी। सभी लाशों की गर्दनें कटी थी।

जरा आप ही सोचिये - उस अंधेरी और खामोश रात के समय खून में डूबी हुई आधी दर्जन लाशों को देखकर मेरी मानसिक हालत क्या हुई होगी ? मैं पागल नहीं हुआ बस यही गनीमत समझिये। मैं अभी आँख फाड़े और मुँह बाये वह वीभत्स और भयानक दृश्य देख ही रहा था कि तभी अचानक सामने वाली दीवार के पास से एक लम्बी चौड़ी काठी का व्यक्ति प्रकट हुआ। उसकी आँखे लाल हो रही थी। उसके चेहरे पर क्रोध और घृणा का भाव था। चेहरे से क्रूरता साफ टपक रही थी। उसके हाथ में नंगी तलवार थी - यह समझते देर न लगी मुझे। मैं वहाँ पत्थर का बुत बना खड़ा रहा। लगा कि किसी भी क्षण मैं बेहोश होकर गिर पड़ूँगा। सचमुच बेहोश हो ही गया मैं और चेतना लौटी तो मैं अपने आपको

कमरे में पलंग पर पड़ा पाया। मेहरुन्निसा मुझ पर झुकी हुई थी। खाँ साहब की बेटी मेहरुन्निसा बड़े प्यार से मेरे सिर को आहिस्ते-आहिस्ते सहला रही थी। मैं उसे देखकर आश्चर्य से भर उठा। वह कैसे और कब आयी वहाँ। मुझे होश में आया देखकर वह बोली कहिये कब कैसी तबीयत है आपकी ?

ठीक है - मैंने जवाब दिया और फिर पूछा.......आप कैसे आयीं यहाँ ?

मैं आऊँगी कहाँ से ? मैं तो यहीं इसी मकान में ही रहती हूँ - सहज भाव से बोली मेहरुन्निसा।

यह सुनकर आश्चर्य हुआ मुझे। आश्चर्य भरे ही स्वर में बोला - क्या कहती हैं आप ? ... आप इस भुतहे मकान में रहती हैं। मैंने तो उसके पहले आपको कभी देखा ही नहीं यहाँ इस मकान में ? कैसी बात करती हैं आप ?

मेरे प्रश्न का कोई जवाब नहीं दिया मेहरुन्निसा ने। सिर्फ मुस्कुराती रही। बड़ी रहस्यमयी लगी उसकी मुस्कुराहट उस समय मुझे। मैं उसके चेहरे की तरफ देखता रह गया।

दिन का उजाला फैल चुका था। मेहरुन्निसा की उपस्थिति सचमुच मेरे लिए रहस्यमयी थी। जब मैं बाथरूम से वापस लौटा तो देखा कि वह मेरे कमरे में नहीं थी मैं सोच में पड़ गया कि वह बिना बतलाये गई कहाँ। पूरा मकान देख डाला। मगर वह नहीं मिली मुझे। आंगन में भी गया। वहाँ भी न खून फैला था और न लाशे थी कहीं। एकाएक मेरा मस्तिष्क झनझना उठा। रात का सारा दृश्य घूम गया मेरे मानस पटल पर। निसन्देह भयानक प्रेतलीला थी वह। मेहरुन्निसा भी मेरे सन्देह की परिधि में थी। उसका व्यक्तित्व मुझे रहस्यमय लगा। मैं उसी हालत में दौड़ा-दौड़ा खाँ साहब के बंगले पर पहुँचा। वे सुबह का नाश्ता कर रहे थे। मेहरुन्निसा भी उनके करीब बैठी हुई थी।

मुझे देखते ही खाँ साहब बोले आइये-आइये। आपकी खोज का नतीजा क्या हुआ ? कुछ समझ में आया आपके ?

सारी कथा संक्षेप में सुना दी मैंने और अन्त में मेहरुन्निसा के आने की भी बात बतला दी। जिसे सुनकर बाप, बेटी दोनों एक साथ चौंक पड़े।

यह क्या कह रहे हैं शर्मा जी ! आप - खाँ साहब, अपने स्वर को जरा कठोर करके बोले - मेरी बेटी तो बिल्कुल सुबह से मेरे पास है। फिर वह क्यों जायेगी उस भुतहे मकान में ?

अब मेरे चौंकने की बारी थी। मुझसे कुछ बोला न गया कुछ कहा भी न गया। बस, मुँह बाये उन दोनों की ओर देखता भर रह गया मैं।

दिन पर दिन उस भुतहे मकान की रहस्यमयी गुत्थी उलझती जा रही थी। मेहरुन्निसा का अस्तित्व मेरे लिए और अधिक जटिल और रहस्यमय हो गया था। मेरे कमरे में मेरा सिर सहलाने वाली और मुझसे बाते करने वाली आखिर थी कौन ? अगर मेहरुन्निसा नहीं थी तो फिर कौन थी ?

उस रात फिर मुझे वही लम्बी-चौड़ी काठी वाला व्यक्ति मकान में दिखाई दिया। सिर झुकाये गमगीन-सा आंगन में खड़ा रहा था वह। मगर जैसे ही मेरी नजर उस पर पड़ी - वह एकाएक आंगन की दीवार में समा गया। यह देखकर एकबारगी मेरे मस्तिष्क में कौंध सा गया। दूसरे दिन मैंने उस दीवार को तुड़वाना शुरू किया क्योंकि मेरे ख्याल में उसी दीवार के पीछे उस भुतहे मकान का सारा रहस्य छिपा हुआ था। मेरा अनुमान सही निकला। दीवार के गिरते ही मुझे सामने लगभग चार फुट लम्बी लोहे की मोटी चादर दिखलाई दी, वह चादर दीवार में पेचों के जरिये कसी हुई थी। मैंने उसे भी खुलवाया। काफी मेहनत से खुली वह मोटी चादर। उसके हटते ही मुझे नीचे जाने के लिए सीढ़ियाँ दिखलायी दी। भीतर अंधेरा था और सीलन भरी बदबू भी थी। मैं टार्च की रोशनी की सहायता से सीढ़ियाँ उतर कर नीचे पहुँचा। नीचे मुझे एक लम्बा चौड़ा कमरा मिला। वह कमरा मुझे काफी रहस्यमय लगा। कमरे में एक बड़ी-सी लकड़ी की आलमारी थी - जो काफी पुरानी लग रही थी। मैंने उसे भी तुड़वाया। आलमारी में भी मुझे ईस्ट इण्डिया कम्पनी के जमाने के चाँदी के कुछ सिक्के और जड़ाऊ तलवार मिली, कमरे के एक कोने में एक बड़ा भारी लोहे का सन्दूक भी था। उसका ताला बड़ा भारी और मजबूत था। उसे तोड़ने में काफी परेशानी हुई। उस लम्बे चौड़े सन्दूक के खुलने पर मुझे उर्दू में लिखी हुई अरबी तंत्र-मंत्र की काफी पुरानी किताबें, और सुनहरे फ्रेम में जड़ी हुई दो तस्वीरें मिली। उन्हीं के साथ चमड़े में लिपटा हुआ एक दस्तावेज भी मिला।

इन सब पुरानी वस्तुओं के अलावा सबसे आश्चर्यजनक और कौतुहल पूर्ण जो वस्तु मुझे उस सन्दूक में मिली - वह थी स्फटिक की एक तश्तरी। लगभग एक फुट व्यास की वह तश्तरी गहरी भी थी। जिसमें पीले रंग का कोई स्वच्छ द्रव भरा हुआ था। जिसमें कम्पास की तरह कई सुइयाँ तैर रही थी। जिनके चारो तरफ ग्रह-नक्षत्रो के चित्र खुदे हुए थे। सूइयाँ उन पर तेजी से घूम रही थी। मैंने उस तश्तरी को छूना चाहा। मगर जैसे ही उसका स्पर्श किया, उसी क्षण मेरा सारा शरीर रोमांचित हो उठा और सिर सनसनाने लगा और उसी के साथ मुझे बिजली जैसा झटका लगा — और स्फटिक की तश्तरी टूट गयी और उसमें का द्रव और कम्पास की सुइयाँ भी चारों ओर बिखर गयी और उनके बिखरते ही कमरे में भूचाल सा आ गया। दीवारें कांप उठी।

मैं उन पुस्तकों दस्तावेज और सिक्के लेकर उस गुप्त कमरे के बाहर निकल आया। साथ में उन तैल चित्रों को भी लाना नहीं भूला उर्दू और अरबी का ज्ञान मुझे था। इसलिए उन प्राचीन तंत्र की पुस्तकों और चमड़े की खोल में लिपटे उस दस्तावेज को पढ़ने और समझने में दिक्कत नहीं हुई।

वे पुस्तके अरबी और फारसी तंत्र-मंत्र और ताबीजों के अलावा काला जादू, मैली विद्याओं, टोना टोटका आदि की हस्त लिखित प्राचीन व दुर्लभ पुस्तकें थी, इसमें सन्देह नहीं। उन तांत्रिक पुस्तकों का लेखक कोई औलिया फकीर था, जो कभी अरब होता हुआ हिन्दुस्तान आया था। और हमेशा के लिए मुलतान में ठहर गया था। कहने की आवश्यकता नहीं, आज से करीब दो सौ वर्ष पहले मुलतान अरबी और फारसी तांत्रिकों का गढ़ था।

वह औलियाँ प्राय: खामोश रहता था और हर समय अपनी तांत्रिक साधना में डूबा रहता था। उसने कुछ दिनों बाद अपना एक शिष्य बनाया। जिसका नाम था शाकीर। शाकीर पक्का शार्गिद साबित हुआ। वह खूब सेवा टहल करता अपने गुरु का। गुरु भी अपने लड़के की तरह मानता अपने शिष्य को। ऐसी स्थिति में जो परिणाम सामने आना चाहिए - वही आया। शाकीर एक अच्छा साधक बन गया। औलिया की सारी तांत्रिक विद्या उसने धीरे-धीरे सीख ली। मगर तांत्रिक साधना और तांत्रिक विद्याओं ने शाकीर में विनम्रता, सहिष्णुता और विवेक के बजाय अहंकार भर दिया। अपने आपको महा शक्तिमान समझने लगा वह। अपनी शक्ति और अपने सामर्थ्य के सामने वह किसी को कुछ न समझता। दस्तावेज के अनुसार उसे एक परी सिद्ध थी।

जो काफी शक्तिशाली थी। वह शाकीर के इशारे पर कोई भी अच्छा या बुरा काम कर सकती थी। उसी का बेहद घमण्ड था शाकीर को। औलिया के मरने के बाद तो शाकीर का अहंकार और घमण्ड और बढ़ गया। तभी उस पर नजर पड़ी मुलतान के एक जमींदार की। जिसका नाम था कुरबान अहमद — कुरबान अहमद, शाकीर की रूहानी ताकत से भली-भाँति परिचित था। एक दिन उसने शाकीर को अपने पास बुलाया अपनी एक कोई बहुत बड़ी समस्या उसके सामने रखी। शाकीर ने परी की सहायता से उस जटिल समस्या को हल कर दिया, जिसके बदले जमींदार ने उसे बहुत सारे सोने-चाँदी के सिक्के और जड़ाऊ गहने दिये। और याददाश्त के तौर पर एक जड़ाऊ तलवार भी भेंट की। उस जमाने में वह लाखों की सम्पत्ति थी। मगर शाकीर उससे खुश नहीं हुआ। वह तो मेहरुन्निसा को चाहता था। कुरबान अहमद की इकलौती बेटी मेहरुन्निसा को। उसकी खूबसूरती और हुस्न ने शाकीर के मन की शान्ति छीन ली थी। वह हर हालत में मेहरुन्निसा को पाना चाहता था। मगर वह जमींदार अपनी इकलौती बेटी को उसे देना नहीं चाहता था। जब किसी भी प्रकार वह तैयार नहीं हुआ तो शाकीर ने अपने इल्म से काम लिया।

एक दिन जब रात के अंधेरे में सारा मुलतान शहर डूबा हुआ था और लोग गहरी नींद में बेखबर सोये हुये थे, उसी वक्त दौड़ती-हांफती मेहरुन्निसा आयी और शाकीर की चौड़ी छाती से लिपट गयी। और फिर अपने आपको शाकीर के हवाले कर दिया। शाकीर तो यही चाहता था। उसकी मुराद पूरी हो गयी थी। वह रूका नहीं, उसी रात मेहरुन्निसा को लेकर सीधा कलकत्ता के लिये रवाना हो गया। वह मेहरुन्निसा को इस शहर से बहुत दूर ले जाना चाहता था ताकि उसके बाप का साया उस पर न पड़े। उस वक्त शाकीर की उम्र चालीस के लगभग थी। जबकि मेहरुन्निसा ने सोलह बसंत ही पार किया था। निश्चय ही उस वक्त उसकी पवित्र आत्मा रूहानी दुनिया की किसी नापाक ताकत के गिरफ्त में थी। वर्ना वह कभी भी उस अधबूढ़े और बदसूरत तांत्रिक को अपना तन-मन अर्पित न करती।

खैर !

शाकीर कलकत्ते में पूरी तरह जम गया। उसकी चमत्कारी तंत्र विद्या ने उसे शौहरत भी दी और धन दौलत भी दिया। उसने मेहरुन्निसा से शादी की और उसके लिए हवेलीनुमा महल बनवाया। जिसका नाम रखा इशरत महल —

मगर जो होना था - वही हुआ। एक दिन शाकीर की इल्म छन्न से टूट कर बिखर गयी और जब मेहरुन्निसा को सच्चाई का एहसास हुआ तो मन मसोस कर रह गयी। इसके अलावा और चारा ही क्या था।

उन्हीं दिनों एक अंग्रेज युवक शाकीर के यहाँ आने जाने लगा था। उसका नाम था डफ। डफ काफी सुन्दर स्मार्ट और सजीला नौजवान था। सबसे अधिक दिलकश थी उसकी भूरी आँखे - जिसमें एक अजीब सा सम्मोहन भरा था।

पहली ही मुलाकात में दोनों एक दूसरे को अपना दिल दे बैठे। मेहरुन्निसा को एक अपनत्व और प्यार भरे दिल की और साथ ही किसी मर्द के मजबूत सहारे की जरूरत थी उस समय। दोनों उसे एक साथ ही मिल गया। डफ ने उसके सारे सपने पूरे कर दिये।

मगर शाकीर से उन दोनों प्रेमियों का प्यार ज्यादा दिन छिपा न रह सका। वह हर समय शराब के नशे में डूबा रहता था और एक दिन जब वह रोज की तरह शराब की नशे में गले तक डूबा हुआ था - दोनों को प्यार करते हुए देख लिया उसने। ऐसी नाजुक स्थिति में जो घटना घटनी चाहिये वह दूसरे क्षण घट गयी। शाकीर की आँखों में खून उतर आया। वह लपक कर मेहरुन्निसा के बाप का दिया हुआ जड़ाऊ तलवार उठा लाया और उसने एक ही साथ दोनों का कत्ल कर दिया। दोनों प्रेमियों का खून से डूबा हुआ जिस्म जमीन पर गिर कर एक साथ छटपटाया और एक ही साथ हमेशा-हमेशा के लिए शान्त भी हो गया।

डफ का बाप ब्रिटिश सरकार के किसी उच्चपद पर था। जब उसे मालूम हुआ कि उसके बेटे का प्यार के मामले में कत्ल हो गया है और कत्ल करने वाला शाकीर है तो एकबारगी बौखला गया वह।

वह चाहता तो शाकीर को तबाह कर देता- मगर वह उसकी रूहानी ताकत से भली-भांति परिचित था। इसलिए वह खामोश हो गया। पर डफ के दोस्तों ने शाकीर से बदला लेने की ठान ली। डफ के दोस्तों में कुछ हिन्दू भी थे- जिनके लिए डफ ने बहुत कुछ किया था। इसलिए वे अधिक उतावले हो रहे थे।

आखिर वे हिन्दू दोस्त एक साथ निहत्थे ही शाकीर के मकान में घुस गये और मारपीट करने लगे। शाकीर था तो अकेला, मगर उसके हाथ में तलवार थी। तलवार के वार के सामने निहत्थे युवक भला कब तक ठहर पाते। शाकीर के हाथों सभी मारे गये। इशरत महल का आंगन लाशों से पट गया।

शाकीर इतने से ही शान्त नहीं हुआ। दस्तावेज के अन्त में लिखा था कि उसने अपने इल्म के जोर से मेहरुन्निसा और डफ के अलावा उन सभी युवकों की आत्माओं को इशरत महल में कैद कर दिया ताकि वे जिन्दगी के लिए हमेशा प्यासी रहें और हमेशा भटकती रहें इशरत महल में। यह भी लिखा था कि जब तक स्फटिक की तश्तरी के कम्पास की सुइयाँ घूमती रहेंगी- तब तक वे आत्मायें इशरत महल में कैद रहेगी और उनकी मुक्ति न होगी।

मगर यह काम शाकीर के लिए महंगा पड़ा। कुछ दिनों बाद, एक रात वे सभी प्यासी

आत्मायें एक साथ शाकीर पर टूट पड़ी और उसका गला घोंट दिया। सवेरे उसकी लाश आंगन में पड़ी पायी गयी। उसकी आँखे और जीभ बाहर को निकली हुई थी और चेहरे पर भय का भाव था। खैर कहने की जरूरत नहीं, तभी से इशरत महल भुतहा हो गया।

उन दो तस्वीरों में पहली शाकीर की तस्वीर थी। उसका चेहरा बड़ा भयानक और प्रभावशाली था। यदि किसी सांप को इन्सान की शक्ल से बदल दिया जाय तो वह बहुत कुछ शाकीर जैसा लगेगा। उसका जबड़ा चौड़ा था और नीचे की ओर लटका था। उसकी आँखे लम्बी और गहरी थी और नीलम जैसी चमक थी। उसकी आँखो के भाव को देखकर लगता था कि अपनी शक्ति पर उसे जैसे बहुत विश्वास हो।

दूसरी तस्वीर देखते ही एकबारगी चौंक पड़ा मैं। पहले तो मुझे विश्वास ही नहीं हुआ। काफी देर तक गौर से देखता रहा मैं।

वह मेहरून्निसा की तस्वीर थी। मगर उसमें जो शक्ल थी वह बिल्कुल खाँ साहब की बेटी मेहरून्निसा से मिलती-जुलती थी। वही रूप-रंग और वही नाक-नक्श। कहीं कोई फर्क नहीं। लगा कि जैसे खाँ साहब की बेटी मेहरून्निसा के ही सामने बैठकर चित्रकार ने उस चित्र का निर्माण किया हो।

उस चित्र को देखकर मेरी एक शंका का समाधान हो गया। वह यह कि मैंने उस दिन अपने कमरे में जिस मेहरून्निसा को देखा था और जिससे बातें की थी, वह खाँ साहब की बेटी मेहरून्निसा नहीं बल्कि शाकीर की बीबी मेहरून्निसा थी। खाँ साहब को सारी कहानी सुनाने के बाद जब अन्त में यह बात बतलाया तो वे एकबारगी स्तब्ध रह गये।

मुझे इस बात की भारी प्रसन्नता थी कि मेरे हाथ अनायास अरबी और फारसी तंत्र-मंत्र और जादू-टोना की हस्तलिखित प्राचीन पुस्तकें लग गयी थी। वास्तव में तंत्र-मंत्र की वे अद्भुत पुस्तकें थी इसमें सन्देह नहीं।

इन तमाम घटनाओं के घटे एक लम्बा अर्सा गुजर चुका है। इशरत महल की वे तमाम प्यासी आत्मायें मुक्त हुई या नहीं- यह तो मैं नहीं बतला सकता। लेकिन तबसे फिर कभी कोई भयानक घटना नहीं घटी। खाँ साहब ने इशरत महल को तुड़वाकर नये सिरे से उनका निर्माण कराया और उसका नाम रखा मेहरून्निसा महल।

अध्याय १६
कौन थी वह

सायंकाल का समय ! नित्य की भांति मौन साधे बैठा था काशी के लालीघाट की धूल भरी आड़ी तिरछी सीढ़ियों पर मैं ।

उसी समय सामने से सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर आते हुए दिखाई दिये रमाशंकर शुक्ल । शुक्लजी मेरे मित्र थे और उन दिनों काशी के एक विशिष्ट पाठशाला में संस्कृत के अध्यापक थे । मुझ पर दृष्टि पड़ते ही अपनी भारी आवाज में बोले- अरे, भाई शर्माजी ! सुना आपने कुछ, सारनाथ (वाराणसी) में पिछले छः-सात दिनों से एक महात्मा ठहरे हुए हैं, नाम है दिव्यगन्ध । सिक्किम में उनका छोटा सा आश्रम है । बड़े उच्चकोटि के सिद्ध महात्मा है वह, इसमें सन्देह नहीं । थोड़ा रूककर आगे बोले- शुक्लजी दो दिन सत्संग में रहा मैं । अद्‌भुत चमत्कारी जीव हैं स्वयं ।

एक सांस में ये सारी बातें बतला दी मुझे शुक्ल जी ने । वे मेरे स्वभाव से भलीभांति परिचित थे और यह भी अच्छी तरह जानते समझते थे कि गुप्त व रहस्यमय ढंग से निवास करने तथा प्रच्छन्न रूप से संचरण-विचरण करने वाले सिद्ध साधकों और योगी महात्माओं की खोज में बराबर रहता हूँ मैं —

दूसरे ही दिन गया मैं सारनाथ — राजा, योगी और वेश्या इन तीनों के यहाँ कभी भी खाली हाथ नहीं जाना चाहिए । इसलिए थोड़ा सा फल और रसगुल्ला ले लिया था मैंने रास्ते में । जब मैं सारनाथ पहुँचा उस समय भगवान तथागत के उस रमणीक और शान्त वातावरण में सांझ की स्याह कालिमा बिखरने लगी थी और गूंजने लगा था, 'बुद्धं शरणं गच्छामि...' का स्वर । महात्मा दिव्य गन्ध जहाँ ठहरे हुए थे उस स्थान को खोजने में कोई कठिनाई नहीं हुई मुझे । बड़ी सरलता और बड़ी सहजता से मुझे दर्शन लाभ हुआ उस महापुरुष का ।

मझोला कद, गौर वर्ण, मुख पर प्रखर आध्यात्मिक तेज और परमशान्ति की आभा । शरीर पर कषाय वस्त्र गले में झूलती रुद्राक्ष की कई मालाएँ और सदैव स्थिर रहने वाली होठों पर मन्द-मन्द मुस्कान । अबोध शिशु की जैसी आँखें होती है, वैसी ही कामना वासना आदि से रहित शून्य निर्विकार आँखें, और जिनमें थी एक अलौकिक चमक । यह था महात्मा दिव्यगन्ध का आध्यात्मिक व्यक्तित्व, जिसे देखते ही प्रभावित और साथ ही सम्मोहित सी हो गयी थी मेरी आत्मा एकबारगी ।

छोटा सा कमरा, जिसके एक ओर तख्त लगा था और उसी तख्त पर बैठे हुये थे शान्त मुद्रा में महात्मा दिव्यगन्ध । झुककर चरण स्पर्श किया और बगल में फल मिठाई रख दिया मैंने । जमीन पर चटाई बिछी हुई थी । जिस पर दो सज्जन बैठे हुए थे चुपचाप मौन साधे । मैं भी बैठ गया चटाई पर एक ओर । उस छोटे से कमरे में एक विचित्र-सी शान्ति का अनुभव हुआ मेरी आत्मा को । वह शान्ति कैसी थी बतला नहीं सकता मैं ।

कुछ देर बाद दोनों व्यक्ति महात्मा का चरण स्पर्श कर चले गये तो मैंने अपना परिचय देते हुए अपनी कंटकाकीर्ण आध्यात्मिक यात्रा की व्यथा भरी कथा सुना डाली शुरू से अन्त तक की उस परम साधक को और फिर अन्त में कहा- न जाने किस अज्ञात प्रेरणा के वशीभूत होकर मेरी आत्मा चल पड़ी है अध्यात्म के तिमिराच्छन्न मार्ग पर, स्वयं उससे अपरिचित हूँ मैं और इस रहस्य से भी अनभिज्ञ हूँ कि कौन सा उद्देश्य लेकर जन्म लिया है इस संसार में मेरी आत्मा ने। कौन सा कार्य सम्पादित कराना चाहता है वह अज्ञात मेरी आत्मा से। कुछ समझ में नहीं आ रहा है प्रभु। आप ही मेरा मार्गदर्शन कर सकते हैं इसमें सन्देह नहीं। मेरी बात ध्यान से सुनते रहे महात्मा दिव्यगन्ध, फिर काफी देर तक अपनी शून्य दृष्टि से अपलक देखते रहे वह मेरी ओर। न जाने क्या खोजती रही उनकी प्रखर और जलती हुई आँखें मुझमें। समझ न सका मैं उस समय। लेकिन हाँ ! न जाने कैसा विचित्र अनुभव हो रहा था, मेरे अन्तर्मन में उन क्षणों, बतलाया नहीं जा सकता। उसी समय न जाने किधर से एक छोटी सी बालिका आकर सामने खड़ी हो गयी महात्मा के। १०-१२ वर्ष की रही होगी वह बालिका। सांवला रंग था, गोल चेहरा था, लेकिन अत्यन्त आकर्षक और मन को मोह लेने वाली, बड़ी-बड़ी भौराली आँखें और रक्ताभ होठ। भद्र महिलाओं की तरह लाल चौड़े पाढ़ की रेशमी साड़ी पहनी हुई थी वह। बड़ा अचरज हुआ मुझे स्त्रियों की तरह साड़ी में लिपटी हुई देखकर उसे। सबसे सुन्दर लगा मुझे उसके चौड़े ललाट पर लगा ध्रुवतारा जैसा चमकता हुआ सिन्दूर का गोल टीका। हे भगवान ! कौन है यह अद्‌भुत कन्या ?

सामने रखी हुई फल मिठाई की ओर उंगली से संकेत कर महात्मा उस बालिका से बोले- ले जा इसे। इसी सबके लिए आयी है न तू। जा भाग जा।

उस अपरिचित कन्या ने एक बार मेरी ओर देखा और फल, मिठाई हाथ में लेकर चली गयी बाहर वह।

बालिका के चले जाने के बाद महात्मा दिव्यगन्ध मन्द स्वर में बोले- जिस अज्ञात की बात तुमने कही है वह विश्वातीत और भावातीत है, उसे भगवान श्रीकृष्ण भी न समझ सके। प्रकृति के नियम और नियति के सिद्धान्तों से भी परे है वह। वर्तमान में तुमको बस इतना ही समझ लेना चाहिए कि वह अज्ञात अध्यात्म से संबंधित तिमिराच्छन्न और रहस्यमय सत्यों को तुम्हारे द्वारा प्रकाश में लाना चाहता है और यह तभी सम्भव है जब तुम अपने आपको और अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को समर्पित कर दोगे उसे समझे।

यह सुनकर कुछ बोला न गया और न तो कुछ कहा ही गया मुझसे। उठकर चरण स्पर्श किया उस परम पुरुष का और वापस लौट आया घर।

हे भगवान ! यह क्या ? कमरे का दरवाजा खोलते ही जिस वस्तु पर मेरी दृष्टि पड़ी उसे देखकर एकबारगी स्तब्ध और आश्चर्यचकित रह गया मैं। पाषाणवत सा हो गया मेरा पूरा शरीर अपने स्थान पर।

सामने मेरे मेज पर वही फल और मिठाई रखी हुई थी जिसे लेकर गया था मैं महात्मा दिव्यगन्ध का दर्शन करने के लिये। कैसे हो गया यह सब। कौन रख गया मेरे कमरे में फल

मिठाई ? कमरे का दरवाजा तो बाहर से बन्द था, ताला भी लगा हुआ था। वह बालिका तो मेरे सामने ही ले गयी थी फल मिठाई। पूरे छः मील का रास्ता चलकर वह यहाँ पहुँच ही नहीं सकती, असम्भव है, और फिर मेरा मकान भी तो देखा नहीं था उसने और तब फिर... कौतूहल और जिज्ञासा के मिले जुले भाव से भर उठा था मेरा मन। इस रहस्यमयी घटना को जानने समझने के लिये व्याकुल हो गया मैं।

दूसरे दिन बिल्कुल सवेरे उठा और नहा धोकर सारनाथ के लिये चल पड़ा मैं। दिव्यगन्ध मुझे देखकर मुस्कराये। चरण स्पर्श किया मैंने। उनके एक शिष्य से ज्ञात हुआ कि वे अगले दिन प्रस्थान करने वाले हैं सिक्किम के लिए। यह सुनकर विह्वल हो उठा एकबारगी मैं। ऐसे सिद्ध साधकों का दर्शन लाभ कई जन्मों के पुण्य उदय होने पर ही होता है। इतना ही नहीं उनके सान्निध्य का और उनके साथ आध्यात्मिक सत्संग का अवसर भी उसी को प्राप्त होता है- जो उसका अधिकारी है। अपने आपको संभाला न गया मुझसे और लोभ भी संवरण न कर सका मैं उनके सान्निध्य का। जब मैंने अपने विचारों को व्यक्त करते हुए संकोच भरे स्वर में कहा- बाबा ! आपकी सिक्किम यात्रा में मैं भी चलना चाहता हूँ सेवाभाव से आपके साथ। आज्ञा दीजिये आप मुझे।

मेरी बात सुनकर पहले महात्मा दिव्यगन्ध मुस्कराये और फिर सिर हिलाकर स्वीकृति दे दी अपनी उन्होंने। गद्गद् हो उठी मेरी आत्मा और प्रसन्न हो उठा मन और उसी प्रसन्नता में भूल गया मैं बाबा से यह पूछना कि कैसे पहुँच गयी मेरे कमरे में फल मिठाई ? इसी जिज्ञासा और कौतूहल को शान्त करने के लिये ही तो गया था मैं सारनाथ।

सिक्किम के उत्तर में तिब्बत, पश्चिम में नेपाल ओर पूरब में भूटान स्थित है। तिस्ता और रिंगित ये दो पहाड़ी नदियाँ सिक्किम को भारतीय राज्य पश्चिम बंगाल से अलग करती है। घने जंगलों और हिमालय की हिम मण्डित श्रृंखलाओं के फलस्वरूप सिक्किम का प्राकृतिक वातावरण अति सुखद, शान्त और शीतल प्रतीत हुआ मुझे। पूरे छः दिन की पर्वतीय यात्रा के बाद साधक दिव्यगन्ध और उनके शिष्यों के साथ पहुँचा मैं चुंगधांग ! तिस्ता नदी का उद्गम स्थल है चुंगधांग ! बड़ा ही मनोहारी सुन्दर रमणीक और प्राकृतिक छटाओं से भरा हुआ था चुंगधांग। चारो ओर घने जंगल और उसके बाद हिमाच्छादित पर्वत शिखरों की श्रृंखलायें और उन श्रृंखलाओं के ऊपर धुनी हुई रुई की तरह आकाश में तैरते हुए बादलों के छोटे-बड़े टुकड़े। सांझ की स्याह कालिमा बिखरी हुई थी चुंगधांग के शान्त और नीरव वातावरण में लेकिन डूबते हुए सूरज के प्रकाश के पीले धब्बे अभी भी पर्वत शिखरों पर चमक रहे थे।

तिस्ता के उद्गम के ठीक ऊपर झोपड़ी की तरह एक छोटी सी कुटिया थी महात्मा दिव्यगन्ध की। कुटिया के चारो ओर हरे भरे पेड़ थे और थी विभिन्न प्रकार के रंग-बिरंगे फूलों की क्यारियाँ।

कुटिया के भीतर मिट्टी के छोटे-छोटे चार कमरे थे। दरवाजा किसी में नहीं था। कुटिया के सामने मौलसरी का काफी बड़ा वृक्ष था, जिसके नीचे एक काफी लम्बा-चौड़ा काले पत्थर का चबूतरा था जिस पर सायंकाल बैठकर चिन्तन-मनन करते थे नित्य दिव्यगन्ध। मेरे

ठहरने की व्यवस्था कुटिया के ही एक कमरे में हो गयी। मुझे इस बात का घोर आश्चर्य हुआ कि कोई भी साधक या योगी रात्रि के समय अपने निकट किसी को भी रहने नहीं देता। वह रात्रि का होता है और रात्रि उसकी होती है। इसका क्या रहस्य है यह मैं नहीं जानता। लेकिन उस महान साधक और योगी को किसी भी प्रकार की आपत्ति नहीं थी- अपने निकट रात्रि में मुझे रखने में। प्रसन्न था मैं और उत्साहित भी। लेकिन आश्चर्य की बात तो यह थी कि इतने निकट होते हुए भी मुझसे बहुत ही कम बातें करते थे और प्राय: मौन ही रहते थे महात्मा दिव्यगन्ध। कभी कदा चबूतरे पर जब वे बैठे हुए होते थे उस समय साधना संबंधी चर्चा करते वह मुझसे, वास्तव में दिव्यगन्ध का व्यक्तित्व वहाँ उस स्थान पर अत्यन्त रहस्यमय प्रतीत हुआ मुझे। प्राय: समाधि में ही रहते थे दिव्यगन्ध। उस दिन भी नित्य की भांति समाधि में लीन थे वह। रात्रि का पहला प्रहर था सम्भवत:। पूर्णमासी का चांद पहाड़ों के ऊपर चढ़ आया था उस समय। हिमाच्छादित पहाड़ों और जंगलो में उसकी धवल चांदनी बिखरी हुई थी। शान्त और निस्तब्ध वातावरण में एक विचित्र-सी नीरवता और एक विचित्र-सी उदासी उतर आयी थी जैसे। नदी के उद्गम स्थान पर एक छोटा-सा झील था जो काफी गहरा था और उसका पानी अत्यन्त निर्मल था। उसी झील के किनारे चुपचाप बैठा हुआ था मैं गालों पर हाथ धरे। चाँद काफी ऊपर आ गया था अब। निस्तब्धता भी पहले से अधिक गहरी हो गयी थी। चारो ओर सांय-सांय हो रहा था। निश्चय ही अधिक हो गयी थी रात। एकाएक मेरी दृष्टि उठ गयी आकाश की ओर। वहाँ एक विचित्र और अविश्वसनीय दृश्य देखा मैंने। नीले निरभ्र आकाश में बादलों के टुकड़े तैर रहे थे और उन्ही के बीच से धीरे-धीरे एक छायाकृति उतर रही थी नीचे की ओर। आश्चर्यचकित भाव से देखने लगा मैं उस रहस्यमयी छायाकृति को उतरते हुए और जब वह झील के उस पार धरती पर उतर गयी तो उसका रूप प्रकट हुआ चांदनी में।

हे भगवान्! वह तो एक नवयुवती थी, अति सुन्दर और अति लावण्यमयी। उस बियाबान चांदनी रात में अविश्वसनीय रूप से आकाश से धरती पर अवतरित होने वाली उस गौरांगी नवयुवती की उपस्थिति अत्यन्त रहस्यमय लगी मुझे। भय मिश्रित कौतूहल और जिज्ञासा के भाव से भर उठा मेरा मन। कौन थी वह? देवकन्या या कोई अप्सरा।

लम्बा कद, इकहरी देह, बर्फ की तरह बिल्कुल सफ़ेद शरीर का रंग, थोड़ा लम्बा चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें, ऊँचा चौड़ा मस्तक, और उस मस्तक पर ध्रुव तारे की तरह चमकती हुई बिंदिया, सुन्दर गले में हार झूल रहा था जिसमें जड़े हुए कीमती रंग-बिरंगे नग चांदनी में अपनी अद्भुत छटा बिखेर रहे थे। संगमरमरी काया पर साड़ी की तरह एक झीना सा पारदर्शी रेशमी वस्त्र था दूध जैसा धवल, आश्चर्यजनक ढंग से इस प्रकार आकाश से धरती पर आना उसे किसी अन्य लोक के प्राणी होने का संकेत कर रहा था। युवती कुछ क्षण तक झील के किनारे खड़ी रही स्थिर भाव से और फिर उसने चारो ओर देखा सिर घुमाकर। जैसे निर्भय हो जाना चाहती हो वह। एक अनिर्वचनीय अनुभूति हो रही थी मुझे उस समय और उसी विलक्षण अवस्था में उस नवयुवती को अपलक देखता रहा मैं न जाने कब तक। एकाएक उस नीरव शान्त वातावरण में एक चीख गूंज उठी और उसी के साथ भंग हो गयी मेरी तन्मयता भी। निश्चय ही वह चीख उसी रहस्यमयी युवती की थी इसमें सन्देह नहीं।

संभवतः उसकी दृष्टि मुझ पर पड़ गयी थी और देख लिया था उसने मुझे। उस समय उसकी झील जैसी आँखों में आश्चर्य, विस्मय, भय और कौतूहल के मिले-जुले भाव स्पष्ट झलक रहे थे। काफी देर तक देखती रही उसी अवस्था में मुझे और फिर धीरे-धीरे मेरी ओर बढ़ने लगी और मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी वह चुपचाप — एकबारगी सहम-सा गया मैं। दूसरे क्षण किसी अनर्वचनीय सुगन्ध से भर गया मेरा नासापुट। न जाने किस भाव से मेरी ओर देख रही थी वह, मेरी समझ में नही आया। विचित्र थी उसकी भाव भंगिमा उस समय।

आखिर रहा न गया मुझसे पूछ ही बैठा मैं, कौन हैं आप और कहाँ से आयी हैं आप इस बियाबान अरण्य प्रदेश में...। मेरा प्रश्न सुनकर वह नवयुवती पहले हल्के से मुस्करायी फिर उसके बाद पलकें झपकाकर कोमल स्वर में बोली- वैश्वानर लोक की सुन्दरी हूँ मैं। योगियों का भाव राज्य है वह। समाधि की उच्च अवस्था में प्रवेश करते हैं उसमें योगीगण। सचमुच वैश्वानर लोक अत्यन्त रमणीक और अद्‌भुत छटाओं से भरा हुआ एक सुरम्य लोक है। वहाँ भाव ही प्रधान है। आनन्द मग्न रहते हैं योगीगण वहाँ के अपार्थिव वातावरण में। उस सुन्दरी का स्वर अत्यन्त मधुर, कोमल और स्निग्ध था। लगा जैसे उसके मुख से शब्दों के रूप में लाजवन्ती के नन्हें-नन्हें फूल झर रहे हों। थोड़ा रूककर वह कोमलांगी आगे बोली- अब मैं आपको अपना पूरा परिचय दे ही दूँ- मैं सिद्धि हूँ जिसको प्राप्त करने के लिये मनुष्य योग की कठिन साधना करता है।

यह सुनकर घोर आश्चर्य हुआ मुझे। योग सिद्धियों के विषय में बहुत कुछ पढ़ा और सुना था, इसके अतिरिक्त योग की कई सिद्धियों का चमत्कार भी देखा था लेकिन कभी कोई योगसिद्धि लावण्यमयी नवयुवती के रूप में साकार होकर प्रकट होगी मेरे सामने, इसकी कभी कल्पना भी नहीं की थी मैंने, सपने में भी नहीं।

सम्भवत: मेरी बात समझ गयी वह रूपांगना। अपने आप हँस पड़ी एकबारगी वह। सचमुच बड़ी ही स्निग्ध और रस भरी हँसी थी लगा जैसे किसी मन्दिर की कई घण्टियाँ एक साथ बज उठी हो। खूब हँस लेने के बाद उसी प्रकार रस पगे स्वर में वह बोली- योग साधना मार्ग का चरम प्राप्तव्य है 'भावातीत अवस्था', जिसे योग की भाषा में कहते हैं भावातीत समाधि और योगीगण उस परमसमाधि की अवस्था में आनन्दमग्न रहते हैं वैश्वानर लोक में। भावातीत समाधि वास्तव में आत्मा की समाधि है। आत्मा का जो आनन्द है वह आनन्द उसे उपलब्ध होता है उस समाधि के माध्यम से वैश्वानर लोक में।

वैश्वानर लोक तीन प्रकार की आत्माओं का विचरण स्थान है। पहली वे आत्मायें हैं जो ऊपर के लोकों से भ्रमण करने के उद्देश्य से वहाँ आती है और कुछ काल व्यतीत कर वापस अपने लोक को लौट जाती है। दूसरी वे आत्मायें हैं जो वैश्वानर लोक की स्थायी निवासिनी हैं और तीसरी वे आत्मायें हैं- जो मानवीय होती हैं और भावातीत अवस्था में प्रवेश करती है उस परम दिव्य लोक में। स्थायी आत्मायें अपने आपमें स्वतंत्र होती है। उनकी गति सर्वत्र हैं। योगसिद्ध महात्मागण अपनी योगसिद्धि के बल पर उन्हें आवश्यकता पड़ने पर पार्थिव शरीर में साकार रूप भी प्रदान करते हैं।

मुझे ही ले लो, अपनी आँखों को झपकाकर नवयुवती आगे बोली- वैश्वानर लोक की स्थायी निवासिनी हूँ मैं। बाबा ऐसा ही करते हैं मेरे साथ। अपनी योग सिद्धि के बल पर बाबा मुझे बुला लेते हैं और इस प्रकार प्रकट हो जाती हूँ मैं साकार रूप में और फिर जो वह आज्ञा देते हैं उसको करना पड़ता है मुझको लेकिन यह रूप स्थायी नहीं है। इस शरीर का इस रूप का और इस लावण्यमय यौवन का निर्माण तो बाबा के योग सिद्धि बल से हुआ हैं जो कभी भी अपार्थिव सत्ता में विलीन हो सकता है।

यह सब सुनकर अवाक् और स्तब्ध रह गया मैं एकबारगी। अचानक कुछ कौंध सा गया मेरे मस्तिष्क में। थोड़ा सहमकर मैंने पूछा- मेरी एक कौतूहल भरी जिज्ञासा है। क्या आप उसका कर सकती हैं समाधान ?

नवयुवती बोली- बतलाओ कौन सी है जिज्ञासा ?

सारनाथ वाली घटना को बतलाते हुए मैंने अन्त में कहा- वह घटना सचमुच अत्यन्त आश्चर्यजनक कौतूहलपूर्ण और अविश्वसनीय है मेरे लिए।

इसमें आश्चर्य और अविश्वास की क्या बात है- नवयुवती सरल भाव से और सहज ढंग से बोली- वह कन्या की जो आत्मा थी- वह वैश्वानर लोक की थी। जिसे पार्थिव रूप दिया था बाबा ने कुछ क्षण के लिए। बाबा किसी का दिया कुछ भी स्वीकार नहीं करते। हाँ या ना भी नहीं करते और इसीलिये आपकी वस्तु सिद्धि निर्मित्त बालिका द्वारा आपके स्थान पर भिजवा दिया उन्होंने क्षण मात्र में। समझ लीजिये ऐसे सभी कार्य होते हैं योग सिद्ध महापुरुषों के।

यह सब अविश्वसनीय, अलौकिक बातें सुनकर विचित्र-सी हो रही थी मानसिक स्थिति। उस हिममय शान्त निस्तब्ध अरण्य प्रान्त में एक अज्ञात सा भय छाने लगा था मेरे मन मस्तिष्क पर। किसी प्रकार अपने आपको संभाल कर मैंने पूछा- बाबा ने क्या आज्ञा दी है आपको ? उनके किस प्रयोजन की सिद्धि के लिए पार्थिव कायाधारण करना पड़ा आपको ? मेरी बात सुनकर नवयुवती बोली- वैश्वानर लोक को सिद्ध लोक भी कहते हैं। सिद्धों की कई मण्डलियाँ हैं वहाँ। उन मण्डलियों में हजारों वर्ष से उच्चकोटि के सिद्धगण विद्यमान है और उनके भाव के ही द्वारा पृथ्वी पर मानव शरीर में निवास करने वाले सिद्ध-साधकों और योगियों से बना रहता है बराबर सम्पर्क। मैं एक बात बतलाऊं आपको विश्वास करेंगे ?

कौन सी बात है ? मैंने थोड़ा व्यग्र होकर पूछा- बतलाइये, क्यों न करूंगा मैं विश्वास।

नवयुवती मेरी आँखों में झांकते हुए कोमल स्वर में बोली- आप स्वयं अपने आपको नहीं जानते समझते, मनुष्य हो न। मनुष्य न अपने को जानता है और न तो दूसरे को ही और यही तो माया है, प्रकृति की माया।अच्छा, छोड़िये इन बातों को। मैं यह कहना चाहती थी कि आप स्वयं को बिल्कुल नही जानते। जिन सबको आप अपना जानते हैं और समझते है अपना, वह सब किसी का दिया हुआ है। न नाम आपका है न शरीर आपका है और न तो है परिवार ही आपका। ये सब कुछ आपके माता-पिता द्वारा प्राप्त हुआ है आपको। आपने

स्वयं अर्जित नही किया किसी को। सच पूछिये तो यदि आपकी कोई वस्तु है अपनी तो वह है केवल आपकी आत्मा और वह आत्मा पूर्ण आध्यात्मिक है और है पिछले कई जन्मों के शुभ-सस्कारों से संपन्न और यही एकमात्र कारण है कि भाव राज्य के सिद्ध मण्डलियों से आपकी आत्मा का संबंध बराबर अगोचर रूप से बना रहता है जिससे अपरिचित हैं आप।

क्या कहा आपने ? हे भगवान क्या सुन रहा हूँ मैं ये सब...।

ठीक ही कह रही हूँ मैं। आश्चर्य नहीं होना चाहिए आपको। अविश्वास की तो कोई बात ही नहीं है क्योंकि ऐसा न होता तो आपकी आत्मा में आध्यात्मिक प्यास क्यों जगती ? साधु, सन्त और सिद्ध-महात्माओं की खोज में इधर-उधर भटकते ही क्यों आप कुछ कहिए। लेकिन न कुछ बोला ही गया और न तो कुछ कहा ही गया मुझसे। बस सुनता रहा मैं उस सुन्दरी की बातें।

भोर का समय हो चुका था। हिमालय के उत्तुंग शिखरों पर सूर्य की रश्मियों के लाल-पीले धब्बे चमकने लगे थे। पूरब का आकाश सफेद हो रहा था धीरे-धीरे और पक्षी कलरव करने लगे थे जंगलों में।

अब मैं चलती हूँ युवती का स्वर एकबारगी गूंज उठा कानों में और उसी के साथ मेरी स्वप्निल तन्द्रा भंग हो गयी और चौंककर चारो तरफ देखने लगा मैं। रहस्यमयी सुन्दरी, रहस्यमय ढंग से गायब हो चुकी थी अब तक। बस धुंआ-धुंआ सा फैला हुआ था उस समय मेरे चारो तरफ। किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा न जाने कब तक बैठा रहा मैं उस निर्जन स्थान में। वास्तव में उस रहस्यमयी युवती की रहस्यमयी उपस्थिति और उसकी रहस्यमयी बातो ने स्तब्ध और पाषाणवत् कर दिया था एकबारगी मेरे सम्पूर्ण अस्तित्व को।

धीरे-धीरे एक महीने का समय व्यतीत हो गया। इस अवधि में फिर कोई उल्लेखनीय बात नहीं हुई। एक दिन ज्ञात हुआ कि महात्मा दिव्यगन्ध पूरे पाँच दिनों तक महासमाधि में रहेंगे और उनकी कुटिया का पट बन्द रहेगा उस समय। यह सुनकर बेचैन हो उठा मैं। उस निर्जन, पर्वतीय वन प्रान्त में कहाँ मिलेगा मुझे आश्रय ? समझ में नहीं आ रहा था कुछ। दूसरे ही दिन कुटिया का पट बन्द हो गया पाँच दिनों के लिए। अब मैं क्या करूँ ? दोपहर का समय था। तिस्ता के किनारे गाल पर हाथ धरे न जाने क्या सोच विचार कर रहा था मैं और उसी समय एक सांवले रंग की लड़की न जाने किधर से आ गयी वहाँ। आयु यही रही होगी दस बारह साल के लगभग। शरीर गठीला और उसका रंग था गहरा काला। फिर भी वह सुन्दर और लावण्यमयी लगी मुझे। उसके चेहरे पर एक विचित्र सी चमक और आभा थी। आँखें भी बड़ी-बड़ी थी लेकिन थी झील जैसी गहरी और स्थिर — कम आयु होने पर भी उस लावण्यमयी कन्या के सिर के बाल काफी घने काले और काफी लम्बे थे- जो उसकी पीठ पर बिखरे हुए थे, कुल मिलाकर वह कृष्णवर्णा कन्या विशेष रूप से आकर्षक थी। इसमें सन्देह नहीं।

धीरे-धीरे चलकर मेरे बिल्कुल करीब आयी और अपनी स्थिर दृष्टि से देखने लगी मेरी ओर चुपचाप वह। आखिर रहा न गया मुझसे पूछ ही बैठा- क्या नाम है तुम्हारा ?

लड़की पहले मुस्करायी और फिर आकाश की ओर देखती हुई कोमल स्वर में बोली- मेरे नाम तो बहुत सारे हैं। कौन सा नाम बतलाऊँ मैं तुमको ? मेरा रंग काला है न। तुम काली कहकर बुला सकते हो मुझे यह ठीक रहेगा। मैंने उस अबोध बालिका का मन रखने के लिए कहा कौन कहता है कि तुम्हारा रंग काला है ? सांवला है सांवला। फिर काली क्यों कहूँगा ?

इससे क्या ? लड़की मुस्कराती हुई बोली- सांवला रंग भी तो काले रंग का ही हल्का रूप है। मैं कुछ नहीं जानती, बस। तुम मुझे काली ही कहकर बुलाना, समझे न।

लड़की चतुर थी और वाक्पटु भी- यह समझते देर न लगी मुझे। पूछा- कहाँ रहती हो ?

अपना बाया हाथ उठाकर तर्जनी उंगली से एक ओर इशारा करती हुई वह बोली सामने पहाड़ों की जो तलहटी है न उसी तलहटी में रहती हूँ मैं।

इधर कैसे आयी- मैंने पूछा ?

बाबा की देखभाल करनी पड़ती है न इसीलिए आ जाती हूँ कभी कदा- बड़े ही भोलेपन से उत्तर दिया उस बालिका ने। फिर थोड़ा रूककर आदेश भरे स्वर में बोली वह- इस आश्रयहीन, निर्जन और सुनसान इलाके में क्या करोगे ? और कहाँ, कैसे रहोगे ? बाबा की कुटिया तो बन्द हो चुकी है अब...चलो उठो, आओ मेरे साथ। इतना कहकर उस अपरिचिता ने मेरा हाथ थामकर जोर से खींचा मुझे अपनी ओर। लड़खड़ा सा गया फिर संभाला अपने आपको और फिर चल पड़ा मैं मंत्र मुग्ध सा जड़वत उस लड़की के साथ तलहटी की ओर। लड़की बड़ी तेजी से कदम उठाती हुई आगे-आगे चल रही थी। पूरे एक घंटे का समय लगा तलहटी तक पहुँचने में।

काफी दूर तक फैला हुआ था तलहटी का मैदान। जिसके एक ओर घना जंगल था और दूसरी ओर था गगनचुम्बी पर्वतों की श्रृंखलाएं। घोर निस्तब्धता थी वातावरण में। चारों ओर सांय-सांय हो रहा था। गहन उदासी भी थी वहाँ। एक दूसरे से काफी अलग-अलग कई झोपड़ियाँ थी घास-फूस की। उन्हीं में एक झोपड़ी थी काली की भी। जिसके भीतर बस एक ही कोठरी थी जिसमें एक काठ का तख्त था जो जर-जर हो चुका था और जिस पर एक मैली कुचैली चादर बिछी हुई थी। कुछ दैनिक आवश्यकता की वस्तुएं थी वहाँ। सामने की दीवार पर भद्रकाली का एक चित्र टंगा हुआ था। जिसके शीशे पर न जाने कब की धूल जमी हुई थी और चढ़ी हुई जवा फूल की माला भी न जाने कब की सूख चुकी थी मुरझाकर। तख्त पर एक अतिवृद्ध सज्जन बैठे अपलक निहार रहे थे काली माँ की मटमैली पड़ी छवि की ओर। ज्ञात हुआ कि वह वृद्ध सज्जन उस बालिका के दादा थे और उनका नाम था पूर्णेन्दु शेखर — बंगाली सज्जन थे महाशय। कलकत्ता में सरकारी अफ़सर थे। सारी सुख सुविधायें थी। किसी बात की कमी नहीं थी, लेकिन पचास वर्ष पूर्व केवल तीस वर्ष की आयु में विराग हो गया उन्हें और न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर कलकत्ता से उस वीरान, सुनसान पहाड़ी तलहटी में आकर बस गये थे महाशय। फिर वापस कलकत्ता नहीं गये। युवा पत्नी का मोह भी आकर्षित न कर सका कभी उन्हें वह भी पति की प्रतीक्षा

करते-करते दिवन्गत हो गयी बेचारी। एक पुत्र था वह अपनी पत्नी के साथ कलकत्ता में रहता था। नौकरी करता था। साल दो साल में एक बार पत्नी के साथ पिता का दर्शन लाभ करने चला आया करता था। नाम था सुखेन्द्र शेखर। उसकी एक मात्र पुत्री थी कालिन्दी। महाकाली के उपासक थे पूर्णेन्दु शेखर। प्राय: साधना उपासना में ही लीन रहते थे महाशय। शायद इसी कारण अपनी पौत्री का नाम रखा था कालिन्दी। पिछली बार दुर्गा पूजा के अवसर पर अपने माता-पिता के साथ आयी तो जिद करके दादा के पास ही रह गयी कालिन्दी। उस समय उसकी आयु मात्र नौ साल की थी। आश्चर्य की बात तो यह थी कि इतनी अल्पायु में वह कोमल बालिका भोजन बनाती, बर्तन साफ करती, पूरी झोपड़ी की सफाई करती और रात में सोते समय दादा का पैर भी दबाती। इतना ही नहीं पूर्णेन्दु शेखर जब माँ महामाया की पूजा अर्चना करते तो खूब जोर लगाकर शंख बजाती कालिन्दी और उस शंख की ध्वनि गूंज उठती उस सुनसान वीरान और उदास तलहटी में। धीरे-धीरे एक सप्ताह का समय व्यतीत हो गया और जब मैं चलने लगा तो मेरे साथ चलने के लिए आतुर हो उठी कालिन्दी भी। जब मैंने कहा कि वापस आते समय अकेली होगी तुम, बोलो कैसे लौटेगी तू अकेली। तो उसने हँसकर उत्तर दिया- तुम इसकी चिंता मत करो। मैं भला अकेली कहाँ हूँ? अकेले तो तुम हो। इसीलिए तो तुमको पहुँचाने के लिए चल रही हूँ मैं तुम्हारे साथ।

जिस ढंग से और जिस भाषा में उत्तर दिया था कालिन्दी ने उसे सुनकर दंग रह गया मैं एकबारगी। कुछ बोला न गया मुझसे। बोलता भी क्या? चल पड़ा कालिन्दी के साथ। चढ़ाई थी काफी दूर चलने के बाद थक गया मैं, ऊंचे पत्थर पर दोनों पैर लटका कर बैठ गया। कालिन्दी नहीं बैठी। वह इधर-उधर घूमती रही अपने आपमें मगन।

दोपहर का समय हो चुका था। थोड़ी देर बाद कालिन्दी दौड़कर मेरे पास आयी, उसके हाथ में एक बड़े से पत्ते के दोने में गरम-गरम रोटियाँ और सब्जी थी। उस बियावान में कहाँ मिल गयी थी रोटी सब्जी उसे समझ में नहीं आया। आश्चर्य से कालिन्दी की ओर देखते हुए मैंने पूछा- "कहाँ से लायी यह रोटी सब्जी और वह भी गरम-गरम? कहाँ मिल गयी तुझे इस जंगल में?"

मेरे प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं दिया। थोड़ा हँसकर बोली- "तुमको भूख लगी थी न? आधा दिन भी तो ढल गया है। लो खा लो" और यह कहकर कालिन्दी ने रोटी का दोना मेरी ओर बढ़ा दिया।

भोजन करने के बाद थोड़ी सी झपकी लग गयी मुझे। थका तो था ही, न जाने कब वह झपकी गहरी नींद में बदल गयी पता ही नहीं चला मुझे और उसी अवस्था में मैंने देखा कालिन्दी को लेकिन बालिका के रूप में नहीं एक नवयुवती के रूप में, रंग तो काला ही था मगर उस कालेपन का भी अपना सौन्दर्य था और अपना लावण्य। शरीर पर चौड़े लाल पाढ़ की रेशमी साड़ी थी। कलाइयों में शंख के वलय थे। चौड़े मस्तक पर लाल सिन्दूर का गोल टीका था। होंठ रक्ताभ थे। अपनी बड़ी बड़ी स्वप्निल आँखों से अपलक देख रही थी वह मेरी ओर। बड़ा ही मोहक और अद्भुत रूप था उस समय कालिन्दी का। लगा जैसे

कालिन्दी के उस भुवनमोहिनी रूप में साक्षात् महामाया पराशक्ति महाकाली मेरे सामने खड़ी मुस्करा रही है और अपनी सजल और स्वप्निल आँखों की भाषा में जैसे कह रही हो- जिस मार्ग पर तुम चल रहे हो, उसकी धूल पर शताब्दियों बाद किसी के पद चिन्ह अंकित होते हैं। मान-अपमान, आशा-निराशा और सुख-दुःख से भरा पड़ा है सत्य का यह मार्ग, समझे न, जब तुम इन सबकी उपेक्षा करोगे, तभी प्राप्त होगी सफलता तुम्हें। बहुत देर तक करूणा, स्नेह अनुकम्पा के मिले-जुले भाव की भरी उसकी सम्मोहन से भरी बड़ी-बड़ी आँखे स्थिर रही मुझ पर। फिर वह मेरे समीप आकर बैठ गयी और अपनी कोमल उंगलियों से मेरे बालों को सहलाते हुए कहने लगी- "पिछले कई जन्मों से तेरे साथ हूँ मैं तुम नहीं जानते। इस जन्म में भी साथ नहीं छोड़ूँगी। जब तुम मेरे लिये रोते हो तो सहा नहीं जाता और रहा भी नहीं जाता मुझसे। फिर दौड़कर आना ही पड़ता है। क्यों रोते हो तुम ? ऐसे मत रोया करो। मेरा हृदय ममता से भरा एक माँ का हृदय है न, तुम्हारे आँसू से विगलित होकर गलने लगता है वह। बड़ी पीड़ा होती है मुझे। तुम्हारे दुःख कष्ट को और तुम्हारी पीड़ा वेदना को न कोई जान सकेगा और न तो कोई समझने का प्रयास ही करेगा। आवश्यकता ही क्या है ? मैं जो हूँ। तुम धैर्यपूर्वक और शान्त निर्विकार भाव से बढ़ते चलो अपने मार्ग पर। जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु भी होती है। एक न एक दिन सभी को इस नश्वर संसार से जाना है। कोई रहने नहीं आया यहाँ। जब तुम्हारे जाने का समय आयेगा तो उसके पहले ही अपने एक अंश से नारी शरीर में आविर्भूत होकर आ जाऊँगी अपनी गोद में लेने के लिए तुमको ..... समझे न .....।"

एकाएक मुझे एक झटका-सा लगा और नीचे गिर पड़ा जमीन पर। लेकिन अभी मेरी बाह्य चेतना वापस नहीं लौटी थी और जब चैतन्य हुआ तो देखा एक पहाड़ी युवती मेरे चेहरे पर पानी छिड़क कर मुझे होश में लाने का प्रयत्न कर रही थी। कुछ देर तक स्थिर भाव से बैठा रहा मैं और फिर मेरी आँखें कालिन्दी को खोजने लगी। कहीं भी दिखलायी नहीं दी वह मुझे। कहाँ चली गयी वह बालिका ? मेरी समझ में नहीं आ रहा था।

मैंने उस पहाड़ी युवती से भी पूछा- उसने सिर हिलाते हुए कहा- जब मैं इधर से गुजर रही थी तो केवल आप जमीन पर गिर पड़े थे और कोई नहीं था। घोर आश्चर्य हुआ मुझे। सोचा सम्भव है मुझे सोया हुआ देखकर वापस घर चली गयी हो कालिन्दी। लेकिन स्वप्न जैसी स्थिति में जो कुछ देखा, सुना था वह सब क्या था ? कालिन्दी के रूप में करूणा, दया, अनुकम्पा और स्नेह से भरी किसकी छवि थी वह ? कौन थी वह ? अभी भी वो रहस्यमय मोहक छवि मेरे मानस पटल पर थिरक रही थी।

काले भूरे बादल घिर आये थे आकाश में उस समय। कभी भी जोर-शोर से पानी बरस सकता था। मैं धीरे से उठा और किसी प्रकार चलकर दिव्यगन्ध के आश्रम में पहुँचा। तब तक साँझ हो चुकी थी और पानी भी बरसने लगा था।

मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे दिव्यगन्ध। देखते ही बोले- "कहाँ थे तुम ?"

दिव्यगन्ध के इस प्रश्न के उत्तर में एक-एक कर सारी कथा सुना डाली और अन्त में अन्तरबोध स्थिति में जो देखा, सुना था उसका भी वर्णन किया मैंने। आँखें बन्द किये और

मौन साधे सब कुछ सुनते रहे दिव्यगन्ध। फिर कुछ देर बाद गम्भीर स्वर में कहने लगे- पूर्णेन्दु शेखर से पूर्ण परिचित हूँ मैं। जब पूर्णेन्दु शेखर युवक थे, उस समय नियमपूर्वक नित्य दक्षिणेश्वर जाते थे और माँ काली का दर्शन करते थे और दर्शन करने के बाद घंटों गंगातट पर बैठे रहते थे विचारमग्न। रामकृष्ण परमहंस के प्रति अगाध श्रद्धा थी उनके हृदय में। कभी-कभी विचार मग्न की अवस्था में रोने लगते थे, माँ-माँ पुकारते हुए रामकृष्ण की तरह महाशय। न जाने कैसी विह्वलता थी वह।

सच बात तो यह है कि साधकों को समझना बड़ा कठिन है। एक दिन उसी अवस्था में रामकृष्ण परमहंसदेव ने प्रत्यक्ष होकर दक्षिणा काली की मंत्र दीक्षा प्रदान की पूर्णेन्दु शेखर को। लगता है यह सब उनके पूर्व जन्म के आध्यात्मिक संस्कार का ही परिणाम था इसमें सन्देह नहीं। फिर क्या हुआ? उत्सुक होकर पूछा मैंने। होगा क्या? महात्मा दिव्यगंध थोड़ा अन्यमनस्क होकर बोले- एक दिन न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर नौकरी और घर-गृहस्थी छोड़ कर इस सुनसान विरान घाटी में चले आये और एक झोपड़ी डालकर रहने लगे। कोई काम तो था नहीं, प्राय: माँ की साधना उपासना में ही डूबे रहते थे हर समय महाशय —

एक रात स्वप्न में पूर्णेन्दु शेखर को आशीर्वाद देती हुई माँ महामाया ने कहा- अरे पूर्णेन्दु पौत्री के रूप में अपना एक दे रही हूँ अंश मैं तुझे उसका आदर सम्मान करना और हाँ उसका नाम "कालिन्दी" रखना, अच्छा रहेगा, दिव्यगंध कहते जा रहे थे मुंह बाये सुन रहा था मैं एक अविश्वसनीय अनोखा वृत्तांत।

पूर्णेन्दु शेखर की पुत्रवधू का नाम था काकुली। सौम्य, शान्त और सभी के प्रति आदर सम्मान रखने वाली साक्षात् अन्नपूर्णा।

यथासमय गर्भवती हुई काकुली और यथासमय कन्या लाभ हुआ उसे और कन्या लाभ का समाचार जब पूर्णेन्दु शेखर को प्राप्त हुआ तो उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर माँ महामाया को प्रणाम किया और प्रसन्नचित्त अपलक निहारते रहे माँ की छवि की ओर, उनकी आँखों से झर-झर कर आँसू गिर रहे थे गालों पर उस समय।

माँ के आदेश पर उस कन्या का नाम पूर्णेन्दु ने रखा "कालिन्दी"।

उसने तो अपना नाम काली बतलाया था मुझे, मेरी बात सुनकर महात्मा दिव्यगन्ध बोले- "वह अपना नाम काली ही बतलाती थी सभी को।" फिर क्या हुआ- मैंने पूछा।

और जब कालिन्दी आठ-नौ साल की हुई तो थोड़े दिनों के लिए अपने दादा के पास आ गयी वह रहने के लिए। दादा को बहुत चाहती थी कालिन्दी। पूर्णेन्दु शेखर भी महामाया का स्वरूप समझकर उसे अपने सन्निकट पाकर अति हर्षित हुए। प्राय: मिलने जुलने वाले लोगों से यही कहते थे- "यह कालिन्दी नहीं, स्वयं भगवती महामाया का साक्षात् रूप है।"

कभी कदा पूर्णेन्दु शेखर यहाँ भी लेकर आते थे कालिन्दी को। हम दोनों की साधना चर्चा बड़े मनोयोग से सुनती थी और कभी-कभी अपनी बाल सुलभ जिज्ञासा भी प्रकट करती थी

वह। उसकी जिज्ञासा में सार तत्व भी होता था साधना का। कभी-कभी तो मैं चकित हो उठता था उसकी जिज्ञासा सुनकर।

इतनी कथा सुनाकर मौन साध गये एकबारगी दिव्यगन्ध। न जाने क्या सोचते रहे, फिर बोले- “दो साल पहले की बात है। शरद पूर्णिमा की सांझ थी। पहाड़ों के पीछे से चांद निकलने ही वाला था। कालिन्दी भी आयी थी अपने दादा के साथ। उस दिन अपने हाथ से खीर बनाकर लायी थी मुझे खिलाने के लिए वह। हम तीनों मिलाकर खीर खाये। फिर पूर्णेन्दु के साथ साधना संबंधी इधर-उधर की बातें होने लगी मेरी। कुछ देर तो बैठी रही कालिन्दी अपने दादा के पास, फिर एकाएक उठकर चली गयी नदी की ओर। न जाने क्यों आवश्यकता से अधिक गम्भीर और उदास थी उस समय वह —”

”फिर क्या हुआ ?” थोड़ा सशंकित होकर पूछा मैंने ?

”होगा क्या ?” उस महान योगी का कण्ठ विगलित था। विषण्ण भाव से बोले दिव्यगन्ध ”न जाने कैसे डूब गयी तिस्ता में वह बालिका।”

”ऐं! क्या कहा आपने ? तिस्ता में डूब गयी कालिन्दी लेकिन कैसे?” विगलित हो उठा मेरा स्वर। बहुत बड़ा आघात लगा था मुझे उस समय। हाँ, काफी खोजने के बाद मिली उसकी निर्जीव काया। उस कोमलांगी का पूरा शरीर पड़ गया था नीला और हो गया था पाषाणवत्। लेकिन फिर भी उसका मुख तेजोमय था पूर्ववत् ऐसा लगता था अभी आँखे खोलेगी कालिन्दी और सरस स्वर में बोल पड़ेगी बाबा .... अन्तिम शब्द के साथ कण्ठ अवरूद्ध हो उठा एक महान योगात्मा का और उसी अवस्था में रुक-रूककर भर्राये स्वर में उन्होंने आगे कहा- ”धन्य थे पूर्णेन्दु शेखर जिनकी पौत्री रूप में महामाया ने अपने चिन्मय अंश से जन्म लिया। मुझे भी उस महाशक्ति का प्राप्त हुआ कुछ समय के लिए सानिध्य और सौभाग्यशाली हो तुम जिसे उपलब्ध हुआ उस महान शक्ति का आशीर्वाद —”

यह सुनकर मुझसे आगे कुछ पूछा न गया। पूछने के लिए मेरे पास रखा ही क्या था भला अब। थोड़ी देर बाद स्वयं पूर्ववत् अवस्था में महात्मा दिव्यगंध बोले- ”कालिन्दी की अकाल मृत्यु के आघात को सहन न कर सके पूर्णेन्दु शेखर — उस रात उन्होंने भी त्याग कर दिया अपने नश्वर शरीर का। प्रात: देखा गया उनकी निर्जीव पार्थिव काया माँ महामाया की छवि के सम्मुख दण्डवत् की मुद्रा में पड़ी थी भूमि पर।”

यह दारूण कथा सुनकर हतप्रभ और स्तब्ध रह गया मैं एकबारगी पाषाणवत् बैठा रहा न जाने कब तक अविचल मुद्रा ने मैं। एक महान योगी के मुख से एक महान साधक की दुखद और दारूण कथा सुनकर जैसे विश्वास ही नहीं हो रहा था मेरी आत्मा को। लगता था जैसे कोई लम्बा सपना देखा था मैंने। नहीं, नहीं, कौन कहेगा सपना ? सपना नहीं सब कुछ सत्य था और था यथार्थ —

आज भी कभी कदा मानस पटल पर थिरक उठती है कालिन्दी की मोहक छवि। दीर्घकाल के बाद गुप्त साधकों की खोज के अन्तर्गत प्रस्तुत कथा को लिपिबद्ध करते समय भी मेरे सामने जैसे कालिन्दी का हँसता, मुस्कराता हुआ चेहरा घूम रहा है चारो ओर। सचमुच

क्या कभी जीवन में कालिन्दी की मोहक छवि भूल सकेगी मेरी आत्मा ? कभी नहीं, कभी नहीं ।

अध्याय १७
कालीमठ

आज सुबह की डाक से अनुसंधान विभाग का एक पत्र आया है मेरे पास। पत्र का उत्तरार्द्ध यों है- शाक्त सम्प्रदाय और धर्म के बारे में और भी कुछ तथ्यों के रहस्य का अब पता लगा है। उस रात जो कुछ देखा था आपने- वह आपकी उस अवश चेतना की छाप मात्र ही थी। आपकी 'थीसिस' कापी के मिलने के बाद उस इलाके में विभाग ने दरयाफ्त कराया- तो उसका अन्दाज सत्य निकला। वह अभिशप्त धूसर निर्जन कुंज किसी अतृप्त वासना का आखेट स्थल ही है और वह ध्वंसावशेष सी झोपड़ी ....

दो साल पूर्व शाक्त सम्प्रदाय पर रिसर्च कर रहा था मैं। महान वैष्णव धर्म के दर्प के सामने उन्नत मस्तक वाले शाक्त धर्म के प्रति सहज जिज्ञासा का भाव मेरे मन में जाग्रत हो गया था। एक प्रबल प्रभंजन की भांति भारत के नक्शे पर छा जाने वाले उस धर्म के संबंध में और अधिक जानने की उत्कट इच्छा ने मुझे कहीं का न रखा। तभी मिला मुझ को डॉ. वर्मा का पत्र। वे मेरे गाइड थे। लिखा था- गौहाटी विश्वविद्यालय में मेरे परिचित डॉ. भादुड़ी भट्टाचार्य प्राध्यापक हैं। उनको अपने संग ले लेना। मैं डिब्रूगढ़ आ गया। नक्शे में देखा जिस कालीमठ के द्वारा शाक्त धर्म के इतिहास पर प्रकाश मिलने की सम्भावना बनी थी- शिलांग और सिलचर के बीच किसी स्थान पर था। आधीरात तक भादुड़ी से परामर्श होता रहा। तीसरे दिन हम लोग शिलांग पहुँचे। समय और इतिहास के विराट पदों से रौंदे हुये अलसाये और धूल-धूसर शिलांग के कुछ मील दूर जेंग पाँग की हतश्री बड़ी ही कातर और म्लान प्रतीत हुई। छोटा सा गाँव बीस-पच्चीस झोपड़े और चारो तरफ ऊँचे-ऊँचे मटमैले पहाड़।

मैंने भादुड़ी से पूछा- 'कालीमठ के अवशेष यहाँ कहाँ मिलेंगे ?'

"थोड़ी दूर पर एक पुराना किला सा है- वहीं पर कहते हैं विद्यारण्य वाचस्पति ने नवाक्षर-साधना की थी। थोड़ी ही देर में हम वहाँ पहुँच जायेंगे ....

दूर से ही दिख गयी वह गढ़ी। ध्वस्त परिवेश में- अतीत की एक यादगार के रूप में अपने चन्द वर्षों के तूफानी आधिपत्य में हलचल मचा देने वाले शाक्त धर्म के प्रारम्भिक जीवन की प्रतीक वह गढ़ी धूल-धूसरित होकर भी बांकी भंगिमा से सिर ऊँचा किये खड़ी थी, सब ओर साँय-साँय हो रहा था। एक विचित्र उदासी- एक अबूझ सी खिन्नता व्याप्त थी उस गढ़ी में। पत्थर की ईटों से बनी उस ऊँची शानदार गढ़ी की धूल से अटी सीढ़ियाँ चढ़ते समय ऐसा लगा जैसे काफी अर्से से कोई आया ही न हो यहाँ ! टूटी फूटी जर्जर बारादरी में प्रवेश करते ही दशहत से पर फड़फड़ाते कबूतर कानों को छूते हुए निकल गये। लगा, जैसे चमगादड़ भी चीखा हो यहीं कहीं।

बचपन में भरपूर चाँदनी से दमकती रातों में घर के पुश्तैनी बाग में आँख मिचौली खेला करता था। जहाँ जुन्हैया खिली होती- जहाँ खूब उजाला रहता। किन्तु अकसर पेड़ों की

घनी परछाईयों से अंधेरा भी भरा करता, ऐसे में खूब सतर्क होकर विस्फारित आँखों से चारों ओर की टोह लेते हुए एक-एक पग आगे बढ़ाते रहने पर भी पीछे से आकर कोई अपनी हथेलियों से आँखे बन्द कर लेता। कुछ वैसी ही अनुभूति उस म्लान-निस्तब्ध गढ़ी में भी हुई मुझे। धूल से भरे-पड़े पत्थर झांकते टूटे-फूटे बुर्ज पर घूमते हुए हर क्षण यही लगता रहा कि कहीं सधी हुई हवा की उस विवशता के बीच किमखाव के आसन पर बैठे गले में रुद्राक्ष की माला पहने- सामने चौमुखा दीप जलाये कोई साधक-अतीत के जीर्ण शीर्ण काले परदे को उघाड़ देगा और सहज ही में उसे, डरावने-अँधियारे वातावरण में मन-प्राणों को स्तम्भित कर देगा ? किन्तु कोई नहीं आया।

सतर्कता से एक-एक कमरे एक एक कोना और आंगन देखने पर भी निराशा ही हुई। तभी रमेश भादुड़ी ने फुसफुसा कर कहा- वह देखो सामने .... और अब सहसा नजर सामने की ओर गयी तो देखा- एक कमरा था जिसके काले जीर्ण-शीर्ण से दरवाजे में अर्गला बन्द थी। रमेश ने आगे बढ़कर अर्गला खोल दिया और फिर दरवाजा भी ! उस दरवाजे के खुलते ही हवा का एक जबर्दस्त झोंका कमरे के अन्दर घुस गया और वातावरण में एक तीव्र गंध बिखर गयी। कमरे के दरवाजे पर से दो-दो टार्च का तीव्र प्रकाश सर्वप्रथम जिस वस्तु से टकराया उसने एक क्षण के लिये हम लोगों के शरीर का रक्त प्रवाह ही रोक दिया। किसी की हिम्मत अन्दर आने की नहीं हुई। दरवाजे पर ही ठिठके खड़े रहे। न जाने कब तक खड़े रहे और स्तब्ध अपलक सामने कमरे के बीचोबीच स्थित उस भयंकर काली की अष्टभुजी मूर्ति को निहारते रहे।

वैसी विलक्षण तेजोमयी मूर्ति हमने जीवन में कभी नहीं देखी थी। काले पत्थर की आदमकद प्रतिमा थी वह। एक पैर महाकाल के हृदय पर दूसरा पैर पशु के मस्तक पर था काली का। अन्दर मन्दिर के वातावरण से स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि जगदम्बा का विधिवत नित्य पूजन होता है। प्रतिमा के सामने एक चौमुखी पाषाण की वेदी थी और उसके एक तरफ पीतल का त्रयोदश मुखी दीपक रखा था। उसकी ओर देखकर ऐसा प्रतीत हुआ मानो अभी-अभी हवा के किसी झोके ने दीपक की तमाम जलती हुई घृतबाती को एकबारगी बुझा दिया है। जगदम्बा के गले में जवा की माला पड़ी हुई थी- जिसका हर एक फूल ताजा और खिला हुआ सा लग रहा था, हम आश्चर्य से देखकर रहे थे। मन और मस्तिष्क का समाधान नहीं हो रहा था। आश्चर्य कौतूहल, भय और रोमांच का मिला-जुला भाव हृदय से उठ-उठ कर मन-प्राण पर छाता जा रहा था जैसे और उस भाव के साथ आत्मा में एक विचित्र अनुभूति-सी हो रही थी। कैसी थी वह अनुभूति ये कुछ कहा नहीं जा सकता। किन्तु ! ऐसा अनुभव हो रहा था मानो हम दोनों की आत्मा किसी अज्ञात सम्मोहनी शक्ति के वश में हो गयी है और तभी अगर-धूप की गंध से भरा हवा का एक तीव्र झोंका मुख के पास भ्रमण करता हुआ निकल गया। उसी के साथ मंदिर का जर-जर दरवाजा एक झटके के साथ अपने आप बन्द हो गया। हम अवाक् जड़वत् खड़े के खड़े रह गये।

जब हम नीचे आये तो सात बज रहे थे। सारा आकाश काले बादलों से भर गया था और उद्दाम हवा की ताल पर लम्बे और भयानक जंगली वृक्ष झूमकर नाच रहे थे। मैंने कहा-

अब ?

रमेश ने आसमान की ओर देखा। फिर शंकित होकर कहा- “पानी आयेगा अरुण भाई। .... ’हाँ आयेगा तो .... ”

धुनी हुई रूई के आडंबर के समान काले अंधकार से भर गया था आसमान, चारो तरफ एक अजीब सा सन्नाटा एक अबूझ सी निविड़ता छा गयी थी खंडहर जैसी कालीमठ की गढ़ी अंधेरे में अपने अतीत की कहानी पर सिर धुनती-सी प्रतीत हो रही थी। चारों ओर निर्जन इलाका था। ऊजड़-मरघट जैसा बीहड़ घूसर और निस्तब्धता थी उसके चारो तरफ ! बादलों से घिरकर काला हो गया था आकाश। गहन निश्वास जैसी हवा हाहाकार करती झाड़ियों और झुरमुटों को कम्पाये दे रही थी। थोड़ी देर पूर्व झींगुरों की झनकार भी सुनाई दे रही थी। किन्तु इस घने अँधियारे ने जैसे उस अनवरत क्रन्दन का भी गला घोट दिया था। तेज गति से वापस लौट रहे थे हम। मन में यही लग रहा था- ‘यानी अभी न गिरे अभी न गिरे।’

वर्षा हो ही गयी। पहले टप-टप बूंदे टपकी फिर झर-झर कर झाड़ियों में बरसने लगा आसमान ! साथ ही उद्दाम हवा का तूफानी विलाप भी गूँज उठा बारिश की लय के साथ। लगा-जैसे त्राण न मिला तो अकड़ जायेगा शरीर — कातर स्वर में रमेश ने कहा- ’दौड़ो अरुण, अरुण दौड़ो ! दिशाहीन-लक्ष्य हीन काले अँधियारे के बीच बहते पानी में चप्पलों से छप-छप करता मैं भागा। पीछे-पीछे रमेश भी दौड़ा। पानी की बौछार तेज हुई। उसी के साथ तेज हुई हवा का वेग। पानी से भींगे वृक्ष झूमते हुए दोहरे हुए जा रहे थे। थोड़ी देर बाद लगा, कि अब न दौड़ा जायेगा। यहीं इस अनजाने अरण्य प्रान्तर में ही हो जायेगी जल-समाधि। मैंने पूछा- “हम जा किस ओर रहे हैं- रमेश ?”

होश खो कर- बदहवास-सा जो अलक्ष्य दौड़ा जा रहा था- जैसे उसकी मूर्च्छा टूटी।

बोला- ‘ऐं’ !

मैंने उसके कन्धे पर हाथ रख कर कहा- रुको, तो सही। ऐसे में तो न जाने कहाँ भटक जायेंगे ? गजब हो गया। शायद हम भटक गये- रमेश बोला- “वह देखो बारिश के धुंध के पार सिलचर की रोशनी झिलमिला रही है।” स्तब्ध रह गया मैं। छाती के भीतर कुछ खाली सा प्रतीत हुआ। कातर स्वर में मैंने कहा- तुम्हें तो कुछ पता होगा। किस तरफ आ रहे हैं हम ?

बारिश होती रही उसी तरह जोर-शोर से ! कड़कड़ा कर बिजली चमकी। उस भयानक रव के क्षण मालूम हुआ जैसे वर्षा का जल वस्त्रों को गीला कर शरीर के चमड़े की परत भेद कर भीतर प्रवेश कर गया है। रमेश ने अन्दर लगा लिया कुछ। बोला- ‘यह रास्ता.....सिलहट की ओर जाता है शर्मा ! हम लोग अपने डेरे से कितनी दूर हैं यहाँ से ? सात-आठ मील से क्या कम होंगे।’

मेरा सारा जोश ठण्डा पड़ गया कहा- ’तब तो सब चौपट हो गया। कहीं जलसमाधि न हो

जाय हमारी यहीं ?' रमेश सिहर उठा । कुछ कहा नहीं उसने । मैंने कहा- श्मशान के प्रेत जैसे हम कब तक खड़े रहेंगें इस बीहड़ स्थान पर ? कोई शेल्टर तो खोजना ही होगा ।'

अजीब था वह समां ! अँधेरे में आसमान और धरती मानों मिल कर एकाएक हो गये थे । शीतल अंधकार का अन्तहीन समुद्र और उसके बीच दप-दप होने वाली जुगनूओं की चमक और उस विकट अन्धकार में उद्दाम वासना लिये उठती नये पानी की भीनी महक — याद नहीं, उस अराजकता भरी रात में जोश, होश खोकर हम कबतक भटकते रहे । मन में एक अजीब-सी विवशता भर गयी थी ! तभी रमेश ने कहा- 'रूको अरुण भाई ! रूको —'

नजर उठाकर सामने देखा ! अंधकार का धुँधला सा परदा और उसके उस पार न जाने क्या चमचमाता-सा मैंने कहा- 'क्यों ?'

आहट लो । लगता है कि, जैसे यहाँ कोई रहता है । पीछे का घना अंधकार वैसा का वैसा ही रहा । किन्तु धुँधले-उजाले के मटमैले तारों में फँसे सामने के हल्के अँधियारे में सुषुप्ति भरी दृष्टि ने जैसे कुछ चीजों को पहचान ही लिया । लगा, जैसे खूब घने वृक्षों से घिरी जर्जर ईटों का अहाता हो ।

मैंने रमेश की ओर देखा वह कुछ सुन-सा रहा था । फुसफुसा कर बोला- 'अरुण भाई' ! सुनो- किसी के गाने की आवाज । आधी रात को कौन गा रहा है यहाँ पर ? ....

क्लान्त आच्छन्नता से भरे विवश चित में बारिश के शोर-अंधेरे में वृक्षों के ऊपर सिर पटकती हवा की चीत्कार और झींगुरों की झनकार ने मिलजुल कर एक विचित्र हाहाकार सा भर दिया था बाहर ! रमेश का स्वर भी अर्थहीन-सा लगा । फिर उन्नत हवा के आरोह-अवरोह पर तैरती दुर्गा सप्तशती के श्लोकों की निम्न पंक्तियाँ कानों में गूँज उठीं–

बालार्क मण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् ।
पाशांवुश वरांभीतिंधारयन्तीं शिवो भजे ।।

... एतत्ते कथितं भूपदेवी माहात्म्य......मैंने कलाई घड़ी देखी । रेडियम टच अंक हरी आग जैसे चट-से जल उठे । ग्यारह पैंतीस ! मैं स्तब्ध सा खड़ा रह गया । इतनी रात गये इस तिमिराच्छन्न निर्जन प्रान्त में कौन श्लोक पाठ कर रहा है ? मैंने कहा- रमेश देखो तो सही, कौन है ? श्यामल आकाश का वक्ष जलाती बिजली चमकी । छलकते पारे जैसी रेखा ओर-छोर हीन आसमान के एक कोने से दूसरे कोने तक कौंध गयीं । हजारों मैगनीशियम के तारों जैसे प्रखर आलोक से उद्भासित हो गया वह स्थल । देखा- पानी से तर काई की परत से ढंकी ईटों के एक खंडहर के सामने खड़े थे हम । वातावरण को मथती विद्युत वाणी गरज कर शान्त हो गयी । दुर्गा पाठ भी समाप्त हो गया । आगे बढ़ कर रमेश ने आवाज दी । 'अरे ! भई कोई है ?'

बारिश का एक रस शोर । अंधेरे की छाती पर जुगनुओं के बुझते-जलते रहने का खेल । अपने रव से धरती को कंपाती हुई बिजली फिर कौंधी ।

'अरे भाई कोई रहता यहाँ ?'

राशि-राशि बिखरे अन्धकार में धुँधले उजाले का दायरा एक बार सिमट कर फैला और फिर फैलता ही गया लगा कोई दरवाजा खोल रहा है। तभी मेरे मुँह से निकला 'अरे ! वह तो काली मन्दिर वाला ही दरवाजा है।'

हाँ वही दरवाजा था- जिसे हमने दो-तीन घण्टे पूर्व खोला था फिर वहीं कैसे पहुँच गये ? रमेश ने मेरी तरफ और मैंने रमेश की तरफ देखा- दोनों की दृष्टि आपस में टकरायी। आँखों में विस्मय लिये हम एकटक सामने देखते रहे।

दरवाजा खुला। सामने एक षोडशी युवती खड़ी थी- हाथ में एक दीपक पात्र लिये हमारी ही ओर थी उसकी नजर।

अन्दर प्रविष्ट होने का संकेत कर बोली वह 'आइये आइये, आ जाइये अन्दर।' और आगे-आगे चल पड़ी वह। उसके पैरों के नुपूरों की कर्ण प्रिय झंकार ने जैसे सम्मोहित कर दिया हमें। अन्दर वहीं विशाल काली की भयंकर प्रतिमा और वही रुपरेखा- जिसे हम पूर्व में देख चुके थे। वह युवती दीपक यथा स्थान रखकर हमारी तरफ मुड़ी और बोली- बैठिये, बाबा साधना में हैं और तभी हमारी नजर प्रतिमा के सामने गयी देखा- एक अधेड़ सा व्यक्ति ध्यानस्थ बैठा है आसन पर। ऊँची काठी की देह-यष्टि मुड़ा हुआ सिर — गले में रूद्राक्ष की माला। शरीर पर रक्तवर्ण का रेशमी वस्त्र और मुख पर अजीब प्रकार की प्रखर कान्ति।

हम वहीं थोड़ी दूर पर आसन लेकर बैठ गये। उस मंद आलोक में कमरे का वातावरण अगरबत्ती-धूप की गंध से भर रहा था और निस्तब्धता व्याप्त थी। युवती ने फिर हमसे कोई बात नहीं की। कुछ कहने के लिये आतुर थे हम किन्तु वाणी फूट ही नहीं पा रही थी। हमारी नजरें एकटक युवती की ओर लगी हुई थी।

उफ ! कैसी थी वह सुन्दरता। कैसा था वह स्तब्ध कर देने वाला रूप। उसे देखकर कामुकता नहीं श्रद्धा उत्पन्न हो रही थी हृदय में।

सहसा हमारी दृष्टि भंग हुई। बाबा का स्वर सुनायी दिया- "कैसे आना हुआ ?" मैंने सारी बातें विस्तार से कह कर स्पष्ट कर दीं। बाबा, सब कुछ सुनते रहे और जैसे दुविधा हो रही हो- ऐसी निगाह से देखते रहते थे हमारी ओर। फिर, जैसे वे हमारा मंतव्य समझ गये हों- वैसा भाव मुख पर लाकर बोले- "विद्यारण्य की साधना स्थली यही कालीमठ था। उन्होंने ही यह प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी ......।"

मगर- शाक्त सम्प्रदाय में उनके द्वारा प्रतिमा स्थापित करने का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। आपके द्वारा यह एक नवीन तथ्य प्राप्त हुआ। मैंने हँसते हुए कहा-

'सम्प्रदाय' प्रत्येक बातों को स्पष्ट नहीं कर पाता- सम्प्रदायों की बहुत-सी बातें गुप्त भी रहा करती हैं। बाबा, काली की ओर देखते हुये कहने लगे-

बाबा की बातें मैं जब ध्यानपूर्वक सुन रहा था तभी मेरी दृष्टि एक सोये हुये व्यक्ति की ओर गयी- जिसे मैं अभी तक देख नहीं पाया था। आश्चर्य हुआ उसे देखकर — बाबा हमारी मन: स्थिति शायद समझ गये। मगर कुछ बोले नहीं। तभी मुझे उस षोडशी का ध्यान आया।

नजर दौड़ायी कमरे में चारो तरफ- मगर वह कहीं नहीं दिखायी दी। आखिर गयी कहाँ वह ? पग पग पर आश्चर्य और कौतूहल होता जा रहा था। तभी एक विकट चीत्कार से सारा-मंदिर गूंज उठा- 'मुझे बचा लो ! बचा लो मुझे ! मैं मुक्ति चाहता हूँ। इस विद्यारण्य ने मुझे परतंत्र कर रखा है। इस पिशाच से बचाओ बचाओ .... मुझे।'

वातावरण सहसा भयंकर हो गया। हम अभी यह बात समझने का प्रयत्न ही कर रहे थे कि यह करूण ध्वनि किधर से आ रही है कि तभी हूं....हूं.... करती पागल-सी हवा अन्दर प्रविष्ट हो गयी उसी के साथ एक विकट और लोमहर्षक दृश्य का अवतरण हुआ। उस दृश्य को देखते ही हम दोनों के होश गुम हो गये।

हे भगवान ! कौन-सा कौतुल देख रहे थे हम ? क्या था वह सब ? कौन सी लीला थी वह ? भय से काँपने लगे हम। कमरे में न बाबा थे और न वह सोया हुआ व्यक्ति, अचानक रमेश ने कहा- 'अरे ! यह क्या ! वह प्रतिमा की ओर इशारा कर रहा था। दूसरे क्षण मेरी दृष्टि घूम गयी काली की ओर। रोम-रोम सिहर उठा। आत्मा डूबती-सी प्रतीत हुई। काली के एक हाथ में बाबा का रक्तरंजित मुण्ड लटक रहा था। दूसरे हाथ में रक्त प्लावित खड्ग- जिसमें से मानव शोणित- रिस रहा था बूँद-बूँद कर। महाकाल की शक्ति की वह अट्टास करती हुई मुद्रा देख कर ऐसा प्रतीत हुआ- मानों दूसरे ही क्षण वह हम पर टूट पड़ेगी। दृश्य देखकर सिहर उठे हम। लगा जैसे भयातुर कंठ से रमेश ने चीत्कार किया हो- 'शर्मा' ! किन्तु दूसरे ही क्षण होश नहीं रहा मुझको और जब आँखें खुली तो सुबह हो गयी थी। सूरज की रक्ताभ किरणें शिलांग के पर्वतों को चूम रही थीं। आँख मल कर चारो तरफ देखा- तो देखता ही रह गया- रमेश मुझसे कुछ दूर पर अभी तक बेहोश पड़ा था। गर्द, गुबार से अट गयी थीं हमारी देह। न जाने कब तक बैठा रहा मैं उसी हालत में !' रात की सारी घटना मस्तिष्क में तेजी के साथ चक्कर काटने लगी थी।

काली की आदम कद प्रतिमा, बाबा की साधना और षोडशी की रूप ज्वाला, किसी एक का भी अस्तित्व नहीं था उस भग्नावशेष में ! चारो तरफ एक रिक्तता थी- निस्तब्धता थी और धूल की मोटी पर्तों से ढँकी जमीन थी जिसके अन्दर अतीत के वे सारे दृश्य ढँकें थे जिनकी पुनरावृत्ति उस निविड़ रात्रि में हुई थी।

चौथे दिन अस्पताल में रमेश भादुड़ी को होश आया। उसी के सिरहाने बैठ कर मैंने उक्त आसुरी रात की तमाम लीलाओं का वर्णन लिखा और दूसरे दिन विभाग के पास भेज दिया उसे। तीन मास बाद उसके उत्तर में जो पत्र विभाग का मेरे पास आया उसका उल्लेख कहानी के प्रारम्भ में ही मैंने कर दिया। मगर अब मैं सोचता रहता हूँ कि उस रात के वे समूचे दृश्य प्रेत लीला रूप तो न थे या कोई तांत्रिक चमत्कार। वास्तविकता क्या थी ? किस ओर संकेत कर रही थीं वे तमाम घटनाएँ ? आज भी मैं इन गुत्थियों को सुलझाने में अपने आपको व्यस्त पाता हूँ धन्य है 'काली मठ'।

प्रकीर्ण

१ शक्ति पूजा के नौ दिन

प्रलय के पश्चात परमात्मा जो जगत के सृष्टि स्थिति और संहार के कारण है, के मन में सृष्टि के निर्माण का भाव जागृत होते ही योगमाया (शक्ति) का प्रादुर्भाव होता है । जिसकी देवीभागवत में सन्धि विच्छेद के साथ व्याख्या की गयी हैं कि ’श’ नाम ऐश्वर्य और ’क्ति’ नामक पराक्रम का है । इन दोनों ऐश्वर्य और पराक्रम प्रदत्त स्वरूप को शक्ति कहा गया है ।

परमात्मा की यही शक्ति जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जगत चर-अचर एवं जड़-चेतन में अदृश्य रूप से स्थित है । वही जब दैवी रूपधारण कर प्रगट हुई उसी का वर्णन कथारूप में देवी भागवत, दुर्गा सप्तशती, महाभारत और रामायण आदि में पूर्णरूपेण अथवा आंशिक रूप में किया गया है । सभी कथाओं में देवी का आह्वान असुरों के संहार अथवा अत्याचार, अनाचार के दमन एवं मानव कल्याण के साथ धर्म का अधर्म पर विजय से ही सम्बंधित है । सृष्टि के प्रारम्भ में मधु कैटभ राक्षसों से त्राण हेतु ब्रह्मा के रक्षार्थ दुर्गा प्रकट हुई थीं । वहीं पुन: देवताओं ने भगवान शिव के निकट जाकर असुरों द्वारा की गयी दुर्गति से मुक्ति हेतु विनय किया था और शिव के टेढ़ी भृकुटी से प्रकट ज्वाला में समस्त देवताओं के अंश प्राप्त कर जिस कन्या का प्रार्दुभाव हुआ वहीं दुर्गा कहलायी । देवताओं के अतिरिक्त मानव द्वारा भी आह्वान पर देवी का प्रार्दुभाव हुआ है जैसा कि महाभारत (भीष्मपर्व) में भी विशाल कौरव सेना को देखकर श्रीकृष्ण ने भी अर्जुन के हित में शत्रुओं को पराजित करने के निमित्त रणभिमुख खड़े होकर पवित्र भाव से दुर्गा (शक्ति) का स्तवन करने का आदेश दिया । वहीं रामायण में रावण की अपार शक्ति योद्धाओं और सैन्यबल विजय प्राप्ति हेतु मुनि के परामर्श पर राम ने भी दुर्गा (शक्ति) का स्तवन किया था । परिणामस्वरूप भगवती दुर्गा ने साक्षात प्रकट होकर विजय का वरदान किया था ।

उसी दुर्गा का आह्वान, पूजा अर्चना एवं स्तवन नवरात्रि में किया जाता है । विशेषकर शरतकाल में दुर्गापूजा का विशेष महत्व है । वैसे भी देखा जाय तो वर्ष के पूर्वार्ध छ: माह तक ब्रह्मा (रामनवमी, कृष्ण जन्माष्टमी एवं अनन्त) की अधिकांश पूजा होती है । वहीं उत्तरार्ध में शक्ति (दुर्गापूजा, लक्ष्मी पूजा, काली पूजा एवं सरस्वती पूजा) की अधिक मान्यताएं हैं । स्वयं जगदम्बा ने भी दुर्गा सप्तशती में देवताओं की स्तुति से प्रसन्न होकर प्रकट होकर प्रतिज्ञा की है कि जब-जब धरती पर दानवजन्य बाधा उपस्थित होगी, वह दुर्गा, शाकम्भरी, भीमा आदि विभिन्न रूपों में भविष्य में भी प्रकट होकर जगत का कल्याण करेंगी । उसी समय स्वयं भगवती ने ही पूजा के माह और फल का भी वर्णन किया है । जिसके अनुसार शरतकाल की पूजा को विशेष महत्व दिया गया है ।

इसी क्रम में पूर्ण नवरात्रपर्यन्त कथा वाचन और महात्मय श्रवण से सम्पूर्ण बाधाओं का नाश होने के साथ धन, सन्तान की प्राप्ति एवं दैहिक, दैविक और भौतिक बाधाओं से मुक्ति प्राप्त होती है । वर्षपर्यन्त निरन्तर पुष्प, अर्ध्य, धूप, उत्तम चन्दन, दीपक, हवन तथा अभिषेक के साथ महात्मय श्रवण, पश्चात् ब्राह्मण भोजन कराने से मनुष्य सभी पापों से मुक्ति, आरोग्यता एवं अकारण मृत्यु से वंचित होकर साक्षात भगवती जगदम्बा का समीप्य

प्राप्त करता है। वर्तमान परिवेश में प्रत्येक प्राणी में भगवती द्वारा मारे गये महिषासुर और उसके सातों सेनापतियों, शुभ, निशुंभ, रक्तबीज, धूम्रलोचन, चंड-मुंड एवं सुग्रीव आज भी अहंकार, ममत्व, काम, क्रोध, बल-दंभ दर्प एवं परिग्रह के रूप में स्थित है। उनके दमन हेतु भगवती दुर्गा का स्तवन करने से प्राप्त होने वाली प्रेरणा ही वास्तविक दुर्गापूजा है।

२ दान के रहस्यों को जानकर दान किया जाय

जिस प्रकार सर्पदंश के शिकार व्यक्ति के शरीर में सर्पविष तो अत्यल्प मात्रा में प्रविष्ट होता किन्तु दंशित स्थान पर चीरा लगाकर शरीर में प्रविष्ट विष की मात्रा से अत्यधिक गुना रक्त निकालने पर ही प्राणरक्षा हो पाती है। कालरा हो जाने पर खाया गया दूषित भोज्य पदार्थ तो निकल ही जाता है, वह शरीर में संचित अतिरिक्त तत्वों को भी साथ ले जाता है। उसी प्रकार विषाक्त ग्रह का दोष नष्ट करने के लिए उसे विषाक्त बनाने वाले ग्रह तथा विषाक्त ग्रह दोनों का ही दान कल्याणकारी सिद्ध होता है। जैसे उक्त स्थितियों में जब शुक्र विषाक्त एवं राहु विषकारक सिद्ध हो तो शुक्र से सम्बन्धित वस्तुओं, गाय, गाय का घी, कांसे का पात्र हीरा, जस्ता, मिले-जुले अन्न, पकाया भोजन, श्वेत वस्त्र आदि के साथ कच्चा कोयला, नारियल, जौ, अल्यूमिनियम, स्टील, गोमेद, बिजली के उपकरण, स्टील के सिक्के आदि का भी दान करने पर पत्नी सुख में होनेवाली बाधा का नाश-और दारिद्र्यता का शमन होता है।

यह दान तो सर्पदंश जैसे विपत्ति की अवस्था में किया जानेवाले उपचार सरीखा है किन्तु नित्य भोजन एवं मलत्याग के समान नित्य, जो कोष्ठबद्धता की तरह शनैः शनैः आनेवाले रोगों की भांति आनेवाली विपत्तियों से बचानेवाला है, उसको किस प्रकार किया जाय क्योंकि शरीर की तो यह नैसर्गिक एवं सहज प्रक्रिया है कि वह सार को ग्रहण कर अवशेष असार पदार्थों का स्वतः त्याग कर देता है किन्तु मनुष्य कितना करे ?

संसार में प्रचलित सभी धर्मों में अपनी आय का एक निश्चित अंश दान करने का विधान मिलता है। सब धर्म एक स्वर में गरीब, अनाथ, असहाय रोगी, विपदग्रस्त मनुष्यों की सहायता और सेवा का उपदेश करते हैं क्योंकि ये ईश्वर की सबसे छोटी, ईश्वर पर आश्रित और उनकी सर्वाधिक प्रिय सन्तानें हैं, जिनका दायित्व वह स्वयं वहन करता है। ईश्वर के दायित्वों, कार्यों में हाथ बंटाना स्वतः व्यक्ति को उसकी कृपा का पात्र बना देता है। अतः अपनी आय का इक्कीसवाँ अंश जो देवांश कहलाता है, वह देवकार्य अर्थात् इस वर्ग के सहयोग एवं सेवा में लगाने से धन का दोष नष्ट हो जाता है।

अपनी आय का तीसवां अंश विप्रांश कहा जाता है, जिस पर विप्र वर्ग का अधिकार होता है। विप्र का तात्पर्य है जो निःस्वार्थ और निर्लिप्त भाव से निर्विकार होकर लोकहित में लगा रहे। आज प्रायः ऐसे विप्रों का अभाव है अतः यह अंश लोकोपकारी कार्यों में लगी संस्थाओं को देना चाहिए, जो अनाथ विधवाओं, वृद्धों के लिए आश्रम तथा निःशुल्क अस्पताल चलाती हैं। इससे भी धन का दोष नष्ट हो जाता है।

इसी आय का छठा अंश राजा का जो आयकर दाता हैं, उनसे राज्य आयकर के रूप में

अपना अंश तो ले ही लेता है। यह छठा अंश लगभग सत्रह प्रतिशत ठहरता है। इससे कम आयकर देने वाला राज्यांश की चोरी करता है, फलतः वह अदृश्य शक्तियों के कोप का पात्र बनकर विपदग्रस्त हो जाता है।

द्वार पर आनेवाला भिक्षुक गृहस्थ के अनेक पापों, दुष्कृत्यों कष्टदायक लोगों को भिक्षा ग्रहण कर नष्टदायक योगों का भिक्षा ग्रहण कर नष्ट कर डालने में सक्षम होता है, अतः द्वार पर जाने वाले भिक्षुक का कदापि तिरस्कार नहीं करना चाहिए। उसे कभी खाली हाथ नहीं लौटाना चाहिए।

यदि इस प्रकार दान के रहस्यों को जानकर दान किया जाय तो मनुष्य सहज ही विपत्तियों, कष्टों से बचा रह सकता है, दैवयोग से आनेवाले कष्टों से बचकर निर्विघ्न जीवन बिता सकता है। भाग्य के अटल योगों से तो केवल दैवकृपा से ही बचा जा सकता है, उसका पृथक विधान है, यद्यपि वह भी दान पर ही आधारित है।

३ रुद्र के नयनों से जन्मा है, रुद्राक्ष

'रुद्र' के नयनों से उत्पन्न होने के कारण रुद्राक्ष को रुद्राक्ष के नाम से जाना जाता है। पौराणिक मान्यता है कि भगवान सदाशिव ने सृष्टि संहार के उपरान्त अपने अग्निरूपी तृतीय (संहार) नेत्र को बन्द कर लिया उस समय आंखों से पृथ्वी पर जल बिंदु गिर पड़ा बिंदु महारुद्राक्ष नामक वृक्ष के रूप में प्रादुर्पत हुआ। श्री भगवान शंकर की आज्ञा से पृथ्वी पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जाति के क्रमशः श्वेत, रक्त, पीत एवं काले रुद्राक्ष के पेड़ उत्पन्न हुए। इसलिए जाति एवं रंग के अनुसार मनुष्य को रुद्राक्ष धारण करना चाहिए।

रुद्राक्ष धारण करने से भक्तों के दिन-रात के पाप नष्ट होते हैं। नामोच्चारण से दस गोदान का फल, दर्शन तथा स्पर्श से दुगुने अर्थात् बीस गोदाम का फल प्राप्त होता है। रुद्राक्ष धारण कर रुद्राक्ष माला पर अपने इष्टदेव का जप करने से उसे अनन्त फल की प्राप्ति होती है। आंवले के समान आकार वाला रुद्राक्ष उत्तम, बरे के समान आकृति वाला मध्यम तथा चने की आकृति वाला रुद्राक्ष कनिष्ठ होता है। आकार में एक समान चिकने, पक्के, मोटे, कांटो वाला रुद्राक्ष के दाने शुभ होते है। कीड़ा लगा, टूटा छिद्रयुक्त तथा बिना जुड़े हुए रुद्राक्षों का त्याग करना चाहिए।

शिखा में एक, सिर पर तीस, गले में छत्तीस, दोनों बाहुओं में सोलह-सोलह कलाई में बारह और कंधे पर पचास दाने धारण करना अच्छा होता है। एक मुख से लेकर चौदह मुख वाले रुद्राक्ष तक का वर्णन मिलता है। एक मुख वाले रुद्राक्ष पर ब्रह्म स्वरूप, दो मुख पर अर्धनारीश्वर, तीन मुख वाला त्रिविध अग्नि का प्रतीक होता है। चार मुख वाला चतुर्मुख ब्रह्मा, पांच मुख वाला रुद्राक्ष पांच ब्रह्ममंत्रों का स्वरूप है और उसके धारण करने वाले पांचमुख भगवान शिव जो स्वयं ब्रह्मरूप हैं, नरहत्या से भी मुक्त कर देते है। छः मुख वाला रुद्राक्ष कार्तिकेय स्वामी का, सात मुख वाला सप्तमाला देवी, आठ मुख वाला रुद्राक्ष नव दुर्गा का स्वरुप है। दस मुख वाला यम, ग्यारह मुख वाला एकादश रुद्रा, बारह मुख वाला रुद्राक्ष महाविष्णु, तेरह मुख वाला रुद्राक्ष इच्छि फल तथा सिद्धि प्रदान करने वाला होता

है। इसके धारण से परमेश्वर प्रसन्न होते हैं। चौदह मुख वाला रुद्राक्ष स्वयं रुद्र के नेत्र से उत्पन्न हुआ है। वह सर्प व्याधि को हरने तथा आरोग्य प्रदान करने वाला होता है। रुद्राक्ष धारण करने वाले को मद्य, मांस, लहसुन, प्याज, सहिजन, बहुयार, विड्गबराह (ग्राम्यशूकर) इन आमश्चयों का त्याग करना चाहिए। ग्रहण के समय मेष संक्रान्ति, उत्तरायण अन्य सक्रांति अमावस्या पूर्णिमा तथा पूर्ण दिनों में रुद्राक्ष धारण करने से तत्काल मनुष्य सर्व पापों से छूट जात्ता है। रुद्राक्ष का मूल ब्रह्मा, विष्णु मध्य भाग और उसका मुख रुद्र है और उसके बिन्दु सब देवता कहे गये हैं।

४ देव की उपासना में निहित है योग साधना

योग के माध्यम से रोगों का निदान करने की दिशा देने वाले बाबा रामदेव को मिली अद्‌भुत सफलता के पश्चात् लोगों की निष्ठा योग के प्रति बढ़ी है। वस्तुत: योग साधना भी हमारे मनीषियों के चिन्तन का प्रतिफल है। यह एक ऐसी विद्या है जिसमें समस्त विद्याएं निहित हैं।

वेदांग तथा वेदों के नेत्र रूप में प्रतिष्ठित भगवान शिव और शिव को प्रतिबिम्बत तंत्रोपासना भी इस योग में ही समाहित है। किन्तु हमें योग विद्या और योगाभ्यास दोनों में अन्तर करना होगा। योगविद्या, पराशक्ति है जिसके माध्यम से हम उस परमात्म तत्व तक पहुँच सकते हैं। जबकि योगाभ्यास के द्वारा हम अपने शरीर को निरोग बनाने की प्रक्रिया सम्पादित करते हैं। यह बात सच है कि जब तक शरीर निरोगी नहीं होगा तब तक योगविद्या प्राप्ति समय नहीं है। इसीलिए कहा भी गया है कि ’पहला सुख निरोगी काया —’ संसार में पहला सुख शरीर का निरोग रहना है और ’संत वही जो काया साधे’ संत वही है जो शरीर के अंग प्रत्यंगों को सुदृढ़ कर अपनी काया को निरोग रखता है।

ऐसे संतों की योग साधना ही उन्हें दिव्य चक्षु प्रदान करती है और इन दिव्य चक्षुओं से ही हमारे योग, ब्रह्माण्ड के रहस्य का अध्ययन करते रहे हैं। ये दिव्य चक्षु ही उनकी प्रयोगशाला के अंग बनकर सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, शुक्र, शनि आदि ग्रहों, नक्षत्रों तथा राशियों की स्थिति का अवलोकन करते हैं। यथा उक्त :-

’यत्प्राप्य: प्रतिमां चक्षु: योगी पश्यन्ति सर्वतः।’

ये योगी ही हमारे ग्रह नक्षत्रों की गणना के आधार रहे है। इसलिए योग और ज्योतिष का अटूट सम्बन्ध है। मनीषियों ने सामान्यत: हमारी दैविक क्रिया के साथ ही योग और ज्योतिष के सम्बन्ध को स्थापित कर रखा है। सूर्योदय से पूर्व जागना, नित्य नैमित्यिक कर्म के साथ-साथ अर्थात् संध्या वन्दन के साथ ही संकल्प के माध्यम से सृष्टि विधान के स्मरण चिन्तन, अंगों का स्पर्श, उन्हें पवित्र करने की प्रक्रिया के साथ ही हाथ जोड़ना, विभिन्न मुद्राओं के माध्यम से इष्ट को भाव समर्पित करना, कुंभक तथा रेचक जैसी क्रियाओं को सम्पादित करना, इष्ट को माथा टेककर अथवा लेटकर दंडवत करने में सारे योग के आसन आ जाते हैं। फलतः मनीषियों के ध्यान, योग, मंत्र तथा ज्योतिष को हमारे जीवन के साथ ही जोड़ रखा है। उसे न अपनाने के कारण ही लोगों को अस्वस्थ रहने का भोग भुगतना

पड़ता है। यदि नित्य दैनिक क्रिया में मुहूर्त के अनुसार इष्ट के स्मरण, पूजन, अर्चन के विधानों को अपनाया जाये तो शायद चिकित्सक के पास जाने की आवश्यकता नहीं पड़ सकती।

५ विपश्यना : साधना-सुख और शांति की कुंजी

भगवान बुद्ध के जीवनकाल की एक घटना है। एक बुढ़िया भगवान बुद्ध के पास आई। उसने पूछा, महाराज ! मुझे धर्म मार्ग ऐसी सरल भाषा में समझाएँ, जिसे मैं समझूँ और उस पर चल सकूँ। भगवान ने उस समय की जन-भाषा में समझाया।

"सब्ब पापस्स अकरणं, कुसलस्त उस सम्पदा। सचित्तपरियोदपनं एतं बुद्धानसामनं।।"

सभी प्रकार के पापों को न करना, कुशल कर्मों का संपादन करना, अपने चित्त को निर्मल करना- यही समस्त बौद्धों की शिक्षा है।

पाप कर्म क्या होते हैं और कुशल कर्म क्या होते हैं ? अपनी वाणी या शरीर से दूसरे प्राणियों की हानि करना ही पाप है। जिस कर्म से दूसरों को सुख पहुँचता हो, शांति मिलती हो, उनका मंगल होता हो, वही पुण्य है, वही कुशल कर्म है। जो कर्म दूसरों को हानि पहुँचाए, उससे बचें और दूसरों का लाभ पहुँचाने वाला कर्म स्वयं को भी लाभ पहुँचाता है। यह प्रकृति का नियम है, विश्व का विधान है। जैसा बीज बोयेंगे, वैसा ही फल आएगा।

प्रकृति के इस कानून को समझकर इसके अनुसार चलना ही धर्म है।

भगवान बुद्ध ने तीसरी बात चित्त को निर्मल करने की कही। ज्यों-ज्यों चित्त निर्मल होगा जाएगा, अपने आप दुष्कर्म नहीं होंगे। चित्त मैला होता है, तभी वाणी और शरीर से दुष्कर्म होते है। जब चित्त निर्मल हो जाएगा, तो अनंत करुणा, मैत्री, मुदिता और अनन्त समता से भर जाएगा। निर्मल-चित्त व्यक्ति किसी को हानि नहीं पहुँचा सकता। वह तो कल्याण ही करेगा।

चित्त की इस अवस्था तक पहुँचने के लिए धर्म के मार्ग पर एक-एक कदम चलते हुए अभ्यास स्वयं करना होगा। इस मार्ग को जरा विवरण के साथ समझें। उन दिनों के भाषा में इस धर्म मार्ग को, मंगल-मार्ग को, मुक्ति-मार्ग को विशुद्धि मार्ग को, "अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो" कहा गया, यानी आठ अंग वाला ऐसा मार्ग, जो हमें आर्य बना दे। इस मार्ग के तीन भाग हैं शील, समाधि और प्रज्ञा। शील का अर्थ है सदाचार — शील के अन्तर्गत धर्म के तीन अंग आते हैं : "सम्मा वाचा, सम्माकम्मन्तं और सम्मा आजीवो।"

"सम्मा वाचा" अर्थात सम्यक् वाणी। वाणी शुद्ध होनी चाहिए, पवित्र होनी चाहिए। वाणी की शुद्धता, निर्मलता को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि वाणी का मैल क्या है ? जो झूठ बोलकर ठगता है, कड़ुवी बात बोलकर जी दुखाता है, चुगली की बात करके परस्पर प्रेम को तुड़वाता है, फजूल-निरर्थक बात कर समय नष्ट करता है, वह वाणी को मैला करता है। वाणी के इन चार प्रकार के मैल से बचें। वाणी अपने आप पवित्र हो

जायेगी, शुद्ध हो जायेगी।

'सम्मा कम्मान्त' अर्थात् शरीर के कर्म सम्यक् हों। कर्मान्त इसलिए कहा कि हर कर्म का प्रारम्भ मन से होता है। फिर वाणी पर उतरता है और आगे बढ़कर शरीर पर उतरता है। इसीलिए 'कर्मान्त' कहा। शरीर का हर कर्म शुद्ध, पवित्र होना चाहिए। शरीर के कर्म की शुद्धता को समझने के लिए यह समझें कि शरीर का मैल क्या है ? शरीर के चार प्रकार के मैले कर्म हैं- किसी प्राणी की हत्या करना, किसी दूसरे की वस्तु को चुराना, व्यभिचार करना और मादक पदार्थों का सेवन करना। शरीर के इन चार दुष्कर्मों से बचें, शरीर के कर्म अपने आप निर्मल हो जाएँगे।

शील के अन्तर्गत धर्म का तीसरा अंग है "सम्मा आजीवो", सम्यक् आजीविका। हर व्यक्ति को जीवन-यापन करने के लिए कोई न कोई कार्य करना आवश्यक है, चाहे वह नौकरी हो या व्यवसाय। इसमें मापदण्ड यही है कि आजीविका के साधन में अन्य किसी की हानि न हो। बस, यही सम्यक् आजीविका है।

धर्म का दूसरा क्षेत्र है, समाधि। यदि धर्म मात्र शील-सदाचार के उपदेशों पर ही आकर रूक जाता तो धर्म, धर्म नहीं होता। शील सदाचार के उपदेश तो हमेशा से सुनते आए हैं। "दुष्कर्म नहीं करना चाहिए —" यह बात बुद्धि स्तर पर खूब समझ में आती है, अच्छी भी लगती है, लेकिन जब करने का समय आता है तो दुष्कर्म हो ही जाता है क्योंकि मन वश में नहीं है। समाधि द्वारा मन वश में किया जाता है। इसके तीन प्रसंग हैं -

"सम्मा वायामो, सम्मा सति, सम्मा समाधि।"

सम्मा वायामो, का अर्थ है, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् कसरत। जिस प्रकार शरीर के विकार दूर करने के लिए उचित व्यायाम आवश्यक है, उसी प्रकार मन के विकार दूर करने के लिए मन का व्यायाम आवश्यक है। अपने ही मन का निरीक्षण कर मानसिक विकारों व दुर्बलताओं को निकालने का प्रयास करना, बुराई को अन्दर न आने देना, सद्गुणों का मन में प्रवेश करना, उनका संवर्धन करना और उन्हें कायम रखना, बस यहीं चारों मन के सम्यक् व्यायाम हैं।

समाधि का अलग अंग है "सम्मा सति सम्यक् स्मृति"। हम वर्तमान क्षण के प्रति जितने-जितने सजग है, उतनी-उतनी सम्यक् स्मृति है। अपने बारे में इस क्षण सच्चाई है, बस इसी को महत्व देना है। हम देख रहे हैं कि मन अपनी पुरानी आदत के अनुसार भागता है- कभी भूत में तो कभी भविष्य में। प्रयत्न करते हैं, उसे वर्तमान पर लाते हैं।

जागरूक रहकर वर्तमान की सच्चाई को देखना ही सम्यक् स्मृति है। इसके द्वारा हमें अनुभूतियों के स्तर पर ज्ञात से अज्ञात क्षेत्र को जानेंगे।

इस क्षेत्र का तीसरा अंग है- 'सम्मा समाधि,' समाधि का अर्थ है चित्त की एकाग्रता। मन किसी भी आलंबन को लेकर एकाग्र हो सकता है। लेकिन मन की एकाग्रता मात्र सम्यक् समाधि नहीं है। आलंबन को लेकर यदि हम राग पैदा कर रहे हैं, द्वेष पैदा कर रहे हैं, तो

यह सम्यक् समाधि नहीं है। आलंबन को देखने का हमारा प्रयत्न राग, द्वेष और मोह-विहीन हो। बस, यही सम्यक् समाधि है।

यह जो हम सांस को देख रहे हैं तो न राग जागता है, न द्वेष जागता है और न ही कोई भ्रम-भ्रान्ति यानी मोह-मूढ़त्ता है। सांस आ रहा है, जा रहा है- इसी को देख रहे हैं। यदि कोई संवेदना मालूम हो रही है तो उसे भी रोग, द्वेष और मोह-विहीन होकर देख रहे हैं। ऐसी समाधि में स्थिति व्यक्ति राग, द्वेष और विहीन अवस्थाओं में वर्तमान क्षण की सच्चाई के प्रति सतत जागरूक है। यहीं सम्यक् समाधि है, शुद्ध समाधि है, निर्मल समाधि है, इसकी प्राप्ति से दुःख का विनाश होता है और सुख शांति का रास्ता खुल जाता है।

६ सूर्योपासना से मिले आरोग्यता

भगवान सूर्यनारायण संसार के समस्त ओज, तेज दीप्ति और क्रान्ति के कारण है। वे आत्मशक्ति के आश्रयदाता तथा प्रकाश तत्व के विधाता हैं। सूर्यदेव प्राणियों की आधि-व्याधि को नष्ट करने में सर्वथा सक्षम है। शास्त्रों का स्पष्ट उद्घोष है-

"आरोग्य भास्करादिच्छेत्।" आरोग्यता की इच्छा रखने वालों को सूर्य की उपासना अवश्य करनी चाहिए। धर्मग्रन्थों के मत से सूर्य नीरोगता प्रदान करने वाले देवता है। पद्यपुराण सूर्योपासना को सर्वरोगनाशक बताते हुए कहता है- "सूर्योपासना मात्रेण सर्वरोगात् प्रमुच्यते।" सूर्यदेव की उपासना से सभी बीमारियों से मुक्ति मिल जाती है। समस्त रोगों की चिकित्सा मात्र सूर्य की आराधना से भी संभव है। स्कन्दरपुराण में स्पष्ट शब्दों में लिखा है- "सूर्यो नीरोगतां दद्याद् भक्तया यैः पूज्यते हि सः।"

जो सूर्यनारायण की भक्ति भावना के साथ पूजा करता है, वह नीरोग हो जाता है। सूर्य से आरोग्यता की प्राप्ति का तथ्य हमें शुक्लयजुर्वेद में भी मिलता है-

तरर्णिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य। विश्वमाभासिरोचनम।

हे सूर्यदेव! आप निरन्तर गतिशील एवं आराधकों के रोग नष्ट करने वाले तथा सम्पूर्ण जीव-जगत के लिये दर्शनीय और आकाश के सभी ज्योतिष्पिंडों के प्रकाशक है। वेदों की अनेक ऋचाओं में सूर्य के रोगनाशक स्वरूप का परिचय मिलता है।

भारतीय दर्शन की मान्यता है कि जिन पंचतत्वों से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड बना है, यह काया भी उन्हीं पांच तत्वों से निर्मित है। आयुर्वेद के अनुसार इन पंचतत्वों में असन्तुलन होने पर शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। सृष्टि के कारणस्वरूप आधारभूत पंचतत्व- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश में से 'वायु' तत्व के अधिकर्ता सूर्यदेव माने गए हैं। तात्विक समीक्षा से यह विदित होता है कि अधिकांश बीमारियां 'वायु' के प्रकुपित होने से होती हैं और वे प्रायः असाध्य या दु:साध्य होने से भीषण कष्ट देती है। वायु-तत्व के अधिपति सूर्य से स्वास्थ्य की कामना बिल्कुल सही और युक्ति संगत है। आयुर्वेद में सूर्य किरणों की रोगनाशन शक्ति की चर्चा उपलब्ध होती है। पाश्चात्य चिकित्सकों ने भी सूर्य की रश्मियों से विभिन्न रोगों के उपचार पर अत्यंत अध्ययन-अनुसंधान किया है। वर्तमान समय में

सूर्य-चिकित्सा एक स्वतंत्र रोगोपचार-पद्धति के रूप में विकसित हो चुकी है।

इस सन्दर्भ में हुए शोध से यह सत्य उजागर हो चुका है कि सूर्य-किरणों से शरीर की लगभग सभी बीमारियों का इलाज किया जा सकता है।

सूर्य-किरण-चिकित्सा-प्रणाली के सिद्धान्तानुसार उसकी सप्तरश्मियों में रोगों को नष्ट करने की अद्भुत क्षमता है। सूर्य-किरणों में सात रंगों का सम्मिश्रण है। जिन्हें संक्षिप्त वैज्ञानिक भाषा में "विबग्योर" कहा जाता है। ये सात रंग क्रमश: बैंगनी, आसमानी, नीला, हरा, पीला, नारंगी और लाल है। इनमें से प्रत्येक रंग के द्वारा स्वतंत्र रूप से पृथक् चिकित्सा की जाती है। इसके लिए उसी रंग की बोतल में पानी भरकर उसे धूप में रखा जाता है। इससे जल में सूर्य की उस रंग की रश्मि के औषधीय गुण उत्पन्न हो जाते है। यूरोप में यह चिकित्सा-पद्धति क्रोमोपैथी के नाम से प्रसिद्ध हो चुकी है लेकिन इसका सिद्धान्त सबसे पहले अथर्ववेद में प्रतिपादित हुआ। प्राकृतिक चिकित्सा में सूर्य-स्नान का विधान प्राचीनकाल में ही हो चुका था। सूर्य-नमस्कार शरीर को स्वस्थ रखने का सर्वश्रेष्ठ व्यायाम माना गया है। इसके नियमित अभ्यास से मनुष्य नीरोग, बलिष्ठ और दीर्घजीवी बनता है। सूर्य की किरणें कीटाणुओं का नाश करती हैं। सूर्यदेव को अर्घ्य देने से पुण्य प्राप्त होने के साथ आरोग्यता भी मिलती है-

अर्घ्यदानमिदं पुण्यं पुंसामारोग्यवर्घनं।

प्रश्नोपनिषद् में सूर्य को प्राणिमात्र का प्राण कहा गया है- आदित्यो ह वै प्राण:। ये प्रतिदिन अपनी अमृतमयी किरणों की ज्योति द्वारा सम्पूर्ण संसार में प्रकाश और ऊष्णता प्रदान करते हैं, जिससे मनुष्य, पशु-पक्षी और पेड़-पौधे आदि सभी जीवन शक्ति प्राप्त कर बलवान और जीवित रहते हैं। इसलिए सूर्य-किरणों की ज्योति पृथ्वी पर जीवन को सुरक्षित रखते हेतु परमावश्यक है। इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि सूर्य ही संसार के समस्त जड़ और चेतन की जीवन-ज्योति का मूल स्रोत है। ब्रह्मपुराण में सूर्य को इसी कारण सभी प्राणियों का जीवन घोषित किया गया है- जीवनं सर्वभूतानां। भारतीय ज्योतिष में सूर्य को हृदय एवं नेत्र-ज्योति का कारण-ग्रह बताया गया है।

सूर्य के धातु तांबे से बने ताम्रपात्र में रखा गया जल कब्ज का निवारक तथा उदर-रोगों की औषधि सिद्ध होता है। अथर्ववेदीय सूर्योपनिषद में इन्हें दीर्घायु और स्वास्थ्य का अधिष्ठाता माना गया है।

इस उपनिषद में कथित सूर्यनारायण के अष्टाक्षर महामंत्र- ॐ घृणि: सूर्य आदित्योम् का सूर्याभिमुख होकर जप करने से महाव्याधियां अर्थात् कठिन से कठिन बीमारियां, दरिद्रता और पापों का निश्चय ही नाश हो जाता है। नीरोगता के लिए रविवार का व्रत अत्यंत प्रभावी साबित हुआ है। युगों से सूर्यदेव हमें आरोग्यता का वरदान देते आ रहे हैं। इन प्रत्यक्षदेव की उपासना समाज के सभी वर्ग आसानी से कर सकते हैं। वैशाख मास में सूर्य की 'मेष' राशि में उच्च स्थिति हमें सूर्योपासना के शुभारम्भ का सुअवसर प्रदान कर रही है।

७ ग्रह-नक्षत्र, राशि और मस्तिष्क

विश्व ब्रह्माण्ड में जो कुछ है वही व्यक्ति की संरचना में है विश्व विख्यात वैज्ञानिक टोनी अबू नादर (राजा नादर राम) इसे सिद्ध भी कर चुके हैं। सौरमण्डल में नवग्रह में मानव मस्तिष्क के न्यूक्लियस के नौ भागों की संरचना और गुण भी उन्हीं के अनुरूप है। सूर्य श्रेष्ठ है तो मस्तिष्क में थैलेमस भी उसी गुण का प्रतिरूप है। ऐसे ही चन्द्रना की शीतलता, कोमलता जीवन्तता का रूप हाइपोथैलमस है। मंगल ग्रह की बनावट और अमीग्डाला की एक है। दोनों के गुणों में एकरूपता है। बुध (मर्करी) और सब थैलमस में भेद संभव नहीं है तो गुरु (जुपीटर) और ग्लोबस पैलीदस के गुणों का आकलन एक ही है। शुक्र (वीनस) की पहचान और विशिष्टताओं में कहीं भी लेशमात्र का अन्तर सब्सटैन्सिपा निग्र से नहीं मिलता। शनि (सैटर्न) और पुटामेन को एक ही तरह जाना और समझा जा सकता है। ऐसी ही राहु और केतु दोनों ही सैण्डेटस के हेड और टेल की तरह है। मस्तिष्क और ग्रहों के इन सभी पक्षों को मानव की एक कोशिश के विभिन्न अंशों के गुण और दोष प्रतिलोम है।

ग्रहों का बारह राशियों से बड़ा ही करीबी संबंध ही नहीं एकरूपता है। यही नहीं हर व्यक्ति के मस्तिष्क के भीतर की विभिन्न बारह तंत्रिका (नर्व) का तालमेल हुबहू है।

मेष राशि से प्रभाव को जहाँ आकुलोमोटर तंत्रिका जोड़ती है तो वृषभ के साथ आलफैक्टरी तंत्रिका प्रत्युत्तर निर्देशित करती है। मिथुन के साथ ही क्रियाओं को वागम तंत्रिका से बारीकी से जाना समझा जा सकता है और हाइपोग्लोसल तंत्रिका की क्रियायें तो पूरी तरह से कर्क राशि के साथ जोड़कर समझी जा सकती हैं। सिंह राशि का प्रत्युत्तर देने के लिए आप्टिक तंत्रिका मस्तिष्क में काम करती है। फैसियल तंत्रिका कन्या राशि वालों में जागृत अवस्था में सक्रिय रहती है तो ट्रोकलियर तंत्रिका मस्तिष्क के भीतर वही प्रभाव उत्पन्न करती है जो तुला राशि के प्रभाव से जुड़ती है और वेस्टिबुलर तंत्रिका तो वृश्चिक राशि की क्रियाओं का हुबहू प्रतिबिम्ब होता है। ऐसे ही ग्लेसीफारिन्जियल तंत्रिका पूरी तरह से मीन राशि वालों में सक्रियता दिखाती है तो कोचिलियर तंत्रिका कुंभ राशि के व्यक्ति के भीतर अपना प्रभाव जमाये रहती है। वास्तव में दोनों में समानता होती है यही नहीं अबडसेन्स तंत्रिका मकर राशि और द्विगामिनल तंत्रिका धनु राशि के व्यक्ति में जागृत होती है।

वैज्ञानिक विवेचन करें तो बारहों राशियों के गुण व्यक्ति-व्यक्ति के संरचना की प्रत्येक कोशिकाओं में उनकी आतंरिक क्रियाओं में भी प्रतिबिम्बित होते हैं। यही स्थिति डी.एन.ए. में भी खोजबीन करने पर मिलती है। गुऐनाइन, एडेनाइन और साइलोसाइन में भी इन सभी बारह राशियों को लम्बवत उनकी क्रिया अनुसार जाना-समझा जा सकता है। अद्‌भुत किंतु सत्य तो यह भी है कि मानव मस्तिष्क के तंतुओं में बारीकी से पड़ताल कर वैज्ञानिक ने जो परिणाम सामने रखे हैं उनमें नवग्रहों के अलावा २७ नक्षत्रों की मौजूदगी अथवा प्रतिबिम्ब रूप होता है। चन्द्रमा इन्हीं २७ नक्षत्रों के साथ घटते-बढ़ते अपनी यात्रा चक्र पूरी कर पूरे माह भर प्रभाव वातावरण की स्थितियों को सामने रखता रहता है। अश्विनी भरणी, कृतिका, रोहिणी, मृगशिरा आद्रा, पुनर्वसु, पुष्प, अश्लेषा, मघा, पूर्वफाल्गुन उत्तरफाल्गुन हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठ, मूल पूर्वआषाढ़, श्रावण,

धनिष्ठा, शतामिषा, पूर्व भाद्रपद, उत्तरभाद्रपद और रेवती। इन सभी सत्ताइस नक्षत्रों की स्थितियाँ चन्द्र यात्रा के अनुसार होती है जो ब्रेनेस्टेम में मौजूद होती है। नक्षत्रों के नाम स्त्रियों के नाम गुण के अनुरूप होते हैं और मस्तिक के भीतर इन सभी नक्षत्रों की क्रिया-प्रतिक्रिया का प्रभाव पड़ता रहता है। आश्चर्यजनक बात तो यह जरूर लगती है कि व्यक्ति की प्रत्येक कोशिका के भीतर इन्हीं नक्षत्रों के अनुरूप वाहक बनकर कार्य करती है।

अब यह तो नक्षत्र ज्ञानी और विज्ञानी ही मिलकर इस गुत्थी को सुलझाकर सामने ला सकते है कि विश्व ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी है वह मानव संरचना में भी है। विज्ञान इसे मान रहा है तो गीता में कहा गया वचन-यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे भी सिद्ध हो जाता है, साथ ही श्रीकृष्ण के विराट स्वरूप में विश्व ब्रह्माण्ड का जो रूप दृष्टांकित बताया जाता है वह भी उसमें समाहित है।

नवग्रह और नक्षत्र का जब सीधा सबंध प्रतिदिन और नक्षत्रानुसार होता है तो पाक्षिक रूप में जहाँ अलग-अलग नक्षत्रों का वर्चस्व रहता है और उनके गुण प्रभावी रहते है वहीं प्रति माह की स्थिति भी उनके अनुरूप ही क्रियान्वित होती है। ग्रहों के साथ नक्षत्रों का योग जब बारह राशियों के साथ मिलता है तो बाह्य रूप में ही बारहों महीने उनके प्रभाव प्रतिबिम्बित होते है। यह शरीर पंचतत्वों से मिलकर जीवन्त रूप में बना है लिहाजा पूरे शरीर संरचना पर भी मौसम और माह का अलग-अलग प्रभाव पड़ना स्वाभाविक और प्राकृतिक प्रक्रिया है। यह अकाट्य सत्य होना भी सिद्ध हो जाता है कि ग्रह नक्षत्र और राशि का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर उन्हीं की स्थितियों और प्रभाव के अनुरूप होता है।

८ एक-दूसरे के पूरक हैं ज्योतिष और योग

योग तथा ज्योतिष दोनों एक-दूसरे के पूरक है। गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया जाय तो परस्पर बहुत अधिक साम्यता देखने को मिलती है। योग क्रिया ज्योतिष के मान बिन्दुओं पर आधारित है। ज्योतिष के आधार पर अपनायी गयी क्रिया कभी निष्फल नहीं होती है, इसीलिए प्रत्येक क्रिया में मुहूर्त का विशेष महत्व है। यदि ब्राह्म मुहूर्त में योग साधना की जाय तो उसका फल अनुकूल होगा परन्तु यदि मध्याह्न अथवा असमय में योग क्रिया की जाय तो निष्फल सिद्ध होगी। जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र ज्योतिष के नियामक हैं उसी प्रकार से ये योग के भी नियन्ता है। सूर्य प्राणवायु है और चन्द्र अपानवायु, ये प्राण और अपानवायु ही योगविद्या की कारक है। ज्योतिष में जिस प्रकार स्वस्थ रहने के बारे में कुण्डली के विभिन्न भावों का अध्ययन किया जाता है, उसी प्रकार योग में स्वास्थ्य के प्रति सचेष्ट रहना योगी का प्रथम सोपान है।

ज्योतिष में मन का कारक चन्द्रमा है चन्द्रमा के कारण ही मस्तिष्क में उतार-चढ़ाव और ज्वार-भाटे की स्थिति पैदा होती है। योगी इसी मन को प्राण और अपानवायु का सहारा लेकर स्थिर करने का प्रयास करता है। वह स्थिर मन को, तन को स्वस्थ, मन को स्थिर और आत्मा को परमपद में प्रतिष्ठित करने अथवा मृतत्व को प्राप्त करने का अमोघ साधन तथा महाज्ञान मानता है। हठ योग में आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के साथ-साथ कुण्डलिनी जागरण, मुद्राबन्ध आदि अभ्यास, षटचक्रभेदन,

नादानुसंधान तथा अमृतपान आदि पर विशेषबल दिया जाता है। आप जानते है कि शरीर का प्रत्येक भाग, रक्त माता, हड्डी सहस्त्रार, आज्ञाचक्र, कण्ठचक्र, विशुद्धचक्र अनहतनाद, मूलाधार तक सभी ग्रहों के स्थान है और विभिन्न ग्रहों के आधार पर विभाजित हैं। नाभि, योनि द्वार, जंघा, उरु आदि सभी नौ ग्रहों तथा उनके अधिष्ठात्री देवताओं के आधार पर विभाजित है। जिस प्रकार ज्योतिष में सूर्य की प्रधानता है उसी प्रकार नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि स्थित कर कोटि सूर्य के प्रकाश का ध्यान करने से दीर्घजीवी होने तथा हठात ज्योतिर्मय शिव स्वरूप को प्राप्त करने की योगसाधना वर्णित है। हठ योग में जिस प्रकार बिन्दु, पवन और मन की स्थिरता को महत्व दिया गया है, जिस प्रकार प्राणवायु सूर्यनाड़ी और चन्द्र नाड़ी को बन्द कर सुषुम्ना में योगी मन को स्थिर करता है, सुषुम्ना मध्यवर्तनी ब्रह्मानाड़ी के मुख को खुला पाकर वायु उसी मार्ग से उर्ध्वगमन करती है, कुण्डलिनी प्राणवायु से विरोध और ऊपर उठती है, षट्चक्र वेधन करती है उसी प्रकार ज्योतिष में सूर्य ग्रहराज माना जाता है, उसी के प्रकाश से चन्द्रमा प्रकाशित है। चन्द्रमा का पुत्र बुध और सूर्य का पुत्र शनि अपना विशेष महत्व रखता है। मंगल भूमि पुत्र तथा राहु और केतु एक ही शरीर के दो भाग हमेशा वक्री फल देते हैं।

गुरु और शुक्र ज्ञान के कारक ग्रह हैं। जिस प्रकार ब्रह्माण्ड में आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी का समावेश है उसी प्रकार मुख, दो नेत्र, दो कान दो नासारंध्र एक उपस्थ और एक गुदा शरीर के नौ दरवाजे और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर तथा सदाशिव विद्यमान रहते हैं। जिनकी अनुभूति एवं संतुलन के आधार पर योगी साधना की पराकाष्ठा तक पहुंचता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि योग और ज्योतिष परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं। एक अच्छे साधक को ज्योतिष का ज्ञान होना आवश्यक है।

अन्य महत्वपूर्ण योगपरक ग्रन्थ

सत्य घटनाक्रमेण आधारितः पारलौकिक कथा श्रृंखला

१ मृतात्माओं से सम्पर्क (सत्य घटनाओं पर आधारित भूत प्रेत कथा प्रसंग)

प्रस्तुत कथा संग्रह मृतात्माओं से सम्पर्क के अन्तर्गत नवदश कथाओं का संग्रह है। ये अपने आप में विशिष्ट तो हैं ही, रहस्य रोमांच से भरपूर और सनसनी खेज भी हैं। यद्यपि ये अविश्वसनीय लगे किन्तु इनमें अतिशयोक्ति नहीं है। लेखक की भाषा में प्राञ्जलता और भाषा पर अधिकार भी है।

मृत्यु के समय एक नीरव विस्फोट के साथ स्थूल शरीर के परमाणुओं का विघटन शुरु हो जाता है और शरीर को जला देने या जमीन में गाड़ देने के बाद भी ये परमाणु वातावरण में बिखरे रहते हैं। परन्तु इनमें फिर से उसी आकृति में एकत्र होने की तीव्र प्रवृत्ति रहती है। साथ ही इनमें मनुष्य की अतृप्त भोग-वासनाओं की लालसा भी बनी रहती है। इसी को प्रेतात्मा कहते हैं। प्रेतात्मा का शरीर वासनामय आकाशीय होता है। मृत्यु के बाद और प्रेतात्मा के पूर्व की अवस्था को 'मृतात्मा' कहते हैं। मृतात्मा और प्रेतात्मा में बस थोड़ा सा ही अन्तर है।

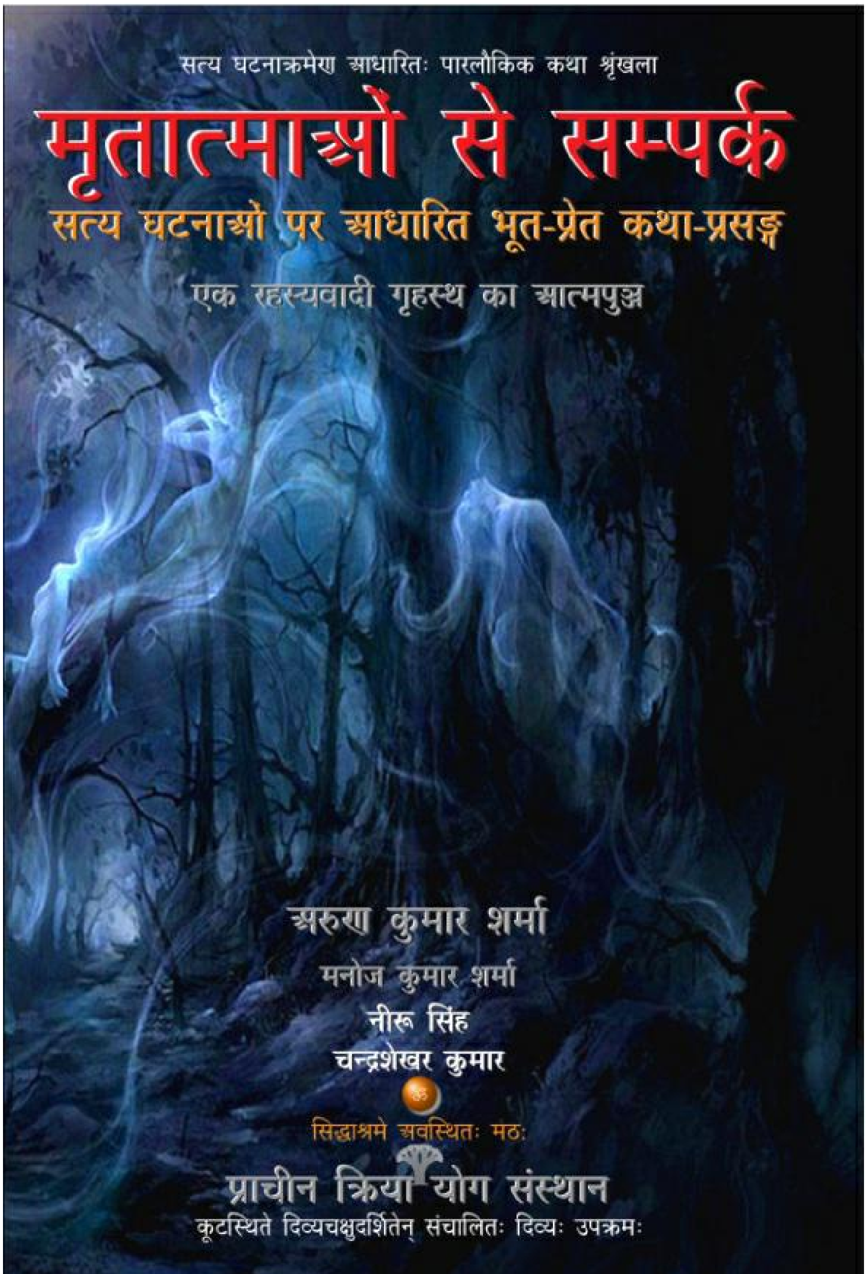
मृतात्माओं का शरीर आकाशीय होने के कारण उनकी गति प्रकाश की गति के समान होती है। वे एक क्षण में हज़ारों मील की दूरी तय कर लेती हैं। अपने आकर्षण केन्द्र की ओर वे तुरन्त दौड़ पड़ती हैं।

आशा है प्रस्तुत कथा-संग्रह भी अन्य कथा-संग्रहों की भांति पाठकों को प्रीतिकर होगी।

प्रस्तुत संस्करण का निर्माण प्राचीन क्रिया योग संस्थान (कूटस्थिते दिव्यचक्षुदर्शितेन् संचालितः दिव्यः उपक्रमः) (सिद्धाश्रमे अवस्थितः मठः) द्वारा किया गया है। इस प्रक्रिया में अत्याधुनिक कंप्यूटर प्रणाली (LATEX, XƎLATEX, Ti*k*Z, gimp, C++) इत्यादि का पूर्ण प्रयोग किया गया है।

प्राचीन क्रिया योग संस्थान के एक मूर्धन्य मनीषि एवं रहस्यवादी गृहस्थ योगी ने अपनी अनन्य योग भक्ति तथा प्राणायाम के सघन अभ्यास से मृतात्माओं से सम्पर्क करने की सहज वैदिक विधि को प्राप्त किया, जिसका विस्तृत विवरण भविष्य में एक ग्रन्थ रूप में साधकों के लिए उपलब्ध होगा ।

प्राचीन क्रिया योग संस्थान प्राचीन जीवन विज्ञान शैली को सरलता एवं सुगमता से प्रदर्शित एवं पारदर्शित करने हेतु कटिबद्ध है।



इसी पुस्तक से

… बाबा पहले थोड़े गम्भीर हो गये। फिर बोले, 'यह कोई आश्चर्यजनक अथवा असम्भव बात नहीं है। जहाँ जो घटना अचानक घटती है वहाँ उस स्थान पर दीर्घकाल तक के लिये अपना अमिट छाप छोड़ देती है, जिसे विशेष साधनों द्वारा पुन: देखा जा सकता है।

'क्या यह सम्भव है ?'

'हाँ बिल्कुल सम्भव हाँ ! जो इसके विज्ञान को जानते-समझते हैं - वे भूतकाल में घटी हुई किसी भी घटना को वर्तमान में प्रत्यक्ष कर सकते हैं।'

‘वह विज्ञान क्या है ?’

‘वह वियोग-तंत्र के अन्तर्गत एक विशिष्ट विज्ञान है, जिसका नाम है - ’क्षण विज्ञान’। उसके सिद्धान्त के अनुसार, जिस वायवीय वातावरण में मनुष्य रहता है - उसमें एक विशेष प्रकार की विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा घनीभूत है। वह ’ईथर’ से भी सूक्ष्म और अधिक शक्तिशाली है। उसके परमाणु दो प्रकार के होते हैं। पहले प्रकार के परमाणु ध्वनि को ग्रहण करते हैं और दूसरे प्रकार के परमाणु दृश्य को। दोनों का ग्रहण होता है तो एक ही साथ, मगर उसके प्राकट्य में अन्तर हो जाता है समय का। प्रकाश की गति में और ध्वनि की गति में एक मील प्रति सेकेण्ड का अन्तर समझना चाहिये। जितनी तेजी से घटना घटती है उसी तेजी से वे परमाणु दृश्य और ध्वनि को ग्रहण करते हैं। इस प्रकार के दृश्य और इस प्रकार की ध्वनियाँ वातावरण में काफी दिनों तक रहती हैं।’

बाबा की ये सारी सैद्धांतिक बातें मेरे गले के नीचे नहीं उतरीं। शायद बाबा मेरे भाव को समझ गये। ‘बोले, इसी मकान में और इसी कमरे में दस वर्ष पूर्व एक नवयुवती की हत्या कर दी गयी थी।’

‘अच्छा।’ मैं आश्चर्य से बोला, ‘मगर मैं इसी मुहल्ले के करीब रहता हूँ। मुझे इस हत्या का पता नहीं चला।’

‘चलता भी कैसे ? मारकर लोगों ने इसी मकान में लाश दफना दी और सबेरा होने पर यह अफवाह उड़ा दी गयी थी कि वह युवती मालमत्ता लेकर कहीं भाग गयी।’

’हाँ आपने ठीक कहा- मैंने भी ऐसा ही सुना था। मगर आप कहना क्या चाहते हैं ?’

‘क्या तुम दस वर्ष पूर्व के उस मरण-दृश्य को देखोगे ?’

‘क्या आप उसे दिखा सकते हैं ?’

‘क्यों नहीं ?’ बाबा हँसकर बोले, ‘अभी दिखा सकता हूँ।’ ...

कूटस्थित दिव्यचक्षुदर्शित भाष्य श्रृंखला

हनुमान चालीसा कुंजिका (एक रहस्यवादी गृहस्थ का आत्मपुंज)

इस पुस्तक की रचना का आधार अन्तःपुर में 'हनुमान चालीसा' के गूढ़ अर्थों एवं अलौकिक अनुभूतियों का रहस्योद्घाटन है। इस पारलौकिक स्पंदन को लेखनी में समाहित करना अति दुष्कर होता अगर ये कार्य सिद्ध साधन निर्देशित न होता। अनिर्वचनीय, अलौकिक एवं अद्भुत आनंद से परिपूर्ण इस साधना यात्रा में हनुमद्प्रज्ञता साख्य भाव दर्शित तथा सम्पूर्ण समर्पण के आभिर्भावभूत लक्षित हुई। इसी विशिष्ट अवस्था की समग्रता का समावेश इस रचना में लेखनीवश समाहित है।

This book is an outcome of inner revelations of mystical meanings of *Hanuman Chalisa*. Penning down itself was full of eternal vibrations which resembled as if being dictated by a *Siddha*. This journey was full of inexplicable ecstasy and joy, laced with complete surrendering to witnessing the state of *Hanuman*. It depicts transcendental qualities and attributes of this state in its totality.

'हनुमान' सिद्धों की अति विशिष्ट अवस्था है, जिसका बहुआयामी विस्तृत विवरण 'हनुमान चालीसा' में उल्लिखित है। साधनाकाल में साधक अपरिमित चरणों से गुजरता है। किसी भी चरणविशेष के पड़ाव का निर्धारण उसकी विशिष्टता एवं साधक की अंतर्दशा से होता है। इस साधनाक्रम में साधक की बाह्य दशावलोकन से उसकी अन्तर्दशा का स्पष्ट बोध नहीं हो पाता है। बाह्य लक्षण यथा शरीर का भयानक कम्पन एवं उत्तोलन (वायु में तैरना) इत्यादि से दर्शक हत्प्रभ एवं विस्मित हो उठता है। जबकि साधक स्वयं साक्ष्य भाव से इन बाह्य लक्षणों को सरलता एवं सुगमता से स्वीकार करते हुए साधनारत रहता है।

Hanuman is a special state of *Siddhas*, the qualities of which are described by *Hanuman Chalisa*. A *Sadhak* passes through infinite number of states during his *Sadhana*. Period of stay in any state varies depending on the peculiarities of that state as well the predicament of the *Sadhak*. During this course, the outer symptoms may not be described and grasped as aptly as inner symptoms. Outer symptoms like trembling and/or levitation of body often lead to bewilderment and amusement of the beholder. Whereas being in the same state, it leads to calm acceptance and grasp of what is happening to someone else being in that state.

साधना बहुआयामी होती है जिसका निर्धारण साधक की अद्वितीयता एवं प्रारब्धता से ही हो पाता है। साधक अपनी अध्यात्म यात्रा चाहे किसी भी मार्ग से आरम्भ करे, कालांतर में अनुकूलतावश वो अतर्निर्दिष्ट मार्ग पर स्वतः अग्रसर हो जाता है। एकमात्र महत्वपूर्ण सूत्र है :

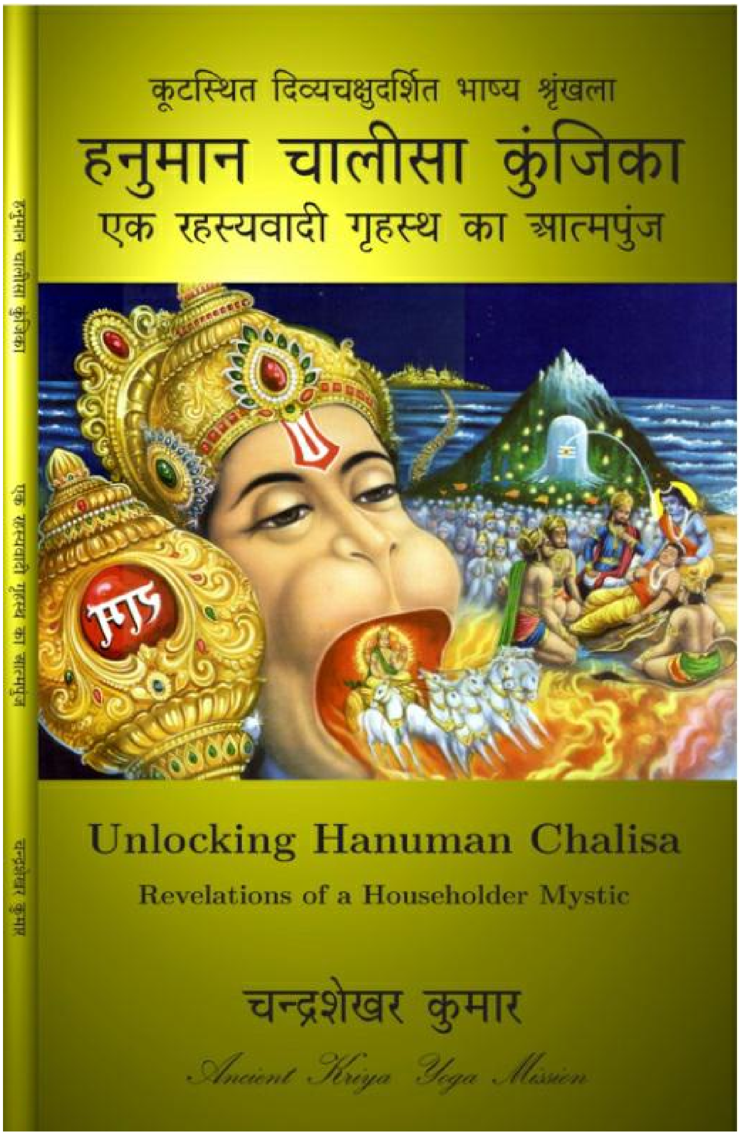
पूरी सत्यनिष्ठा एवं दृढ़ लगन से स्वयं की खोज में समर्पित रहो।

There is no single prescribed path for *Sadhana*, simply because it varies from *Sadhak* to *Sadhak*, the root of which is often buried deep in one's Providence(*Prarabdha*). Hence no matter which path a *Sadhak* adopts for his journey to start with, he will get aligned to the best path, most suitable one for him, in due course of time, gradually. The single most important key is :

Continue seeking in with utmost Sincerity and Devotion.

विभिन्न मार्गों की विशिष्टताओं से अभिन्न साधक कालांतर में स्वयं को 'सिद्ध लोक" के पहले पायदान में पाता है। शनैः शनैः उसे ये ज्ञात होता है की ऐसी अगण्य अवस्थाएं एवं उनसे सम्बंधित स्थान सिद्ध लोक में मुद्रित हैं जिनमे से एक विशिष्ट (अवस्था + स्थान) 'हनुमान' है। साधनाकालांतर उसे इस तथ्य का स्पष्ट बोध हो जाता है कि साधनाभ्यास मूलतः क्रमिक है परन्तु साधनागत विशिष्ट अवस्था आकस्मिक है जोकि प्रारंभिक चरणों में अनैच्छिक रूप से घटित होती है।

Hence irrespective of the peculiarities and idiosyncrasies associated with various paths, the *Sadhak* finds himself in a special state all of a sudden, often termed as being at one place in *Siddha Loka*. Gradually, he realizes that there are infinite such states, hence places in *Siddha Loka*, one of which is *Hanuman*. It becomes clear to him that practice (*Sadhana*) is gradual, but being in any such state is all of a sudden, involuntary ones during early stages of *Sadhana*.


कूटस्थित दिव्यचक्षुदर्शित भाष्य श्रृंखला
हनुमान चालीसा कुंजिका
एक रहस्यवादी गृहस्थ का आत्मपुंज
Unlocking Hanuman Chalisa
Revelations of a Householder Mystic
चन्द्रशेखर कुमार
Ancient Kriya Yoga Mission

लेखक ने अपनी आध्यात्मिक यात्रा का आरम्भ प्रचलित प्राणायाम यथा अनुलोम विलोम, कपाल भाती, भस्त्रिका एवं भ्रामरी के नित्य एक से तीन घंटे तक सामान्य अभ्यास प्रक्रिया से किया। कुछ वर्षों के उपरांत उन्हें एक गूढ़ प्राणायाम पद्धति (वायुपान विधान) का रहस्योद्घाटन हुआ जोकि मूलतः भस्त्रिका सदृश प्रतीत होती थी। इसका विस्तृत विवरण अन्य पुस्तक : *Drink Air Therapy To Kill Diabetes: A Path To Self-Cure And Immortality* : (आंग्ल भाषा में उपलब्ध) में है। कालांतर में अन्य गूढ़तम प्राणायाम प्रक्रिया का अन्तः प्राकट्य करण हुआ जिसका मूल अंग : भस्त्रिका प्राणायाम सदृश प्रणाली का सतत, सरल एवं स्वतः अनरवरत अभ्यास : है।

The author started his journey with typical *Pranayam* like *Anulom Vilom*, *Kapal Bhati*, *Bhastrika* and *Bhramari*, practicing for 1 hour to 3 hours daily, in morning and evening. After a couple of years, he was attuned to an esoteric *Pranayam* akin to *Bhastrika*, the details of which are described in another book, *Drink Air Therapy To Kill Diabetes: A Path To Self-Cure And Immortality*. A couple of years later, he was revealed another esoteric *Pranayam*, which was again akin to *Bhastrika* with 24 x 7 hours in play.

इतिहासवेत्ता 'हनुमान चालीसा' को गोस्वामी तुलसीदास की अप्रतिम कृति मानते हैं। कालांतर में साधक को ये सत्य विदित होता है कि इसका प्रत्येक 'शब्द' अक्षुण्ण, पारलौकिक एवं अक्षय है जिसका प्रादुर्भाव सामान्यतः अगोचर है। ये सर्वदा गुंजायमान है एवं सिद्धों द्वारा इनके अनवरत तथा अदभूत कालातीत जप का श्रवण साधक को उपयुक्त काल में होता है।

Historians often attribute the composition of *Hanuman Chalisa* to *Goswami Tulsi Das*, whereas a *Sadhak* realizes, when time is ripe for him, that the particular *Shabda* is eternal, ever present, everywhere, perceptible to one only when one is ready during his course of *Sadhana*, including listening to these being chanted/sung by *Siddhas*, all the time, beyond the time.

इस स्थूल काया का अस्तित्व एकमात्र ध्यान प्रक्रिया के सम्पादन हेतु है। इसके अतिरिक्त जीव नगण्य एवं रिक्त है।

This body is just an instrument of meditation and the individual is nothing, the individual have nothing.

ये रचना समस्त साधकों को समर्पित है।

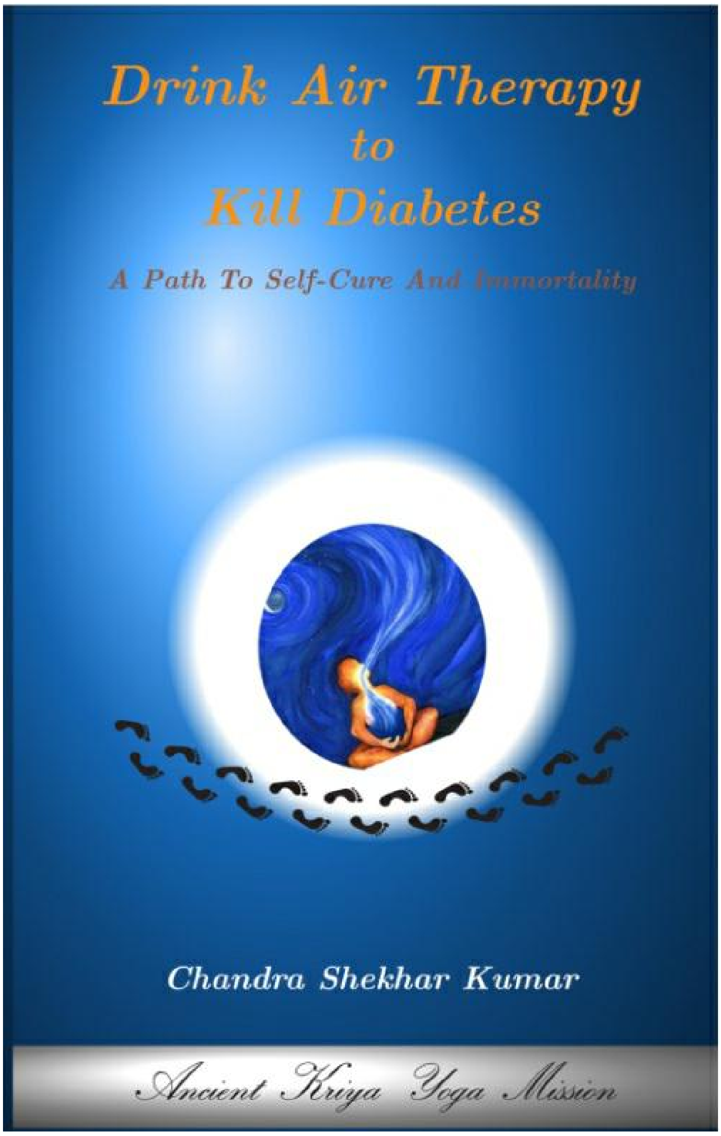
This book is dedicated to all *Sadhakas*.

प्राचीन क्रिया योग संस्थान प्राचीन जीवन विज्ञान शैली को सरलता एवं सुगमता से प्रदर्शित एवं पारदर्शित करने हेतु कटिबद्ध है।

Ancient Kriya Yoga Mission is engaged in disseminating simple techniques of ancient science of living.

Drink Air Therapy to Kill Diabetes (A Path To Self-Cure And Immortality)

Drink Air Therapy is an ancient practice for Self-Realization.



This book is written for preparing common mass to embrace a very simple but powerful self-help mechanism of drinking air(not breathing air) to eradicate Diabetes(both Type 1 and 2) from root and foster longevity with healthy body and mind.
Ancient Kriya Yoga Mission is engaged in disseminating simple techniques of ancient science of living.
These simple techniques are meant to be practiced by anyone without any external assistance and guidance.

खेचरी क्रिया प्राचीन गुह्य काली आकाशगामिनी विद्या (व्योमगम्योपनिषद)

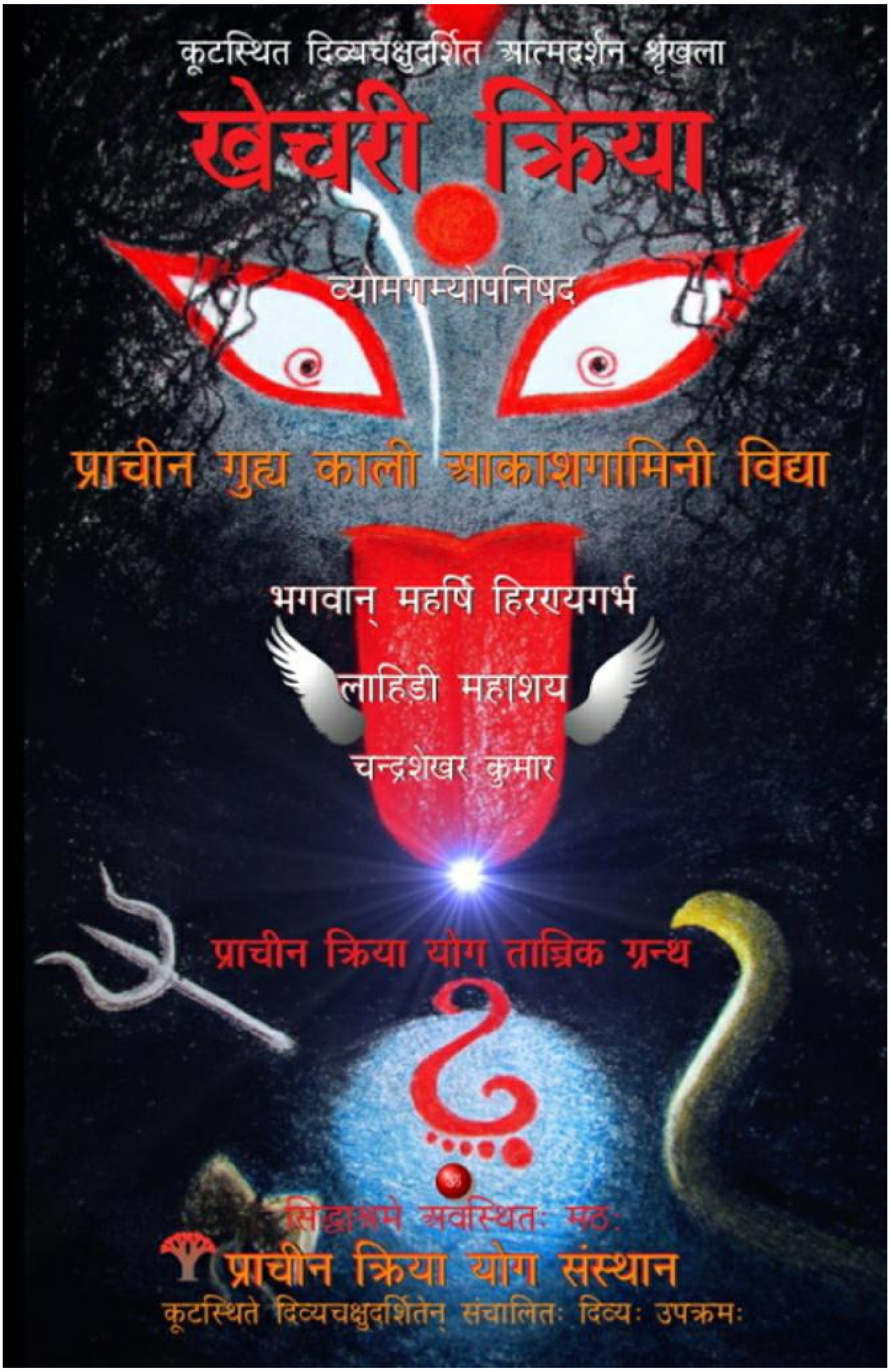
खेचरी क्रिया की गणना योगभक्तिपरक विज्ञान के चमत्कारिक विषयों में की जाती रही है । यह एक सिद्धिजन्य, अनुभवगम्य एवं अनुभूतिपरक अविनाशी गुह्यतम कड़ी है । प्राचीन काल से ही योगी इसकी सार्वभौम गोपनीयता की प्रतिज्ञा एवं प्रण लेते-देते रहे हैं । सत्यपथगामी साधक इस गुह्य प्राच्यविज्ञान की अन्तर्निहित जटिलताओं के फलस्वरूप प्रायः दिग्भ्रमित हो जाते हैं ।

प्राच्यकाल में यह अपूर्व क्रिया व्योमगम्योपनिषद में अन्तर्निहित थी जो कालप्रवाह में विलुप्तावस्था में नियोजित हो गई । देशांतर एवं कालांतर में इसे खेचर्युपनिषद एवं त्रिशंकूपनिषद भी कहते थे । कालान्तर में अनेक ऋषि-मुनियों ने अपनी योग-तपस्चर्या की स्थिति के अनुसार इसके बहुआयामी खण्डों को प्राप्त किया जोकि अन्य उपनिषदों, घेरण्ड संहिता, हठ योग प्रदीपिका इत्यादि ग्रन्थों में पृथक भाव से उपलब्ध है ।

प्राचीन क्रिया योग संस्थान (कूटस्थिते दिव्यचक्षुदर्शितेन् संचालितः दिव्यः उपक्रमः) (सिद्धाश्रमे अवस्थितः मठः) के एक मूर्धन्य मनीषि एवं रहस्यवादी गृहस्थ योगी ने अपनी अनन्य योग भक्ति तथा प्राणायाम के सघन अभ्यास से इस दुष्प्राप्य क्रिया को पुनः प्राप्त किया । खेचरी क्रिया अनन्त सिद्धिदात्री है जिसमें आकाशगामिनी विद्या सिद्धि भी एक है । साधकों के लिए यह ज्ञातव्य है कि आकाशगामिनी विद्या प्राप्ति के अनेक पथ हैं यथास्वरूप गुरुकृपाजन्य शक्तिपात, लम्बनिरोधनी योग, वायुपान पद्धति, कालिकागुह्य साधना इत्यादि । इसी भाँति खेचरी क्रिया से अन्य सिद्धियाँ हस्तगत योग्य हैं यथास्वरूप मृत्युञ्जयी, अनिमेषि, गुडाकेशि इत्यादि ।

इस पुस्तक की रचना का आधार अन्तःपुर में 'व्योमगम्योपनिषद' के गूढ़ अर्थों एवं अलौकिक अनुभूतियों का रहस्योद्धाटन है। इस पारलौकिक स्पंदन को लेखनी में समाहित करना अति दुष्कर होता अगर ये कार्य सिद्ध साधन निर्देशित न होता। अनिर्वचनीय, अलौकिक एवं अद्भुत आनंद से परिपूर्ण इस साधना यात्रा में खेचरी क्रिया साख्य भाव दर्शित तथा सम्पूर्ण समर्पण के आभिर्भावभूत लक्षित हुई। इसी विशिष्ट अवस्था की समग्रता का समावेश इस रचना में लेखनीवश समाहित है।

इस स्थूल काया का अस्तित्व एकमात्र ध्यान प्रक्रिया के सम्पादन हेतु है। इसके अतिरिक्त जीव नगण्य एवं रिक्त है।



’आकाशगमिता’ सिद्धों की अति विशिष्ट अवस्था है, जिसका बहुआयामी विस्तृत विवरण इस ग्रन्थ में उल्लिखित है। साधनाकाल में साधक अपरिमित चरणों से गुजरता है। किसी भी चरणविशेष के पड़ाव का निर्धारण उसकी विशिष्टता एवं साधक की अंतर्दशा से होता है।

इस साधनाक्रम में साधक की बाह्य दशावलोकन से उसकी अन्तर्दशा का स्पष्ट बोध नहीं हो पाता है। बाह्य लक्षण यथा शरीर का भयानक कम्पन एवं उत्तोलन (वायु में तैरना) इत्यादि से दर्शक हत्प्रभ एवं विस्मित हो उठता है। जबकि साधक स्वयं साक्ष्य भाव से इन बाह्य लक्षणों को सरलता एवं सुगमता से स्वीकार करते हुए साधनारत रहता है।

अधिकांश (सामान्य) योगी एवं इतिहासवेत्ता 'खेचरी क्रिया' को योगपरक मुद्रा मात्र जानते हैं जोकि भूख-प्यास, व्याधि, वृद्धावस्था इत्यादि से निवृत्ति का साधन मात्र है। कालांतर में साधक को ये सत्य विदित होता है कि यह एक सार्वभौम क्रिया है एवं इसका प्रत्येक 'शब्द' अक्षुण्ण, पारलौकिक एवं अक्षय है जिसका प्रादुर्भाव सामान्यतः अगोचर है। ये सर्वदा गुंजायमान है एवं सिद्धों द्वारा इनके अनवरत तथा अद्‌भुत कालातीत जप का श्रवण साधक को उपयुक्त काल में होता है।

ये रचना समस्त साधकों को समर्पित है।